सत्यनाम

मुक्ति-प्रकाश

लेखक

सद्गुरु दीवान जवाहिरपति साहब

के शिष्य

महात्मा मोहनपति साहब

प्रकाशक

म. राम सेवक दास साहब

कबीर विज्ञान आश्रम बिन्छूर

डा. बीरापुर-प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश)

सत्यनाम

मुक्ति-प्रकाश

लेखक

सद्गुरु दीवान जवाहिरपति साहब

के शिष्य

महात्मा मोहनपति साहब

प्रकाशक

म. राम सेवक दास साहब

कबीर विज्ञान आश्रम बिन्दूर

डा. बीरापुर-प्रतापगढ़

(उत्तरप्रदेश)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
१. सद् गुरु महिमा	१
२. सद् गुरु सत्य कबीर	३
३. बयान निज ज्ञान प्राप्ति का	५
४. गुरु प्रार्थना	१२
५. गुरु प्रणाली	१४
६. ग्रंथ परिचय	२०
७. सत्यगुरु का गैब स्थान से आना	३३
८. जीव व ईश्वर का बयान	२२
९. सत्यगुरु का उपदेश	३४
१०. ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादि होने का वर्णन	३७
११. सत्यगुरु की परिभाषा	४३
१२. सत्यगुरु कबीर साहब के जगत् में आने का कारण	४४
१३. बयान बीजक का	५८
१४. बयान टीकाओं का	६०
१५. टीका खंडन (पूरणदास)	६६
१६. टीका खंडन (महाराज रीवाँ)	१६१
१७. दयानंद मत-खंडन	१८१
१८. अज्ञानियों का मत-खंडन	१८६
१९. अमरलोक व मृत्युलोक का वर्णन	१९७
२०. आवागमन का वर्णन	२०७
२१. जीव-हिंसा का वर्णन	२१६
२२. कबीर साहब का सिद्धांत	२३१
२३. सत्यगुरुओं की वाणी	२३२
२४. प्रथम संस्करण की पुष्पिका	२५३

सत्यनाम

शुभार्शीवाद

'मुक्ति प्रकाश' अथवा 'मुक्ति परीक्षा' का प्रथम संस्करण जो सवंत १६६३ वि. में महात्मा मोहनपति साहब के द्वारा प्रकाशित हुआ था तथा द्वितीय संस्करण आचार्य प्रकाशपति साहब, सद्‌गुरु कबीर विज्ञान आश्रम आचार्य गद्दी बड़ैया से प्रकाशित हुआ था जो भक्तों की असीम माँग के कारण बहुत पहले समाप्त हो गया था। तभी से इसके तृतीय संस्करण की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी।

इसलिए साधको व श्रद्धालू भक्तो की अत्यधिक माँग को देखते हुए और महंत रामस्वरुदास साहब, कबीर मंदिर, बख्तावर पुर, दिल्ली–३६, रामराजदास साहब शिष्य सुलभदास साहब, ग्राम कान्हापुर, कबीर आश्रम मोहड़ा जिना प्रतापगढ़ रामलखन दास पटेल, ग्राम सुकाल कोपुरा, नारायणपुर कलां जिला प्रतापगढ़, वैद्य सुन्दर दास कबीर मंदिर बख्ताबरपुर के अटूट सहयोग से ग्रंथ का तृतीय संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें मास्टर छतरसिहँ पुत्र श्री भलेराम, ग्राम मुबारिकपुर डबास, दिल्ली–८१ ने तन मन धन से सहयोग दिया।

प्रस्तुत ग्रथ के रचयिता दीवान जवाहिरपति साहब का सत्यलोक वास १६०८ में ग्राम बिच्छूर रियासत बीरापुर में हुआ, जिनकी समाधि रानी सुल्तानकुवँरि, राय जगमोहन सिंह तालुकेदार स्वंय समाधि बनवाकर १६११ में १८ बीधा १६ विशवा ३ धूर जमीन समाधि को वक्फ किया। उस समय आश्रम के महंत दीवान लखनपति साहेब थे। उनके बाद आश्रम जीर्ण अवस्था में चला आ रहा था, १६६६ ई० में आप सदगुरु रामसवेक दास साहेब चेला सदगुरु अनुराग पति साहेब, इस आश्रम के उत्तराधिकारी (प्रबन्धक) बने जो कि इस ग्रंथ का प्रकाशन करा रहे हैं। जिनके

द्वारा आश्रम पर प्रतिवर्ष ज्येष्ट प्रथम पक्ष (एकम, द्विज) को भण्डारा सन्त सम्मेलन होता हैं। आप सदगुरु एक अध्यात्म के मर्मज्ञ एवं पहुँचे उच्चकोटि के साधक हैं। आप के त्याग और तपस्या से इस समय आश्रम की ख्याति इतने वेग से चली है कि वर्तमान में एक तीर्थरूप परिणित है

मुक्ति प्रकाश का प्रथम संस्करण, मोहनपति साहेब के द्वारा आश्रम इटावा से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण आचार्य प्रकाशपति साहेब (गद्दी बड़ैया) के द्वारा हुआ था, जिसकी समाप्ति होने पर अब तृतीय संस्करण आप सदगुरु रामसेवक साहेब के कर कमलो द्वारा हो रहा है। जिन्होनें मुझे कुछ इस ग्रंथ में दो शब्द लिखने का अवसर दिया मैं साहेब का कोटि–कोटि आभारी हूँ। संत शरण दास

मुद्रण व्यय के स्रोत :-

१. मं रामराजदास साहब–१०००० रू०
शिष्य सुलभदास साहब
ग्राम कान्हरपुर, कबीर आश्रम मोहड़ा
जिला प्रताप गढ (उ. प्र.)

२. मंहत रामस्वरुपदास साहब 5000 रु
कबीर मंदिर बख्तावर पुर
दिल्ली–३६

३. रामलखनदास साहब S/o रामलाल दास पटेल–५००० रू०
ग्राम सुकाल कपूरा नारायणपुर कलां
प्रतापगढ (उ. प्र.)

४. फूलचन्द शर्मा–२००० रू०
जानकी प्रीटिंग प्रेस
बसई दारापुर दिल्ली।

५. गुरुदयाल एवं तीर्थराज–१००० रू०
ग्राम सराय लालसा, प्रतापगढ (उ. प्र.)

६. मास्टर छतरसिंह पुत्र श्री भलेराम–१००० रू०
ग्राम मुबारिक पुर डबास, दिल्ली–८१

७. डा० निर्मला देवी, ग्राम बाजीत पुर, दिल्ली–१००० रू०

शेष आश्रम की ओर से

महात्माराम सेवक दास साहब

प्राक्कथन

शब्द शब्द सब कोइ कहै, वह तो शब्द विदेह ।
जिह्वा पर आवै नहीं, निरखि परखि करि लेह ।।

कबीर साहब की साधना मुख्यतया सुरति-शब्द साधना है । 'सुरति' और 'शब्द' ये दो ऐसे शब्द हैं जिनका ठीक-ठीक सन्धान प्राप्त कर लेने पर ही कबीर साहब की गूढ़ साधना को हृदयंगम किया जा सकता है । किन्तु यह पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर सम्भव नहीं है । यह वस्तुतः 'करनी' का क्षेत्र है—'कथनी-बदनी' का जंजाल यहाँ कुछ भी काम नहीं देता और अपनी विडंबना यह है कि 'करनी' का तो लेशमात्र नहीं, 'कथनी-बदनी' के जंजाल में पुस्तकों के पन्ने उलटते-पुलटते क्या पल्ले पड़ा है, कुछ समझ में नहीं आता । अतः मैं पहले ही निष्कपट भाव से यह स्वीकार करता हूँ कि इस विषय पर कुछ लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। कालिदास के शब्दों में—

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम्

अर्थात् मोहवश छोटी-सी डोंगी लेकर दुस्तर सागर के पार जाना चाहता हूँ । किन्तु प्रस्तुत ग्रंथ में ताल और गति के कुछ ऐसे संकेत मिल जाते हैं जिनका अनुसरण करके ही मुझे इस विषय पर कुछ कहने का साहस हो रहा है—'अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा' । फिर भी मेरे निवेदन में यदि कहीं कुछ बेताल हो जाय तो विज्ञजन कृपया क्षमा करेंगे ।

जानकार लोग बतलाते हैं कि सुरति वस्तुतः चेतन आत्मा के ज्ञान की धारा है । सुरति का अधोमुखी होना उसका पतन है और ऊर्ध्वमुखी होना ही उसका उत्थान है । कबीर साहब कहते हैं—

सुरति फँसी संसार में, तासे परिगौ दूर ।
सुरति बाँधि स्थिर करौ, आठौं पहर हुजूर ।।

सुरति का उत्थान शब्द डोर के ही आश्रय से हो सकता है। जब अनहद तार की अगम गति बजती है तब सुरति रानी गगन महल पर च कर नृत्य करने लगती है। कबीर साहब का कथन है—

बाजै इक तार सुनो दिन रतिया।
अनहद तार अगम गति बाजै, गगन महल चढ़ि नाचै सुरतिया।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो हमहू सो कहौ गगन की बतिया।।

—देखिए प्रस्तुत ग्रंथ, पृ० २४०।

दूसरी ओर यदि सारशब्द का संधान न मिले, तो सुरति बिचारी अन्धी होकर दर-दर की ठोकरें खाती हुई मार्गभ्रष्ट हो जाती है। कबीर साहब के शब्दों में—

शब्द बिना सुरति आँधरी, कहौ कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय।।

किन्तु यहाँ विशेष रूप से लक्ष्य करने की बात यह है कि कबीर साहब द्वारा प्रतिपादित शब्द-साधना पूर्ववर्ती समस्त योग साधनाओं से भिन्न तथा श्रेष्ठ है। शब्द-साधना वैसे तो इस देश में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है किन्तु कबीर साहब का सारशब्द वस्तुतः योगियों आदि के नादानुसन्धान से पृथक् है। कबीर साहब का 'सार शब्द' क्या है, यही प्रस्तुत ग्रंथ (मुक्ति-प्रकाश) का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है, अतः इसको भली-भाँति समझ लेना आवश्यक है।

हठयोग, राजयोग आदि की सारी साधनाएँ प्राकृतिक करणों के आधार पर की जाती हैं। उसमें दस इंद्रिय, दस प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय, पञ्चकोश, चतुर्विध वाणी (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी) आदि का ही आश्रय लिया जाता है। हठयोग की साधना में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि की सहायता से सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति को प्रबुद्ध कर उस जाग्रत शक्ति के द्वारा मनुष्य देह में स्थित षट्चक्र नामक छः शक्ति-केन्द्रों का भेदन कर उसे ऊपर सहस्रार तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न किया जाता है। पिण्ड से ब्रह्माण्ड में प्रवेश करना ही इस योग का मुख्य उद्देश्य है। आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित विन्दु का भेदन कर पिण्ड अर्थात् व्यष्टि देह से ब्रह्माण्ड अर्थात् समष्टि देह में प्रवेश करना होता है।

मनुष्य के प्रत्येक चक्षु में चार मुख्य अवयव होते हैं— १. नेत्र की उज्ज्वल तारिका, २. उसके भीतर नाचने वाली अपेक्षाकृत कम काली पुतली, ३. केन्द्र स्थित तारिकावत् छोटो पुतलो और ४. तारिका के सदृश भीतर स्थित सुई के छिद्र के समान चमकीला सूक्ष्म बिन्दु जिसे अग्रनख या सुई कहते हैं। इस प्रकार दो नेत्रों में ये आठ अवयव या दल होते हैं जिनकी समष्टि को अष्टदल कमल कहा जाता है। योगी की दृष्टि अष्टदल कमल में स्थित सुई के नाके का भेदन कर ब्रह्माण्ड में प्रवेश करती है और त्रिवेणी (इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा का संगम-स्थल) में स्नान कर ऊपर उत्थित होती है। इसके अनन्तर यथासमय भ्रमरगुहा में प्रवेश होता है। यहाँ दृश्य कुछ भी नहीं है, सब शून्याकार रहता है, इसीलिए इसे गुहा कहा जाता है। यहाँ निरंतर भ्रमर के शब्द का सा गुंजार होता रहता है और भाँति-भाँति के सुन्दर दृश्य और दिव्य गन्ध सदैव प्राप्त होते हैं। हठयोग में साधक की गति प्राय: यहीं तक रहती है। किन्तु गुरुकृपाप्राप्त कुछ उत्कृष्ट कोटि के साधकों को इस स्थिति में कुछ दिन रहने के पश्चात् निर्मल दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और उन्हें महाशून्य के दर्शन होते हैं। ऊर्ध्व प्रवाह के कारण इसके ऊपरी केन्द्र में किसी बिरले ही योगी की सुरति का आरोहण होता है जहाँ पर एक विलक्षण ररंकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वही ब्रह्मरन्ध्र या दसवाँ द्वार कहा जाता है। पूर्ववर्ती योग-साधना में साधक की गति यहीं तक है—वैसे यहाँ तक पहुँचना भी बड़ा कठिन है। किन्तु जड़ करणों के आधार पर सम्पन्न साधना से योगी अपने शरीर को स्वायत्त कर प्राकृतिक विकास की अनेक आश्चर्यजनक सिद्धियाँ भले ही प्राप्त कर ले, किन्तु आत्मा को आयत्त करने के महत् उद्देश्य की सिद्धि के लिए केवल प्राणायाम आदि साधन पर्याप्त नहीं हैं। कबीर साहब की साधना जड़ करणों का अतिक्रमण कर चिन्मय स्वसत्ता के आधार पर चलती है।

उपर्युक्त विवेचन को यदि निम्नलिखित शब्द के आलोक में देखा जाय तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि अन्य साधनाओं की तुलना में कबीर साहब की साधना में क्या विशेषता है और साथ ही विदेही सारशब्द का वास्तविक रहस्य भी उद्घाटित हो जाय—

संतो सब शब्दै शब्द बखानै ।

शब्द फाँस फाँसे सब कोई शब्दै नहि पहिचानै ।।

शब्दै निर्गुण शब्दै सर्गुण, शब्दै वेद पुराना।
शब्दै पुनि काया के भीतर, करि बैठे स्थाना॥
शब्द निरंजन चाँचरि मुद्रा, सो है नैनन माहीं।
ताको जाना गोरख योगी, महा तेज है ताहीं॥
ओं ओंकार भूचरी मुद्रा, है त्रिकुटी स्थाना।
व्यास देव ताको पहिचाना, चाँद सूर्य सो जाना॥
सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा, भँवर गुफा स्थाना।
सुकद्देव ताको पहिचाना, सुनि अनहद की ताना॥
शक्ति शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई अकाश सनेही।
तामें झिलमिल ज्योति दिखावै, जानो जनक विदेही॥
ररंकार खेचरी मुद्रा, दसवाँ द्वार ठेकाना।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, ररंकार पहिचाना॥
पाँच शब्द औ पाँचों मुद्रा, सोई निश्चय माना।
आगे पूरण पुरुष पुरातन, तिनकी खबरि न जाना॥
परम पुरुष धर अधर तार है, अधर तार के आगे।
तिनके आगे कौन बतावै, सबै शब्द में पागे॥

किन्तु वास्तविकता यह है कि—

पाँच शब्द औ पाँचों मुद्रा, लोक दीप जम जाला।
परम पुरुष धर अधर जहाँ लौं, बूझि बिना सब काला॥
कहै कबीर बूझि के भीतर, बूझि हमारी जाना।
आपा खोय आपको चीन्है, तब सब ठौर ठिकाना॥

—दे० प्रस्तुत ग्रंथ, पृ० २४१।

तात्पर्य यह कि पूर्ववर्ती योग-साधना पिपीलिका मार्ग अथवा मर्कट मार्ग की साधना है जिसमें किसी स्थूल प्राकृतिक उपकरण का अवलम्बन लिया जाता है। उसका एक निश्चित क्रम है, क्योंकि वहाँ एक का त्याग कर किसी दूसरे को ग्रहण किया जाता है—जैसे चींटी शनैः-शनैः रेंगती हुई अथवा बंदर एक डाल छोड़ कर दूसरी डाल पकड़ते हुए वृक्ष आदि पर

जहाँ बोल तहँ अक्षर आवा । जहँ अक्षर तहँ मनहिं दृढ़ावा ।।
बोल अबोल एक है सोई । जिन यह लखा सो बिरला होई ।।

और अपनी मौलिक साधना का संकेत करते हुए वे कहते हैं—

आपै अगिनि उठाय कै, आपै जरि बरि जाय ।
बोल अबोल सम लखि परै, तब आपै अगिनि बुझाय ।।

निःअक्षर सारशब्द ही अखिल सृष्टि का मूल कारण है। कबीर साहब स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि वह खेचरी, भूचरी आदि पाँच मुद्राओं से तथा रेचक, कुंभक, पूरक आदि प्राणायाम की क्रियाओं अथवा श्वास-प्रश्वास के अजपा-जाप से प्राप्त नहीं हो सकता—

खेचरी न भूचरी न चाँचरी अगोचरी
उनमुनी पाँचों की गम्मि नाहीं ।
अधर तान तानिए रेचक और
कुंभक और पूरक को ढंग नाहीं ।।
पढ़े गुने वाद करै कबहूँ नहि मानिए,
श्वासा को जाप करै झूठ सो बखानिए ।।
अक्षर पार निःअक्षर भरपूरि है,
कहैं कबीर सो सत्य करि मानिए ।।

—शब्द विलास, पृ० १६४ ।

इस प्रसंग में एक अन्य पद को भी उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता जिसमें निःअक्षर का भेद भलीभाँति समझाते हुए कबीर साहब की सारशब्द-साधना का सारतत्व निकाल कर रख दिया गया है। देखिए उस निःअक्षर सारशब्द की जगमग नगरी तक पहुँचने की सूक्ष्म डोरी कैसी है—

जगर मगर इक नग्र, अग्र की डोर है ।
बूझो संत सुजान, शब्द घनघोर है ।।
कहूँ नग्र की डोर, तो सूक्ष्म झीन है ।

आरोहण करते हैं। किन्तु कबीर साहब का सुरति-शब्द योग विहंगम मार्ग की साधना है। जैसे पक्षी आकाश में निरवलम्ब विचरण करता है और उसकी गति का कोई क्रम नहीं रहता उसी प्रकार कबीर साहब की साधना में भी बीच में कोई विश्राम स्थल नहीं। एक बार शब्द के जग जाने पर अथवा सद्‌गुरु की कृपा से शब्द का सन्धान पा जाने पर उपर्युक्त पिपीलिका मार्ग के सभी विश्राम स्थलों का अतिक्रमण कर साधक की सुरति सीधे सारशब्द मे मिलकर एकमेक हो जाती है।

इसी प्रसंग में सन्तमतानुकूल सारशब्द की थोड़ी विवृति भी अपेक्षित जान पड़ती है। सारशब्द का तात्पर्य है समस्त शब्दों का सार या निचोड़। सारतत्व खण्डित कभी नहीं हो सकता, प्रत्युत वह सदा सर्वदा अखण्ड रहता है। इसीलिए कहा गया है—

शब्द अखंड और सब खंडा।
सार शब्द गरजै ब्रह्मंडा॥

कबीर साहब का कथन है—

अखंड साहिब को नाम और सब खंड है।
खंडित मेरु सुमेरु खंड ब्रह्मंड है॥
चंचल मन थिर होय तबै भल रंग है।
उलटि निकट भरि पीव तो अमृत गंग है॥

शब्द बावन वर्णों के आधार पर बनता है जिनमें कवर्ग चवर्ग आदि आते हैं। किन्तु समस्त बावन वर्णों का मूल है अकार। यह अकार तीन प्रकार का होता है—१. कह अकार, २. अकह अकार और ३. निःअक्षर अकार। लिखित पठित अकार कह अकार है। अकह अकार चेतन आत्मा है और निःअक्षर अकार सारशब्द परमात्मा है। कह अकार दृश्य जगत् अर्थात् प्रकृति का द्योतक है, अकह अकार द्रष्टा या चेतन आत्मा का प्रतीक है और निःअक्षर अकार इन दोनों से परे सारशब्द परमात्मा का द्योतक है। सुरति-शब्द योग में चेतन आत्मा स्वतः अपनी शक्तियों का जागरण करती है जिससे द्रष्टा और दृश्य का सम्मिलन होता है और सबके मूल अखण्ड निःअक्षर सारशब्द में उनका विलयन हो जाता है। कबीर साहब कहते हैं—

सुरति निरति से जाय, सोई परवीन है ।।
मूल द्वार को तार, लाग सुर भीतरे ।
इंद्री नाल की जोर, मिला गुण तीसरे ।।
नाभिकमल की शक्ति, मिलावे ग्रानि के ।
तीन तार करि एक, ग्रगम घर जानि के ।।
हृदय कमल की नाल, तार से जोरिए ।
योग युक्ति से साधि, मवासा तोरिए ।।
कंठ कमल की नाल, तो स्वर में ग्रानिए ।
पाँचों सात मिलाय, ऊपर को तानिए ।।
रूप नाल की डोरि, निरंजन वास है ।
सुरति रहै बिलमाय, मिलावत श्वास है ।।
बंक नाल दुइ राह, एक सम राखिए ।
चढ़ो सुषुमना घाट, ग्रमी रस चाखिए ।।
ता ऊपर ग्राकाश, बहुत प्रकाश है ।
तामे चार मुक़ाम, लखै सो दास है ।।
त्रिकुटी महल में ग्राव, जहाँ ऊँकार है ।
ग्रागे मारग कठिन, सो ग्रगम ग्रपार है ।।
तहँ ग्रनहद की घोर, होत झंकार है ।
लाग रहैं सिध साधु, न पावैं पार है ।।
सोहं सुमिरन होय, सो दक्षिण कोन है ।
तहँवा सुरति लगाय, रहै उनमौन है ।।
पश्चिम ग्रक्षर एक, सो रारंकार है ।
यह ब्रह्मांड को ख़्याल, सो ग्रगम ग्रपार है ।।
धर्मराज को राज, मध्य स्थान है ।
तीन लोक भरपूर, निरंजन ज्ञान है ।।

ता ऊपर आकाश, अमी का कूप है।
अनन्त भानु प्रकाश, सो नग्र अनूप है॥
तामें अक्षर एक, सो सब का मूल है।
कहो सूक्ष्म गति होय, विदेही फूल है॥
निःअक्षर का भेद, हंस कोई पाइहै।
कहैं कबीर सो हंसा, जाय समाइहै॥

—मुक्ति-प्रकाश, पृ० २३५-३६।

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि पश्चिम मार्ग में जो ररंकार शब्द है उसके भी ऊपर स्थित आकाश में जहाँ निस्सीम ज्ञान से समन्वित आनंद का अखण्ड प्रकाश जग-मग करता रहता है वहीं निःअक्षर या विदेही सारशब्द की प्राप्ति होती है। 'तामें अक्षर एक सो सब का मूल है' यही स्थल विशेष रूप से चिन्तनीय है। यही निःअक्षर सारशब्द है जिसे अगली ही पंक्ति में 'विदेही' कहा गया है और यह निर्देश किया गया है कि निःअक्षर का भेद कोई बिरला साधक ही जान पाता है। यह भी ज्ञातव्य है कि इसके पूर्व के साधनास्थल प्राचीन योग-प्रक्रिया के आधार पर बतलाये गये हैं। सारशब्द इन सबसे परे है और देह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। कबीर साहब तो कहते हैं कि—

वहाँ जाहुगे जबहिं तुम, तब सुधि रहै न देह।
पाँच तत्व गुण तीन नहिं, ऐसा शब्द विदेह॥

कहते हैं कि सुरति-शब्द की तारी लग जाने पर नाड़ी तथा श्वास की गति अवरुद्ध हो जाती है, फिर भी चेतन ज्ञान अखण्डित बना रहता है। शब्द-साधना के विदेही साधना होने का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है? ऐसी स्थिति में तो बस आनंद ही आनंद है—

भजन में होत अनंद अनंद।
बरसत शब्द अमृत को बादर भीजत है कोइ संत॥

—कबीर साहब की शब्दावली, कबीर चौरा, गौरी शब्द १०।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि चक्र के ऊपर चक्र अथवा आकाश के ऊपर आकाश की कल्पना वस्तुतः दूर की कौड़ी लाना है और वाणी-विलास

किया है—

धरती बेध पतालै जावै, शेषनाग को वश करि लावै।
वासू आय सत्य को तारा, निस बासर ताको उजियारा ॥
कंठ कमल पर साल।

... ...

पूरब सोधि पश्चिम को जावै, अधाधुंध को हाल बतावै।
शिला द्वार दै दक्षिण राखै, उत्तर जाय सजीवन चाखै ॥
चारों दिशा का माल।

—दे० मुक्ति प्रकाश, पृ० २४२-४३।

प्रस्तुत ग्रंथ (मुक्ति-प्रकाश) के रचयिता स्व० श्री मोहनलाल जी पहले नानकपंथी थे, किन्तु सारशब्द के भेदी की तलाश उनको बराबर थी। उनकी जिज्ञासाओं का पूर्ण समाधान जब उनके गुरु बाबा जैरामदास साहब उदासी नहीं कर सके तब बाबू नवलकिशोर, पुलिस सब इंसपेक्टर, रायबरेली के माध्यम से उन्होंने दीवान जवाहिरपति साहब से सारशब्द का परिचय प्राप्त किया और उनसे दीक्षा ली। दीवान साहब के गुरु आचार्य-गद्दी बड़ैया के आचार्य दूलमपति साहब थे जिनकी गुरुप्रणाली का विवरण विस्तार से इस ग्रंथ के आरम्भिक अंश में दिया गया है। आचार्यगद्दी बड़ैया का कबीरपंथ में अपना विशिष्ट स्थान है, क्योंकि यह आरंभ से ही सार-शब्द के सच्चे मरहमी आचार्यों की साधनास्थली रही है। उसी परम्परा से सम्बद्ध एक सत्यद्रष्टा से उपदिष्ट होने के कारण प्रस्तुत ग्रंथलेखक की प्रति-पादन शैली में एक विशिष्ट प्रकार का ओज और सुस्पष्टता है। कबीरपंथ के परवर्ती विद्वान् कबीर साहब की वाणी की व्याख्याएँ नाना प्रकार से प्रस्तुत करने लगे जिनमें उनके मूल उपदेश सारशब्द के सम्बन्ध में भी अनेक प्रकार के भाष्य किये गये। प्रसिद्ध कबीरपंथी विद्वान् पूरनदास साहब ने बीजक की 'त्रिज्या' टीका तथा 'निर्णयसार' नामक एक अन्य ग्रंथ में निर्णय अर्थात् पारख को ही सारशब्द ठहराया और 'सारशब्द निर्णय को नामा' ऐसा प्रतिपादन किया। इसी प्रकार रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव ने बीजक की 'पाखण्ड खण्डिनी' टीका में रकार व मकार को सारशब्द बत-लाया। 'मुक्ति-प्रकाश' में मुख्य रूप से इन्हीं दोनों टीकाओं का युक्तियुक्त

के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं है। किन्तु ऊपर जो एक लम्बा पद उद्धृत किया गया है उसका अनुशीलन-मनन करने पर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि कबीर साहब को तंत्र, योग आदि से सम्बद्ध पूर्ववर्ती साधनाओं का हस्तामलकवत ज्ञान था । भारत के पूर्व में पुरुषोत्तमपुरी, पश्चिम में द्वारका, दक्षिण में रामेश्वर तथा उत्तर में बदरी नारायण ये चार धाम विद्यमान हैं जिनकी परिक्रमा करने से एक ही समय में समस्त देश की परिक्रमा मान्य होती है । तांत्रिक योग-साधना में भी मानवदेह में चार पीठों का निर्देश किया गया है। वास्तव में इन्हीं सब पीठों के अनुरूप भारत के ये भौगोलिक पीठ स्थापित हुए थे। तंत्र में ये पीठ क्रमशः कामरूप, पूर्णगिरि, जलंधर और उड्डियान पीठ हैं जिन्हें मानवदेह और भारत भूमि में युगपद् रूप में माना गया है। इन चार भीतरी पीठों की यदि परिक्रमा न की जा सके तो योगी की देह-तीर्थयात्रा सम्पन्न नहीं होती। विभिन्न सम्प्रदायों की साधना-पद्धतियों में विभिन्न नामों से इन चार दिशाओं का संकेत अवश्य मिलता है । हठयोग में पिंड और ब्रह्मांड के सन्धि-स्थल तक अर्थात् षट्चक्र भेदन तक का मार्ग पूर्व-दिशा का मार्ग है जहाँ से ब्रह्माण्ड में प्रवेश प्राप्त होता है। ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होकर महाशून्य पर्यन्त गति पश्चिम मार्ग का अवलम्बन करके होती है। पश्चिम मार्ग की समाप्ति के बाद भ्रमर गुहा में प्रवेश के पहले थोड़ा टेढ़े-मेढ़े धुँधले मण्डल में घूम कर जाना होता है । तब थोड़ी दूर बाईं ओर अर्थात् दक्षिण से पश्चिम में जा कर पुनः दक्षिण से उत्तर की ओर आरोहण करना होता है। 'योग बीज' नामक ग्रंथ में पश्चिम मार्ग की बड़ी प्रशंसा की गई है । कहा गया है—पश्चिमद्वारमार्गेण जायते त्वरितं फलम्। कबीर साहब भी उपर्युक्त पद में पहले पूर्व मार्ग की साधना का वर्णन करते हैं और उसके पश्चात् ज्यों ही त्रिकुटी महल में प्रवेश की बात आती है तो उसके आगे के मार्ग की कठिनाई का वे तुरंत आगाह करते हैं। वहाँ से लेकर पश्चिम मार्ग के ररंकार तक की साधना कठिन है, इसे कबीर साहब एक विशेषज्ञ के स्वर में अधिकारपूर्वक बतलाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि अवकचरे लोगों की भाँति किसी पूर्ववर्ती पद्धति के प्रति केवल अवमानना का भाव उनमें नहीं है, प्रत्युत 'योग बीज' आदि ग्रंथों में जिसकी इतनी प्रशंसा की गई है उसकी वास्तविकता का पूरा बोध कराते हुए वे अपने गन्तव्य स्थल की ओर आगे बढ़ जाते हैं। एक अन्य पद में उन्होंने इन चारों दिशाओं की प्रतीकात्मकता का उद्घाटन और भी अधिक स्पष्ट रूप में

खण्डन है। इसके अतिरिक्त प्रसंगवश स्वामी दयानंद के आक्षेपों का समाधान किया गया है और कबीरपंथ में फैले हुए कुछ अन्य भ्रमों का भी निवारण किया गया है। उसी उपक्रम में आवागमन, जीव-हिंसा आदि कुछ अन्य विषयों पर भी संक्षेप में विचार-विमर्श किया गया है। अन्त में कबीर साहब, मदन साहब तथा जवाहिरपति साहब के कुछ प्रेरणाप्रद वचनों का सुन्दर संकलन प्रस्तुत किया गया है जिससे इस ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ जाती है।

खण्डन-मण्डन होने के कारण 'मुक्ति प्रकाश' की भाषा में बड़ी संजीदगी है। उर्दू की जानकारी के कारण इसके लेखक की शैली में काफ़ी रवानगी आ गई है, इसीलिए कहीं-कहीं यद्यपि कुछ क्लिष्ट उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे आजकल के पाठकों को कुछ कठिनाई भी होगी लेकिन उनकी मौलिक विशेषताओं की रक्षा की दृष्टि से उनके शब्दों को परिवर्तित नहीं किया गया है। कहीं-कहीं उनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता तथा मुहावरेदानी के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। ऐसे स्थल इस पुस्तक में अनेक हैं लेकिन पृ० ८६ की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। पूरनदास साहब के पारख सिद्धान्त की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं—

"देखिए उन्होंने सारशब्द का अर्थ निर्णय किया और निर्णय का अर्थ बूझ, विचार हुआ और बूझ, विचार का अर्थ पारख हुआ तो निर्णय व पारख में फ़र्क क्या हुआ ? कुछ नहीं। आपका मतलब तो पारख से था सो निकल आया, फ़रागत मिल गई। अब यहाँ फ़र्माइए कि निर्णय से निर्णय को लेने में क्या फल होगा ? या नमक से नमक खाने में क्या स्वाद होगा ?...तो फिर फ़ायदा क्या हुआ ? कुछ नहीं। अरे वाह जी ! आपकी पारख तो अच्छी वस्तु मिली कि जिससे कुछ नफ़ा न हुआ ! जैसा किसी ने कहा है कि 'न खुदा ही मिला, न विसाले सनम'। इधर के हुए न उधर के। दोनों तरफ़ से गए पांड़े, न हलुवा न मांडे !"

अब बताइए कि कोड़ामार व्यंग की इस बौछार का मुक़ाबला करने का दमखम किसमें होगा ?

अन्त में आचार्य गद्दी बड़ैया के वर्तमान आचार्य प्रकाशपति साहब का श्रद्धा तथा कृतज्ञतापूवक स्मरण कर अपना निवेदन समाप्त करता हूँ, क्योंकि इस विषय की जो कुछ भी सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त हो सकी है वह उन्हीं की

कृपा के परिणामस्वरूप। उनकी कृपा प्राप्त कर मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ। आज से लगभग छः वर्ष पूर्व यहीं से प्रकाशित आचार्य मदन साहब कृत 'शब्द विलास' का प्राक्कथन लिखते समय मैंने यह आशा व्यक्त की थी कि बड़ैया में सुरक्षित अन्य ग्रंथों को भी प्रकाश में लाकर आचार्यजी अपना नाम सार्थक सिद्ध करेंगे। मुझे प्रसन्नता है कि यह दूसरा उपयोगी ग्रंथ वहाँ से प्रकाशित हो रहा है और इस बात का संतोष है कि इसके भी मुद्रण आदि की व्यवस्था में यथासंभव सहायता देकर मैं अपने समय का सदुपयोग कर सका और आचार्य जी के आदेश-पालन का निर्वाह कर सका। आचार्य गद्दी बड़ैया से सम्बद्ध संत-महात्माओं के चित्र मेरे ही आग्रह से रखे गये हैं, विशेषतया आचार्य प्रकाशपति साहब और मुख्तार दयालदास जी के चित्र उनकी अनिच्छा के बावजूद मेरे ही आग्रह पर सम्मिलित किये गये हैं। चित्रों के ब्लॉक बनवाने और मुद्रण के अन्य कार्यों में मेरे प्रिय शिष्य श्री मनहर गोपाल भार्गव (एम० ए० द्वितीय वर्ष) ने बड़ी तत्परता से मेरी सहायता की है। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की स्नेह संवलित कामना करता हूँ।

-पारस दास साहब

सत्य नाम

मुक्ति-प्रकाश

सद्गुरु-महिमा : शब्द

(१)

महिमा सत्यगुरु अपार, बिरले जन जाना ।। टेक ।।
जाना जिन गुरु प्रताप, मेटि गयो त्रिबिध ताप ।
सत मत सत गत की बात, हिय बिच पहिचाना ।।१।।
निर्भय रूप सत्य स्वरूप, निर्मल बानी अनूप ।
देखत छवि दयावन्त, तन मन सुख माना ।।२।।
सारशब्द को प्रकाश, घट घट में गुरु विलास ।
आपन जन लियो पास, परे तत्व छाना ।।३।।
चार भेद जाको बिम्ब, भेद नहिं पायो शम्भु ।
अक्षर बिबि जुक्ति साधि, जक्त में अरुझाना ।।४।।
लखि न परेव आदि अन्त, जहाँ अचल राज कंत ।
मानो सरिता समुद्र, बुन्द में छिपाना ।।५।।
काल खड़ा कालि आज, जरामरण लिए समाज ।
त्रिभुवन में पड़ी गाज, कोई ना बचाना ।।६।।
जैसे चक्की दरेर, कोई न बचत हेर फेर ।
बचैगा सोई जो, सत्य कील में लपटाना ।।७।।
धनि धनि सद्गुरु की शरण, परत बरत जरा मरण ।
तारन तरन शोक हरन, दुःख टरत नाना ।।८।।
दया रूप मिल्यो राम, सब बिधि भये सुफल काम ।
पाय अमर धाम, मदन नाम में समाना ।।९।।

(२)

आदि नाम को प्रनाम, गाजत गढ़ आठो जाम,
सोई सर्बज्ञ राम, सन्तन सुखदाई ॥ टेक ॥
पाँच तीन जाको अंश, षोडश ब्रह्म ताको बंश।
परखै कोई परम हंस, प्रभु की प्रभुताई ॥१॥
मूलशब्द को प्रकाश, निरालम्ब निरा-आस।
निरखत कोई सुघर दास, तन मन चित लाई ॥२॥
निर्भय निःतत्व रूप, निःअक्षर गति अनूप।
जहँवाँ नहिं छाँह धूप, अमर मन्दिर छाई ॥३॥
मधुर मधुर स्वर उठंग, मानो बीन औ मुरचंग।
सोई आदि ब्रह्म अंग, अबिगत दरसाई ॥४॥
त्रिभुवन को भाग देत, क्या चेतन्य क्या अचेत।
सुरति शब्द परम हेत, संतन निरमाई ॥५॥
जेहि घट मत बसत सार, सुरति शब्द को अधार।
जहँवाँ करतार द्वार, होय निशंक जाई ॥६॥
हे मन गुरु चरण सेव, जासे मिलत मुक्ति भेव।
सोई सतपुरुष देव, अमर पद मिलाई ॥७॥
निरख परख नाम रतन, हृदय बीच राख जतन।
राधापति शरण मदन, अचल धन कमाई ॥८॥

(३)

जो कहा मान मन मेरो, तो गुरु शब्द विवेकी हेरो ॥
जो गुरु सार शब्द रंग रहते, शब्दै बीच बसेरो।
ऐसे गुरु की करो बन्दना, दुरमति दूर खदेरो ॥१॥

पाँच शब्द गुण तीन तत्व में, शब्दै चित्त चितेरो।
शब्द स्वरूप लखो अबिनासी, बनै बात तब तेरो ॥२॥
आज काल में कुचल गयो है, काल श्वाँस को घेरो।
चित दे समुझ काल सिर ऊपर, क्या सोवत जाग सबेरो ॥३॥
जीव ब्रह्म केवल जब दरसै, मिटै भर्म को फेरो।
मदन मिलै मग सत्यलोक तब, बहुरि न यह जग फेरो ॥४॥

स्वरुप कबीर साहब

सारशब्द परमात्मा की वन्दना मैं अपनी इस चाम की ज़बान से किस तरह से कर सकता हूँ? जब शेष जी महाराज अपनी हज़ार ज़बान से उसके गुणानुवाद नहीं गा सके, और बेद कितेब उसकी वन्दना नहीं कर सके तो यह बंदा गंदा खाकी क्या मुँह खोल सकता है? हाँ इस क़दर कहूँगा कि अगर वह सत्य पुरुष, आप सत्यगुरु, शब्द रूप, ज़गत में न आते तो यह जीव काल के जाल और पंजे से किसी उपाय से नहीं छूट सकता था। इसी जीव के हेतु सद्गुरु कबीर साहब ने चारों युगों में आ आकर जीवों को काल के जाल से छूटने का उपदेश किया और चारों युगों में जुदा-जुदा अपना नाम प्रकट किया—सतयुग में सतसुकृत नाम बिदित हुआ, त्रेता-युग में मुनींद्र नाम से प्रकट हुए, फिर द्वापर युग में करुणामय कृपाल नाम से उपदेश किया और कलियुग में सत्य कबीर नाम से पुकार किया कि "ऐ जीवो, तुम मेरा उपदेश लेकर काल के पञ्जे से निकल जाओ, और सारशब्द की डोर पकड़ कर अपने घर, अमरलोक को चले जाओ, नहीं तो चौरासी से न छूटोगे।" देखिए सद्गुरु वचन—

चौपाई : सतयुग सत्यसुकृत होय टेरा । त्रेता नाम मुनीन्द्रजु मेरा ।।
द्वापर करुणामय कहवाये । कलियुग नाम कबीर धराये ।।

सद्गुरु के आने की समैया

इस कलियुग में सत्यगुरु साहब कबीर नूर रूप होकर अमर-लोक से जेठ सुदी पूर्णमासी, दिन सोमवार, सम्वत् १४५५, मुताविक़ जून सन् १३६८ ईसवी को काशीपुरी के लहर तालाब में पुरइन (कमल) के पत्ते पर बिहार करते हुए प्रकट होकर, नीरू जुलाहे को, जिसे अली नाम से भी पुकारते थे, मिले और जीवों को काल के जाल से छूटने का उपदेश करके १२० वर्ष बाद, माघ सुदी ११, बुधवार, सम्वत् १५७५ को मुक़ाम मगहर में संसार से गुप्त हो गये और फ़रमाया—

चौपाई

हमी दास दासन के दासा । अगम अगोचर हमरे पासा ।।
यहाँ वहाँ पाहीं दो ठाऊँ । सत्य कबीर कलि में मोर नाऊँ ।।
जो लेता हमहीं पुनि सोई । नाम धरे भूला सब कोई ।।
सबकी कहै कबीर कहावै । जेहि लखि परै सो मो मन भावै ।।

सत्यगुरु साहब कबीर ने अनंत वो बेशुमार बानी व बचन व ग्रन्थ हर एक ज़बान में फ़रमाया है, जो सब अनुभव में हैं और हर एक की समझ में नहीं आ सकते । इसी बानी को स्वसंवेद कहते हैं, जिसका अदल व हुक्म सब जीवों पर एक सा है । देखिए सद्गुरु वचन—

साखी : जेते पत्र बनस्पती, अरु गंगा की रेनु ।
पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैनु ।।

चौपाई

चौदह अरब ग्रंथ हम भाषा । सार बस्तु हम न्यारो राखा ।।

साखी

बलिहारी मैं अपने साहब की, जिन यह युक्ति बताई ।
उनकी शोभा किस बिधि कहिए, मोसन कही न जाई ।।
बिना ज्योति की जहँ उजियारी, सो दरसै वह दीया ।
निरखत होय कोलाहल भारी, वाही पुरुष समीया ।।

बयान निज ज्ञान प्राप्ति का

सत्यगुरु सत्य कबीर साहब की दया

सबसे पहले मैं बाबू केवल किशोर साहब को धन्यवाद देता हूँ, जिनकी बदौलत यह सद्‌गुरु कबीर साहब का ज्ञान पदार्थ मुझको प्राप्त हुआ और मेरा जन्म सुफल हुआ । जनाब बाबू साहब लखनऊ के कायस्थ, जो सत्यगुरु साहब कबीर के परम भक्त थे, ज़िला राय बरेली के पुलिस महकमें में सब इन्सपेक्टर थे । जो-जो उनकी मेहरबानी मेरे हाल पर थी उसकी तारीफ़ मुझसे नहीं हो सकती । मैं उनकी बन्दना नहीं कर सकता । उन्होंने जिस तरह मुझको इस गुमराही से निकाला, जिससे मेरा जन्म सुफल हुआ और जीवन मुक्ति का फल मिला, उसका वर्णन मेरी शक्ति से बाहर है ।

मनुष्यों को निरंजन ने अपना ऐसा जहरीला ज्ञान पिलाकर उनकी बुद्धि को फेर दिया कि उनका उबार होना दुर्लभ हो गया, वही जहर उनके रोम-रोम में भासित है, जिससे कि वे सतगुरु का अमृतरूपी ज्ञान नहीं ग्रहण करते—'रोम-रोम बिष भीनियाँ, अमृत

कहाँ समाय'। निरंजनी ज्ञानवश जिसने जिस बात की टेक पकड़ ली है उसको नहीं छोड़ता और अपनी हानि को नहीं देखता। देखिए सत्यगुरु बचन—

साखी : गही टेक छाँड़ै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
ऐसा तप्त अँगार है, ताहि चकोर चबाय।।

बाबू साहब का सत्संग मुझको पहिले अपनी भ्रष्ट बुद्धि के अनुकूल बहुत बुरा और कड़वा लगता था मगर जब उनके सत्संग पर ग़ौर हुआ और सतगुरु साहब कबीर के कलाम को सुना और समझा तब मालूम हुआ कि इन गुरुवा लोगों ने झूठ का प्रपंच फैला कर, जीवों को झूठी मुक्ति में फँसा कर, निरंजन काल के हवाले कर दिया जिससे बारम्बार वह चौरासी में रहा, कोई जीव सत्यलोक को नहीं जाने पाया। लौट-लौट कर वह आवागमन के फंदे में पड़ता है और अपने सत्यपुरुष से मिलने का ज्ञान क़बूल नहीं करता।

साखी : जो कोइ होई सत्य का किनका, सो हमका पतियाई।
नाहि तो कोटि यतन करि थाकै, बहुरि काल घर जाई।।

सत्यगुरु के कलाम में बहुत बड़ी तासीर है कि जीव फ़ौरन काल के देश से छूटता है। अगर कोई कान लगा कर सुने और समझे, तो उनके बचन से काल से छूट सकता है, मगर यह तो बक़ौल सत्यगुरु—"साँचे से भागा फिरै, झूँठे से बंधा"—कैसे इसको सद्गुरु का ज्ञान भासित हो ? यह सत्य-असत्य का निरुवार कुछ नहीं करता, और न इस बात का बिचार करता है कि मैं शरीर छोड़कर कहाँ जा बैठूँगा। यह जीव चारों युगों से निरंजन काल के अधीन होकर चौरासी में भर्म रहा है, और उसी की

भक्ति से मुक्ति चाहता है, जो नामुमकिन, असम्भव है। जब तक सद्गुरु का भेदी होकर सत्यपुरुष की भक्ति न करेगा, तब तक वह नहीं छूट सकता। "काल की चोट यह खाय पाजी।" बाबू साहब हर एक मत मतान्तर से बहुत वाक़िफ़ थे और सद्गुरु साहब कबीर के गम्भीर मत के बड़े भारी महरमी थे। मेरी नज़र में ऐसा शख्श मोहक़िक़ बिचार करने वाला वो महरमी या गुरुपद का खोजी नहीं आया। उन्होंने बहुत बड़ी कोशिश व परिश्रम से गुरु पदार्थ सारशब्द को हासिल किया जिससे जीव मुक्ति गति को पहुँचता है। जैसा कि सद्गुरु ने कहा है कि—'सारशब्द गहि बाँचिहो, मानो इतबारा'। फिर कहा है, 'सारशब्द बिन राज बिराजी'। गुरु नानक साहब ने भी इसी सारशब्द को गाया है। देखिए सिद्ध 'गुष्ट'—"क्या भर्मे सच सोचा होय, साँच शब्द बिन मुक्त न कोय।" बाबू साहब इसी की तलाश में महन्त माधोराम दास जी साहब के पास रानोपाली, ज़िला फ़ैज़ाबाद, को गये और उनसे यह चाहना की। महन्त साहब उस समय में इस पंथ के बहुत बड़े महात्मा थे। उनके समान कोई अवध में न था। महन्त जी साहब ने कहा, "भाई तू धन्य है जो ऐसे पदार्थ को ढूँढ़ने चला। यह पदार्थ सद्गुरी है, इसका लखाने वाला अब कोई संसार में दीख नहीं पड़ता। यह पदार्थ गुरु महाराज को सद्गुरु कबीर साहब से मिला था। यह उन्हीं की कृपा से मिल सकता है, उनके भेष में शायद कोई हो, तुम वहाँ तलाश करो। गुरु नानक साहब ने कहा है—

तिल घोंटत ताड़ी लगी, दिल दरिया के तीर।
नानक को संशय मिटी, सद्गुरु मिले कबीर॥

गुरु महराज को यह पदार्थ हासिल था, मगर यह उन्हीं तक रहा, फिर गुप्त हो गया। तुम कबीर साहब के यहाँ इस पदार्थ की तलाश करो, वहाँ कोई मुरशिद महरमी महात्मा होंगे !"

तब बाबू साहब लाचार होकर वापस चले आये और सद्‌गुरु साहब कबीर के घर में तलाश करने लगे। कुछ दिनों बाद जनाब हीरा-पति साहब के चले जनाब नाम नामी सद्‌गुरु दीवान जवाहिरपति साहब, जिनकी महिमा एक ज़बान वाला आदमी नहीं कह सकता, उनकी नसीब से मिल गये। 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।' आप साहब की शरण में आकर सारशब्द को सद्‌गुरु साहब की दया से पाकर उन्होंने जीवनमुक्ति का फल पाया और बहुत बड़े ज्ञानी और भेदी सत्यगुरु साहब कबीर के हुए। इसी पदार्थ को हासिल करने को अपनी सच्ची मुहब्बत से मुझको बारम्बार कहते रहे कि "जब तक कबीर साहब की भक्ति करके सारशब्द न पाओगे तब तक मुक्ति पद को भी न पाओगे, उलट-पुलट चौरासी में रहोगे। पूजा-पाठ, जप-तप से चौरासी से न छूटोगे। यह सब चौरासी के दाता हैं। इससे मुक्ति पद नहीं मिलेगा। यह सब काल के फन्दे हैं।" उस समय में मैं गुरु नानक साहब के मत में था और मुझको उपदेश जनाब बाबा जैराम दास साहब उदासी से था। जहाँ तक उनका उपदेश गुरु महाराज के पन्थ में था वही मुझको भी हुआ। मैं गुरु मंत्र का जाप, वो जपजी का पाठ, वो संध्या सोदर वो सुखमनी जी का पाठ नित्य करता था, और इसी को सारशब्द समझता था। यह ज्ञान न था कि सारशब्द या साँचशब्द कोई और वस्तु है जिसकी प्राप्ति से जीव मुक्ति गति को पहुँचता है। इसकी खबर मुझे बाबा

साहब की सत्संगति से हुई। देखिए सद्गुरु बचन—

सारशब्द कछु वस्तु है, सौदा करु भाई।

जैसा गुरु नानक साहब ने भी फ़रमाया है—

क्या भर्मे सच सोचा होय। साँच शब्द बिनु मुक्त न कोय॥

अब जब तक साँच शब्द से परिचय न होगा, जीव मुक्ति-गति न पावेगा। इस वास्ते सारशब्द की खोज करना चाहिए कि यह कहाँ है, कैसे मिलता है। जप-तप, पूजा-पाठ से जीव का उद्धार नहीं होता। सत्यगुरु ने फ़रमाया है कि—

जहँ लग बानी मुख परकासा। तहँ लग काल करै सब ग्रासा॥

इस विचार से मेरे दिल में बहुत बड़ा सोच पैदा हुआ कि उसी बीच में मेरी नसीब से उसी साल जून सन् १८८० ई० में हमारे सद्गुरु साहब दीवान जवाहिरपति साहब, जो बाबू साहब के आजा गुरु थे, उनके मकान पर तशरीफ़ लाये। यह खबर पाकर मैं भी दर्शन हेतु हाजिर हुआ, जिनके दर्शन से अज्ञान दूर होकर पाप का नाश होता है। जनाब सद्गुरु साहब ने पहले कुशल क्षेम पूछकर कहा, तुमको उपदेश कहाँ हुआ और मुक्ति का उपदेश क्या है? मैंने अर्ज़ किया कि मुझको उपदेश गुरु नानक साहब के यहाँ हुआ है और मैं गुरु मन्त्र का जाप और पाठ करता हूँ। जीव के मुक्त होने के वास्ते गुरु महराज ने 'सिद्ध-गुष्ट' में कहा है कि—

क्या भर्मैं सच सोचा होय। साँच शब्द बिन मुक्त न कोय॥
जैसे जल में कमल निरालम्ब मुरगाबी नीशाने।
सुरति शब्द भौसागर तरिए, नानक नाम बखाने॥
रहै एकान्त येको मन वसिया, आसा माह निरासू।

अगम अगोचर दीख दिखावै, नानक ताकर दासू ॥

वे इस कलाम को सुनकर बहुत ख़ुश हुए और फ़रमाया कि साँच शब्द तुमको मिला है। मैंने अर्ज़ किया कि यह कलाम गुरु महाराज का साँच शब्द है। क्या कोई और साँच शब्द है? तब सद्‌गुरु दीवान साहब ने फ़रमाया कि यह कलाम तो उसका सँदेसा है। बिना साँच शब्द के मिले जीव मुक्ति-गति को नहीं पा सकता। वह तो अगम अगोचर पद है। जब तक वह नहीं मिलता, मुक्ति नहीं होती। तुम अपने गुरु महाराज से पूछो और साँच शब्द से परिचय करो। बानी बचन के भरोसे मत रहो। इससे वह पदार्थ नहीं मिलेगा। इसके वसीले से उसकी खोज करनी चाहिए। तब मैंने अर्ज़ किया कि—जहाँ तक मुझको तालीम हुई है, यही है। इससे कुछ अधिक नहीं है। मेरी यह बात सद्‌गुरु साहब ने नापसन्द की और फ़रमाया कि—अपने गुरु साहब से जाँचो वह तुमको बतावेंगे। इसके बाद तो दीवान साहब चले गये और मेरे दिल में सोच पैदा हुआ। वही मसल हुई कि 'बाट चलत मोहे सतगुरु मिलिगे, दिये बिरह की पाती।' अब दिन-ब-दिन सोच बढ़ता गया। कुछ दिनों बाद मेरे गुरु महाराज आ गए। मैंने इस बात की याचना की कि हे स्वामी! मेरे ऊपर दया करके साँच शब्द बताइए, वह कहाँ है और कैसे मिलेगा, जिससे मेरी मुक्ति हो? गुरु साहब ने कहा कि, वह बचन गुरु महाराज का साँच शब्द है। इसके सिवाय और साँच नहीं है। यह सब भ्रम है। जो कोई गुरु के बचन को साँच मानेगा उसी की मुक्ति होगी। गुरु महाराज ने कहा है—

शब्द: धुन गुरू, सुरति धुन चेला। मिले परस्पर भये अकेला ॥

चेले को चाहिए कि गुरु के बचन पर सुरति लगावे तो

उसकी मुक्ति हो जावेगी। तब मैंने अर्ज़ किया कि, 'गुरु का बचन अगम अगोचर कैसे हो सकता है। यह सिफ़त तो परमात्मा की है। गुरु के बचन की यह तारीफ़ नहीं है। मेरा दिल इसको नहीं क़बूल करता। आप मुझसे परदा न रखिए!' इसी बात पर मुझसे तीन महीने तक हुज्जत रही। आख़ीर में जब गुरु साहब ने समझा तब फ़रमाया कि, भाई इसी को हम सब ढूँढ़ते हैं, तुम भी उसी को ढूँढ़ो। तब उस वक्त मुझको बहुत बड़ी बेचैनी हुई, मानो पेड़ से गिर पड़ा। तब मैंने सद्‌गुरु बन्दीछोर, जीवों को उबारने वाले सद्‌गुरु दीवान जवाहरपति साहब से पुकार की कि हे बन्दीछोर साहब! मेरे ऊपर दया करके, आइये और काल से छुड़ाइए, नहीं तो यह आप का जीव मुफ़्त में जाता है। मेरी पुकार सुनते ही सद्‌गुरु दीवान साहब कुटी खरौना, ज़िला जौनपुर से, मुक़ाम रायबरेली को दया करके आये और अपनी शरण में लेकर सारशब्द सत्यपुरुष से मिला कर मेरा जन्म सुफल किया और सद्‌गुरु साहब कबीर का चारों भेद समझा कर मेरे जन्म-मरण का दुःख दूर किया। इस मुक्ति पदार्थ के पाते ही सद्‌गुरु का यह बचन प्रत्यक्ष दीख पड़ा—ऊँचे महल राम चढ़ि देखा, घर घर कूप झुकाउ। यह बात बहुत ठीक जान पड़ी कि बिदून सारशब्द के पाए कोई मुक्ति गति को नहीं पा सकता है, सब जीव काल के अधीन होकर चौरासी भोगते हैं। इसकी साखी गुरु नानक साहब भी कहते हैं, देखिए 'सिद्धि-गुष्ट'—

क्या भर्मे सच सोचा होय, साँच शब्द बिन मुक्ति न कोय।

गुरु-प्रार्थना

अब जो मैं अपने सद्गुरु बन्दीछोर की कुछ बन्दना करना चाहूँ तो मेरा मुँह नहीं कि ज़बान खोल सकूँ। गुरु का माहात्म्य किसी से आज तक नहीं हो सका तो मुझ नाचीज़ से क्या हो सकता है ? गुरु की महिमा वेद भी नहीं गा सकते तो यह मानुष बिचारा क्या करेगा। गुरु के समान संसार में कोई नहीं; अपनी नज़ीर वह आप ही है। मेरे सद्गुरु बन्दीछोर दीवान जवाहर-पति साहब, जिनकी महिमा कहते मुझे शर्म आती है, जिनका नाम मेरे हृदय में प्रकाशित है, उनका नाम मुख से लेना उचित नहीं, परन्तु यह कहूँगा कि इस वक्त में वे आपही शब्द रूप कबीर हैं या ख़ुद कबीर साहब के अवतार हैं। मेरे सत्यगुरु बन्दीछोर का स्थान जिसे सत्यलोक कहते हैं, गाँव, खरौना, डाकखाना फ़तेहगंज, जिला जौनपुर में है, और सद्गुरु साहब को उपदेश सद्गुरु बन्दी-छोर दूलमपति साहब से हुआ था। प्रथम हमारे सद्गुरु दीवान साहब योगिराज थे और अष्टांग सिद्ध था। जब आप को सद्गुरु दूलमपति साहब मिले और सत्संग हुआ तो योगक्रिया खंडित हो गई, तब दीवान साहब को बड़ी चिन्ता पैदा हुई। तब उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि—दुइ बात छोड़ि देवइ चाही यानी कल कानि औ चकपक। तब दीवान साहब ने सद्गुरु दूलमपति साहब की शरण में आकर सद्गुरु कबीर साहब के चारों भेद के भेदी होकर, सारशब्द को अपने सद्गुरु साहब से हासिल किया, जैसा कि आपके बचन से मालूम होगा—

साखी : शब्द रूप करुना अयन, सतगुरु सत्य कबीर।
जवाहरपति तेहि शरण को, पावहिं मति गम्भीर ॥

ग्रंथकार महात्मा मोहनपति साहब (खड़े हुए)
अपने गुरु दीवान जवाहिरपति साहब के साथ

सत्यलोकवासी सद्गुरु दीवान जवाहिरपति साहब
आचार्य गद्दी बड़ैया (ग्रंथकार के गुरु)

चिंता मिलन अपार मोहिं, सारशब्द विज्ञान।
ब्रह्म गिरा भई गगन से, तजु चक-पक कलकानि॥
दूलमपति सतगुरु मिले, भेद ज्ञान समुझाय।
जीव भर्म सब मेटि के, सूरति शब्द मिलाय॥

सत्यगुरु दूलमपति साहब की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? आपको उपदेश सद्गुरु मदन साहब से मिला था, जिनकी महिमा कहते हुए देवताओं को भी लज्जा आवेगी। ऐसे सत्यपुरुष महात्मा कहाँ मिलते हैं? किसका ऐसा भाग्य है? धन्य वह समय था कि जिस समय सद्गुरु मदन साहब थे और धन्य भाग्य उन पुरुषों के थे जो नित्य साहब के दर्शन पाते रहे और आप के उपदेश से जीवन-मुक्ति का फल पाया। सद्गुरु मदन साहब को उपदेश सद्गुरु राधापति साहब से हुआ था, जो ग़ैब स्थान से प्रकट हुए थे। देखिए 'नाम प्रकाश' : वचन स्वरुप मदन साहब—

राधापति गुरु धन्य हैं, धन्य हमारो भाग।
जेहि टुक नज़र निहारते, भये नाम अनुराग॥
होत नाम अनुराग के, चित चरणन दृढ़ दीन।
गुरु पूरा पद पाय के, ज्ञान की दीक्षा लीन॥
ज्ञान की दीक्षा लेत ही, भया ज्ञान प्रकाश।
आदि अन्त उत्पति प्रलय, सूझत भये भ्रम नाश॥
क़ादिर गश्त रहिमत यज़दानी, याफ़त मुरशिद ज़मीर नूरानी।
नूर येज़िद बग़ैब दीद, मदन गश्त महरम जिसिर्सुबहानी॥

सद्गुरु राधापति साहब ख़ुद कबीर साहब थे। कबीर साहब ने उस समय अपना नाम राधापति साहब ज़ाहिर किया और सत्य-

गुरु मदन साहब पर कृपा दृष्टि करके सारशब्द का उपदेश किया, और अपने चार भेद, जो युग-युग से पुकारते आये आप को समझा कर अपना भेदी बनाया, और हुकुम दिया कि तुम जीवों को उपदेश करके निरंजन काल से छुड़ा कर सत्यलोक को पहुँचाओ, और यह उपदेश करके गुप्त हो गये।

गुरु-प्रणाली

अब सद्गुरु मदन साहब की व्यवस्था सुनिए। जनाब सद्गुरु मदन साहब बहुत बड़े रईस, आली ख़ानदान, गाँव खरौना, ज़िले जौनपुर के थे। जब सद्गुरु कबीर साहब आपको उपदेश करके गुप्त हो गये, तब उसी वक़्त आप दुनियाँ-दौलत छोड़कर त्यागी हो गये और अपनी कुटिया उसी गाँव खरौना में बना कर रहने लगे और सद्गुरु कबीर साहब के हुकुम के मुताबिक़ इस गम्भीर मत के उपदेशक हुए। जैसे कि धर्मदास साहब हुए, वैसे ही सद्गुरु मदन साहब हुए और सारशब्द का उपदेश, जैसा कि हुकुम साहब कबीर का था, किया जिसको निरंजनी लोगों ने छिपा दिया, सारशब्द का परिचय न हुआ, निरंजनी ज्ञान में फँस कर चौरासी की राह ली, और अपने साथ अपने चेलों को भी ले बहे। उस अंधकार को दूर करने को कबीर साहब सत्यलोक से आकर, सद्गुरु मदन साहब को चेताये और सद्गुरु मदन साहब उसी हुकुम के मुताबिक़ सद्गुरु साहब कबीर के इस गम्भीर मत के उपदेशक हुए, और जीवों को सारशब्द सत्यपुरुष की चेतावनियों को समझाने में बड़ा परिश्रम किया और इस मत की तरक़्क़ी की उन्होंने हज़ारों शब्द, साखी, ग्रन्थ सद्गुरु कबीर साहब के हुकुम के

सत्यगुरु मदनपति साहब
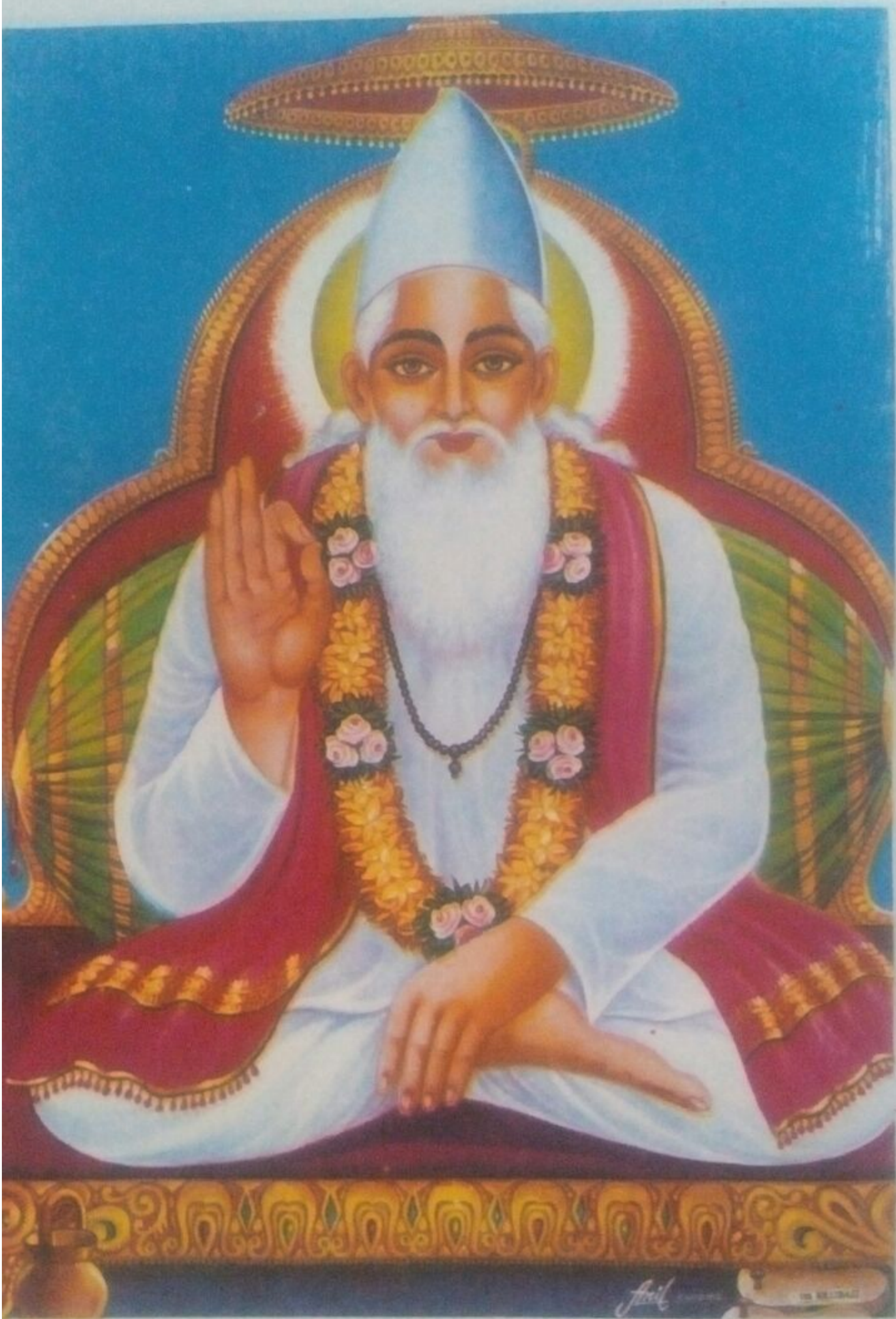
सत्यगुरु कबीर साहब

मुताबिक सारशब्द सतपुरुष की पहिचान में कहा और सत्यगुरु कबीर साहब के चारों भेदों को बीजकादि ग्रन्थों से निकाल करके अपने ग्रन्थ 'नाम प्रकाश' में ऐसी ख़ूबी से कहा जिसके देखने से सद्गुरु के कलाम का परिचय हो। सारशब्द की पहिचान में बहुत परिश्रम नहीं पड़ता और जो मनुष्य सद्गुरु का भेदी हो जाता है, सद्गुरु के सारशब्द से मिल कर परमधाम को पहुँचता है, फिर आवागवन में नहीं पड़ता। सद्गुरु मदन साहब ने, सत्य-पुरुष के अमरलोक को सिधारने से पहले, अपनी जगह पर सत्य-गुरु दूलमपति साहब को क़ायम किया। सत्यगुरु दूलमपति साहब ने भी वैसे ही प्रकाश किया और बहुत से मुझ जैसे अज्ञानियों को काल के फंद से छुड़ाकर चौरासी से बचा लिया और जीवन-मुक्त कर दिया। सद्गुरु दूलमपति साहब अपनी कुटी बड़ैया गाँव में, खास जौनपुर में जो कि जँघई रेलवे स्टेशन से पूर्व पाँच मील पर है, और कुटी खरौना से २० मील पश्चिम तरफ़ है, क़ायम किया। धन्य भाग्य उन जीवों के जहाँ सद्गुरु साहब ने इस ज्ञान पदार्थ का प्रकाश किया। इस वक्त इन दोनों स्थानों पर बहुत से साधु लोग रहते हैं और साल में दो भंडारे चैत्र और कार्तिक की पूर्णमासी को होते हैं, जब कि बहुत बड़ा मेला संतों का होता है, और गृहस्थ वो राजा बाबू सब आकर शिष्य व सेवक होते हैं, और साहब के गुणानुवाद गाते तथा इन दोनों महात्माओं की जय-जयकार करते हुए जीवन्मुक्ति का फल चखते हैं और अपने-अपने भाग्य की सराहना करते हैं। सद्गुरु दूलमपति साहब जब अपना प्रकाश करके सत्यलोक को सिधारने लगे तब सद्गुरु महंत विवेकपति साहब को अपनी जगह पर गद्दीनशीन किया

और सद्गुरु दीवान जवाहरपति साहब को इस गद्दी का दीवान बनाया। यह इन्तज़ाम करके सद्गुरु दूलमपति साहब अमरलोक को चले गये। सद्गुरु महंत विवेकपति साहब और सद्गुरु दीवान जवाहरपति साहब इन दोनों स्थानों के मुन्तजिमकार उपदेशक हैं और जीवों को सत्यपुरुष से मिलाने वाले सारशब्द का उपदेश करके जीवन्मुक्ति का फल देते हैं। सत्यगुरु महंत विवेकपति साहब हमेशा गद्दीनशीन स्थान बड़ैया पर रहते हैं, और जनाब सद्गुरु दीवान जवाहरपति साहब हर जगह पर पहुँच कर जीवों को चेता-चेता कर सत्यलोक को पहुँचाते रहते हैं और निरंजन काल के जाल से छुड़ा कर जीवों को मुक्ताया करते हैं। सद्गुरु दीवान साहब ने हज़ारों जौहरियों से, जो हरएक मत-मतान्तर से गुज़रे हैं, उनके मुक्ति सिद्धान्त को सद्गुरु के सारशब्द से मुक़ाबला करके उनको परखाया, तो आपका यह हीरा अनमोल ठहरा और उनके मुक्ताने के हीरे झूठे व काँच के ठहरे। तब उन महात्माओं ने अपना खरा-खोटा परखा कर आपका सच्चा हीरा लेकर शरण में आकर, गले बाँधा और उन काँच के हीरों को फेंककर आप को अपना सद्गुरु मान कर सेवा बन्दगी में लग गये और जीवन-मुक्ति का फल चखने लगे। इस तरह पर सब मजहब और मत के बहुत से लोग कबीर साहब के भेष में दाखिल हो गए और हो रहे हैं, व बड़े-बड़े सिद्ध, महात्मा, योगी तपस्वी लोग सब पाखंड मत और भ्रम छोड़ कर आपके क़दमों में लगे और अपनी उस व्यवस्था को, जो बेकार रियाजत सिद्धि की लालच में गई, अब तक अफ़सोस करते हैं और सतगुरु को धन्य-धन्य कहते हैं। बेशक धन्य भाग्य उनके हैं जो सत्यगुरु को पहचान कर सत्य-

पुरुष की भक्ति में लगे ! 'धनि सतगुरु जिन राह बताई ।' इस वक़्त में ये दोनों महात्मा इस मुक्ति-पदार्थ के दाता और जीवों को जरा-मरण से छुड़ाने वाले हैं। और कोई नजर नहीं आता, और सब काल के जाल में फँसाने वाले, जगत में पाखंड रूप भेष बनाकर, चौरासी का जाल लिए घूम रहे हैं, कोई जीवों को उबारने वाला नहीं दीख पड़ता ।

सद्गुरु महंत विवेकपति साहब और सद्गुरु दीवान जवाहर-पति साहब जरा-मरण का दुःख दूर करने में और मुक्ति-फल देने में कोटि सूर्य से अधिक प्रकाश कर रहे हैं। जिस किसी को अपना जरा-मरण का दुःख छुड़ाना हो, या कुछ सत्संग का हौसला हो, खुले-दरबार हाज़िर होकर मुक्ति-पदार्थ को लें, नहीं तो फिर पीछे पछतावेंगे तो मुझको दोष न होगा, और जो इसके ख़िलाफ़ पावें तो मुझको गाली व लानत से याद करेंगे, और नहीं तो यह नाचीज जिसकी कुछ हस्ती नहीं, उनके आशीर्वाद से सद्गुरु के दर्बार में सरबुलंद और सुर्ख़रू मेरे गुनाहों को साहब से बखशावेंगे, जिसकी बन्दना मुझसे न हो सकेगी और जो लोग इन दोनों महात्माओं से नहीं मिलेंगे वे फिर हाथ मलेंगे, और पछतावेंगे । भाई ! 'ईश्वर मिलना कठिन है, जन्म-जन्म जहड़ाय ।' सद्गुरु महंत साहब की महिमा कहने योग्य नहीं है। आपने कबीर साहब के हुकुम के मुताबिक़ छः महीने तक गुफा में बैठ कर साधन किया । देखिए 'सुरति-शब्द-संवाद' में सद्गुरु बचन—

साखी : दृष्टि रहे लव लाय, आठ पहर अभ्यास कर ।
अपनी दृष्टि समाय, चक्षु मूँदि देखत रहै ॥

नींद भूख सब जाय, ऐसा नाम प्रताप है।
नाम रूप वह आहि, सत्य मानि साधन करे।।
देख लेहु षट् मास, भर्म कर्म सब छोड़ि के।
रहो दृष्टि की आस, शब्द सुरति जो गहि रहो।।
वाही के सब नाम, सुरति निरति जो मैं कहूँ।
सत्य पुरुष वह धाम, चौथ लोक वाही अहै।।
झूठे में दिन खोय उमर गवायो भूल में।
मोर बचन गहु सोय, सत्य मानि विश्वास कर।।
जीवत मृतक होय, सुरति सम्हारो शब्द गहि।
डारो चतुराई खोय, करु साधन षट् मास तें।।
जब देखा वह ठौर, सत्य पुरुष को रूप जो।
कही सुनी कछु और, झूँठ होय तो छोड़ दे।।

बचन बीजक : चौपाई

ऐसी बिधि से मोकहँ ध्यावें। छठे माह सो दर्शन पावें।।
गुप्त रहों भाव सब लेऊँ। कौनी भाँति दिखाई देऊँ।।

सद्गुरु महंत साहब ने उसी हुकुम के मुताबिक़ साधना षट् मास तक बराबर की और सारशब्द सत्यपुरुष का दर्शन पाया, जैसा आपके बचन से मालूम होगा—

साखी : गुरु पद रज हृदय धरों, करों रैन दिन ध्यान।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, पायो निर्मल ज्ञान।।
दूलमपति की कृपा ते, रही न संसय रेफ।
तीन लोक के बाहिरे, परख्यो शब्द विवेक।।

इन दोनों महात्माओं की शरण में जाने से जन्म-जन्म के मोरचे छूटते हैं जैसा कि सद्गुरु ने गुरु की महिमा में कहा

है। देखिए—

साखी : गुरु तो ऐसा चाहिए, ज्यों सिकलीगर होय।
जन्म-जन्म को मोरचे, छिन में डारे खोय॥

यह सिफ़त इन्हीं दोनों महात्माओं में है। जो लोग ऐसे महापुरुषों से मिल कर अपना जन्म नहीं सुफल करते उनको धिक्कार है।

अब मैं इस ग्रन्थ को उन्हीं का नाम लेकर शुरू करता हूँ। मेरी लज्जा उन्हीं के हाथ है। मुझसे उनके कुछ गुणानुवाद नहीं हो सकते।
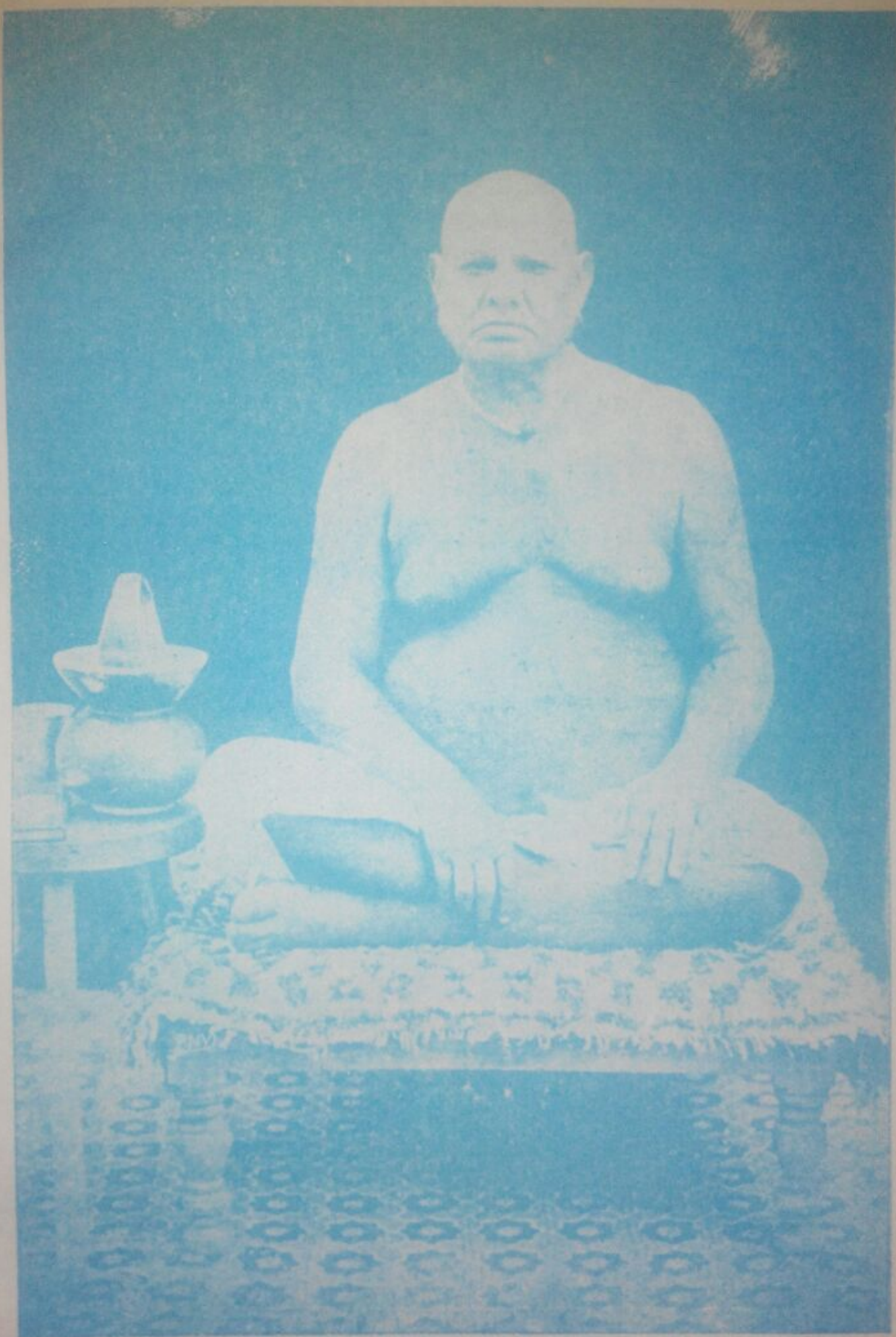
सत्यलोकवासी आचार्य सद्गुरु महन्त विवेकपति साहब,
आचार्य गद्दी बड़ैया के तृतीय आचार्य

सत्याचार्य पूज्य चरण सद्‌गुरु गुरुशरणपति साहब,
आचार्य गद्दी बड़ैया के चतुर्थ आचार्य

ग्रंथ-परिचय

इस ग्रन्थ का नाम 'मुक्ति-प्रकाश' अथवा 'मुक्ति-परीक्षा' रखा गया है, जिसके देखने से हमारे गुरुभाइयों को मालूम होगा कि यह जीव कौन से पदार्थ के मिलने से मुक्ति-पद को पहुँचता है। मुक्ति-पद के लिए जगत में जितने सिद्धान्त हो गये हैं, उन सब का मुक्ति-पद के दाता सारशब्द सिद्धान्त से जब मिलान होगा, तब खुलेगा कि कौन सत्य मुक्ति का दाता है और कौन जगत का। यह बात तो परीक्षा करने से मालूम होगी। सब भाइयों से मेरी प्रार्थना है कि इसकी परीक्षा और जाँच करके सत्य-असत्य का विचार कर लें नहीं तो धोखे में पड़ेंगे, क्योंकि जगत असत्य व दुःख का मूल है और मुक्ति सत्य सुख का फल है। सबको चाहिये कि अपने जीते जी इसका बन्दोबस्त करलें और सत्यपुरुष से मिलें, तब ठीक होगा, क्योंकि मरने पर मुक्त होना झूठ है।

सद्गुरु बचन : शब्द

सुनिए संत महंता हो अस सोइ करिए उपाय।
मुए मिलन की छाड़हु आशा, जियत जीव मिल जाय ॥

हमारे गुरुभाइयों को मालूम रहे कि जगत में दो सिद्धान्त मुक्ति के हैं—एक निरंजन काल की तरफ़ से, दूसरा सद्गुरु दयाल की तरफ़ से। काल की तरफ़ से जो सिद्धान्त मुक्ति के हैं, उनसे बार-बार चौरासी में रहना होगा और सद्गुरु दयाल के सिद्धान्त से सच्ची मुक्ति मिलती है, जीव चौरासी से छूटकर अमर-लोक में पहुँचता है। इसकी पहिचान अवश्य कर लेनी चाहिए,

नहीं तो काल से नजात (मुक्ति) न मिलेगी। सद्गुरु दयाल से मिलने के वास्ते सारशब्द का सहारा लेने को कहा है, और उससे मिलने के तरीक़े बताये हैं, जो सब से न्यारे हैं। निरंजन काल के सिद्धान्त में पाँच अक्षर मुक्ति के हैं—रकार, मकार, सकार, हकार, ओंकार—जिनकी साधना से जीव हमेशा आवागमन के फेर में रह कर चौरासी में रहता है।

साखी

नाना नाच नचाय के, राखै अपने हाथ ॥
राम नाम कबहूँ नहिं आवे। भटक-भटक फिर योनिहि आवे ॥
राम नाम दुर्लभ है भाई। धनि सद्गुरु जिन राह बताई ॥
आदि गुरू का ज्ञान लै, कौन पुकार कबीर।
नाम कहै सो भूल है, ज्ञान लखै सो धीर ॥

चौपाई

गुरु कबीर का सब घट बासा। गुप्त प्रगट कछु अजब तमाशा ॥
गुप्त प्रगट कहु कैसे बूझै। बिन गुरु ज्ञान आँख नहीं सूझै ॥
जहाँ सन्त तहाँ प्रगट भयऊ। जहाँ असंत गुप्त वहाँ रहेऊ ॥
सबकी कहै कबीर कहावै। जेहि लख परै सो मो मन भावै ॥
साखी : आदि कहा अब कहत हैं, अन्त कहैगा सोय।
सो बक्ता जेहिं लखि परै, तेहि गुरु परिचय होय ॥

सत्यगुरु कबीर ने फ़रमाया है कि जब यह जीव सारशब्द सत्यपुरुष में मुक्त था तब कोई और दूसरा न था। जब निरंजन और आद्या प्रकट हुए और उनको सत्यपुरुष से शून्य देश रहने को मिला तब निरंजन जीव को फँसाने के वास्ते षट् प्रकार की देह बना कर जीव को अमरलोक से लेकर इधर शून्य देश में

आ गया, और उन्हीं छहों देहों में जीव को फँसा रक्खा और आप न्यारा होकर इस पर हाकिम बन बैठा। जब यह जीव निरंजन और आद्या के बहकाने से इधर को चला तभी सत्यगुरु ने इसको मना किया और समझाया कि तू वहाँ न जा, नहीं तो खराब होगा। जीव ने सद्गुरु के बचन को न माना और निरंजन के साथ चलता हुआ। जब यह फिर लौट कर न जा सका, तब सद्गुरु इसे काल से छुड़ाने को जगत में आए और फ़र्माया—

साखी : जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहँ चला बिगोय॥

सद्गुरु जीव से कहते हैं कि तूने मेरा बचन न माना, और अपने सारशब्द और सत्यपुरुष को छोड़ कर यहाँ नष्ट हो रहा है, चौरासी से नहीं निकलने पाता। अपने उस मुक्ति-आनन्द को छोड़ कर यहाँ दु:ख भोग रहा है। तू अपने सारशब्द सत्यपुरुष को भूल गया, तेरा वह सत्यपुरुष नि:अक्षर, नि:तत्व, विदेह स्वरूप सब से न्यारा, सब में व्यापक, हर जगह मौजूद है। तू वहाँ की बादशाही छोड़ कर इस गदाई में मारा-मारा घूमता है, तेरा वह देश अजर-अमर है, यह काल का देश जरा-मरण दु:ख का भाँडा है, जिससे तेरा निकलना बहुत दुर्लभ है। अब भी अगर तू इस शब्द के मुताबिक़ अमल करेगा तो इस पिंड-ब्रह्माण्ड के जाल से निकल कर अपने अमरलोक को चला जावेगा, फिर तुझे कोई नहीं रोक सकता।

शब्द

सुरति मूल ठिकाना जानो, ताहि खोज बैरागिया।
पिंड ब्रह्माण्ड दोनों से न्यारा, कहु कैसे लखि पाइया।
बिन गुरु गम्य कहाँ से पावे, फिर काया धरि आइया॥

जब लग शब्द संधि नहिं पावे, चौरासी में आइया।
गुरु जौहरी जो भेद बतावे, औघट घाट लखाइया॥
सुरति संयोग शब्द सहिदानी, गुरु गमि लोक पठाइया।
कोटि ज्ञान ते भिन्न पसारा, सुनो मूल निज बानियाँ॥
यह तो संधि सबन ते न्यारी, लेव हंस पहचानियाँ।
कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छूटैं नर्क की खानियाँ॥

अब जब तक जीव सारशब्द सत्यपुरुष परमात्मा को नहीं पावेगा, चौरासी के जाल से नहीं छूटेगा; जब उससे मिलेगा, तभी छूटेगा, इसमें संदेह नहीं। देखिए सद्गुरु बचन—

मदन परम पद जो मिलै, दै अंजन गुरु पद रेनु।
जहवाँ के तहवाँ मिलै, ना कछु लेन न देन॥

सुरति मोरी नाम से अटकी,
जैसे सरिता सिंधु समानी फेरि ना पलटी॥

यह काल निरंजन अमर लोक से निकाल दिया गया, कुछ नाफ़रमानी की, यानी आज्ञा न मानी। अब वहाँ जाने नहीं पाता, इसी से काल निरंजन ने यह अपना देश शून्याकार में सबसे अलग बसाया और उसमें तीन लोक, चौदह भुवन बनाया और आप चौधरियों का मालिक बन बैठा, और सत्यपुरुष के लोक में जीव के जाने का रास्ता बन्द कर दिया। वह सारशब्द सत्यपुरुष परमात्मा आप ही आप है। वहाँ पर दुनियाँ भाव नहीं है। वही सब का कर्त्ता व मालिक व सब का बीज व मुक्ति का भंडार है, जिसकी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। वह विदेह रूप सब से न्यारा, गुप्त हो कर सब जगह, सर्वव्यापक व अन्तर्यामी, हाज़िर-नाज़िर भरपूर है, जिसका पता पूरे मुर्शिद महरमी से

मिल सकता है।

चौपाई

गुरु पूरा होय सोई बतावै। बाँह पकरि लोक पहुँचावै ।।

उस सारशब्द सत्यपुरुष परमात्मा से प्रथम रचना में सोलह सुत अंश रूप प्रकट हुए, उनमें से पाँचवाँ पुत्र निरंजन है। यह काल रूप अंश बहुत बली हुआ, इसने मालिक से अपने लिए अलाहिदा देश चाहा। तब मालिक ने यह शून्य देश दिया कि जाकर आबाद करो। तब निरंजन काल ने साज माँगा। मालिक ने हुकुम दिया कि अपने भाई कूर्म से माँग ले, उसके पास सब साज है। ऐसा हुक्म पाते ही वह कूर्म जी के पास गया और जबरदस्ती उनका पेट फाड़ कर पाँच तत्त्व, सूर्य, चन्द्र, तारा-गणादि लेकर चलता हुआ और रचना करने लगा। जब चैतन्य आत्मा के बिना रचना न हो सकी तब उसने सत्तर युग तक मालिक की प्रार्थना, इबादत की तब मालिक से फिर आदि शक्ति तीन गुण के साथ प्रकट हुई। वह भी निरंजन काल के हवाले हुई। यह सब साज लेकर निरंजन व आद्या दोनों शून्य देश में हो रहे, और दोनों ने मिल कर जगत की रचना की। यह सब कथा रूपक अलंकार के दृष्टान्त से कही गई है जैसा कि वेद में लिखा है, कि—ईश्वर कहता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के सम-तुल्य है और सामवेद लोमों के समान और यजुर्वेद हृदय की नाईं और ऋग्वेद प्राण के समान है। लेकिन ईश्वर को निराकार कहते हैं, तो मुख और हृदय कहाँ हैं? यह केवल दृष्टान्त है। इसका प्रमाण यजुर्वेद में है, 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में है जिसकी कथा सद्गुरु ने अपने ग्रन्थ 'अनुराग सागर' में कही है; उसके देखने से

सब हाल मालूम होगा। जब यह जीव अपने विदेह स्वरूप को छोड़कर इधर छठीं देह में निरंजन के यहाँ चलता भया तो इसकी सुरत विदेह स्वरूप से गिर गई, और यह विदेही से देही हो गया। देह धारण करते ही वह पंचतत्त्व के जाल में फँस गया और निरंजन व आद्या के चंगुल में पड़कर चौरासी भोगने लगा, और इन्हीं को अपना मालिक समझने लगा। अब यह निरंजन काल के जाल से अपने अमरलोक को नहीं जाने पाता, जैसा कि सद्‌गुरु के बचन से मालूम होगा—

शब्द

ऐ जियरा तूं अमर लोक के पर्‌यो काल वश आई हो।
मनहिं स्वरूपी देव निरंजन, तुम्हहिं राखि भर्माई हो॥
पाँच पचीस तीन का पिंजरा, तामें तुमको राखै हो।
तुमको बिसर गई सुधि घर की, महिमा आपन भाखै हो॥
निराकार निरगुण है माया, तुमको नाच नचावै हो।
चर्म दृष्टि का कुलफा दै के, चौरासी भर्मावै हो॥
चार वेद जाकी है स्वाँसा, ब्रह्मा स्तुति गाई हो।
सो कथि ब्रह्मा जगत भुलाया, तेहि मारग सब जाई हो॥
योग यज्ञ नेम ब्रत पूजा, बहु परपंच अपारा हो।
जैसे बधिक ओट टाटी के, दे विश्वास अहारा हो॥
सतगुरु पीव जीव के रक्षक, तासे करहु मिलाना हो।
जिनके मिले परम सुख उपजे, पावो पद निर्बाना हो॥
जुगन - जुगन हम आय चेतावा कोई कोई हंस हमारा हो।
कहैं कबीर ताहि पहुँचावा, सत्य पुरुष दरबारा हो॥

जब निरंजन काल को जगत रचने का यह सामान मिल

गया तब इस शून्य देश में तीन लोक, चौदह भुवन रच कर चौरासी लक्ष योनियों में उसने जीवों को बाँध दिया। देखिए शब्द—

साधो निरंजन खेल पसारा।
स्वर्ग पताल रच्यो महि मंडल, तीन लोक बिस्तारा।
ठाँव ठाँव तीरथ व्रत थाप्यो, ठगने को संसारा॥
अमर लोक जहाँ पुरुष विदेही, तिनके मूँदे द्वारा।
भँवरी दे दे जीव भुलायो, क्या करै जीव बिचारा॥
नारि पुरुष से गाँठ जुरावे, बहु बिधि फंद सँवारा।
तिरदेवा ब्याधा भए, लिए विष का चारा॥
कर्म की बंशी लगाय के, पकड़े संसारा।
ज्योति स्वरूपी हाकिमा, जिन अमल पसारा॥
अमल मिटाऊँ तासु का, पठऊँ भव पारा।
कहैं कबीर धर्मदास सों, जो निज होय हमारा॥

जब से यह जीव देह में आया, निरंजन के अधीन होकर वह उसी को अपना मालिक समझने लगा। इसकी सुरति उस महाचैतन्य सारशब्द सत्यपुरुष से गिर गई। वह भूल में पड़ गया और वहाँ तक जाने का रास्ता बन्द कर दिया। न अब वह रास्ता मिलता है न जीव उधर जाने पाता है। तब सद्गुरु कबीर साहब सत्यलोक से इसकी भूल मिटाने और राह बताने को दया करके जगत में आये और उसको सुधि दिलाये कि जब तू मुक्त था तब कुछ न था, तू ही तू था। मेरा कहना न माना और इस छठी देह में आकर खराब हो रहा है। देख! अब मैं तुझको वह रास्ता बतलाता हूँ, अब काल के जाल में न आना इससे निकल जा।

साखी: दसवाँ द्वारा गुप्त है, ब्रह्मरंध्र है ठौर।

तहवां सुरति लिप्त करो, देह तजै फिर और ।।

पहिले यह देखना चाहिए कि वह छवों देह कौन-कौन से हैं, जिनमें यह जीव फँसा है। इसकी फ़िक्र सद्गुरु द्वारा करनी चाहिए। देखिए सद्गुरु ने षट् शरीर के वर्णन में कहा है—

शब्द

संतो षट् प्रकार की देही ।
स्थूल, सूक्ष्म, कारन, महाकारन, केवल, हंस कि लेही ।।
साढ़े तीन हाथ परमाना, स्थूल शरीर बखानी ।
राता वरण बैखरी वाचा, जागृत अवस्था जानी ।।
रजोगुण्यी ओंकार मात्रा का, त्रिकुटी है स्थाना ।
मुक्त श्लोक प्रथम पद गायत्री, ब्रह्मा देव बखाना ।।
पृथ्वी तत्व खेचरी मुद्रा, मग पपील घट कासा ।
क्षर निर्णय बड़वाग्नि दश इन्द्री, देव चतुर्दश वासा ।
और अहै ऋग्वेद बतावै, अर्ध शून्य संचारा ।
सत्य लोक बिष का अभिमानी, विषयानन्द हकारा ।।
आदि अन्त औ मध्य शब्द यह, लखौ कोई बुध बीरा ।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, इत स्थूल शरीरा ।।१।।

संतो सूक्ष्म देह प्रमाना ।
सूक्ष्म देह अंगुष्ट बराबरि, स्वप्न अवस्था जाना ।।
श्वेत वर्ण ओंकार मात्रा का, सतोगुण विष्णु देवा ।
अर्ध्व ऊर्ध्व तो यजुर्वेद है, कंठ स्थान अहे वा ।।
मुक्ति समीप लोक बैकुंठम, पालन किरिया राखै ।
मारग बिहंग भोचरी मुद्रा, अक्षर निर्णय भाखै ।।
आब तत्व कोहं हंकारा, मन्दा अग्नी कहिए ।
पंच प्रान द्वितिया पद गायत्री, मध्यमा बानी कहिए ।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधम्, मन बुधि चित हंकारा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह तन सूक्षम सारा ॥२॥

संतो कारण देह सुरेखा ।
आधा पर्व प्रमान तमोगुण, कारा वर्ण परेखा ॥
मध्या शून्य मकार मात्रा, हृदय सो स्थाना ।
महदाकाश चाचरी मुद्रा, इच्छा शक्ती जाना ॥
उददा अग्नि सुषुप्ति अवस्था, निर्णय कंठ स्थानी ।
कपि मारग त्रितिया पद गायत्री, अहै प्राज्ञ अभिमानी ॥
सामवेद पश्यंती बाचा, मुक्ति स्वरूप बखानी ।
तेज तत्व अद्वैतानंदम् है, ईश्वर हंकार निर्बानी ॥
अहै विशद महातम जामें, तामें कछु न समाई ।
कारण देह इती सम्पूरण, कहैं कबीर बुझाई ॥३॥

संतो महा कारण तन जाना ।
नील वर्ण औ सोहं देवा, है मशहूर प्रमाना ॥
नाभि स्थान विकार मात्रा, चिदाकाश परा बानी ।
मारग मीन अगोचर मुद्रा, वेद अथर्वन जानी ॥
उज्ज्वल कला चतुर्पद गायत्री, आदि शक्ति तत्व वाय ।
आश्रय लोक विदेहानंदम्, मुक्ति सायुज्य बताय ॥
निर्णय प्रकाशक तुरी अवस्था, प्रतिज्ञात, शिशु रूप अभिमानी ।
शीव सनेह कारण महा कारण, तन एवों कबीर लखानी ॥४॥

संतो केवल देह बखाना ।
केवल देह सकल का साक्षी, भँवर गुफा स्थाना ॥
निराकाश अरु लोक निराश्रै, निर्णय ज्ञान विशेषा ।
सूक्ष्म बेद है उनमुनि मुद्रा, उनमुनि बानी लेखा ॥

ब्रह्मानंद को है हंकारा, ब्रह्म ज्ञान को माना।
पूरण बोध अवस्था कहिए, ज्योति स्वरूपी जाना ।।
पुनि-पुनि गिरि-गिरि, चूर मात्रा, नीरंजन अभिमानी।
परमारथ पंचम पद गायत्री, परा मुक्ति पहिचानी ।।
सदा शीव औ मार्ग सिषा है, लहै संत मति धीरा।
कालातीत कला संपूरण, केवल कहैं कबीरा ।।५।।

संतो सुनो हंस तन ब्याना।
अबरन बरन रूप नहिं रेखा, ज्ञान रहित विज्ञाना ।।
नहिं उपजै नहिं बिनसै कबहूँ, नहिं आवे नहिं जाहीं।
इक्ष न इक्ष न दृष्टि अदृष्टी, नहिं बाहर नहिं माहीं ।।
मैं तें रहित न कर्ता भोक्ता, नहीं मान अपमाना।
नहीं ब्रह्म नहिं जीव न माया, ज्यों का त्यों वह जाना ।।
मन बुधि गुन इन्द्री नहिं जाना, अलख अकह निर्वाना।
अकल अनीह अनादि अभेदा, निगम नेति फिर जाना ।।
तत्व रहित रवि चन्द न तारा, नहिं देवी नहिं देवा।
सोयं मध्य प्रकाशिक सोई, नहिं स्वामी नहिं सेवा ।।
हंस देह विज्ञान भाव यह, सकल बासना त्यागै।
नहिं आगे नहिं पाछे कोई, निज प्रकाश में पागै ।।
निज प्रकाश में आप अपनपौ, भूलि गए विज्ञानी।
उन्मत, बाल, पिशाच, मूक, जड़, दशा पाँच पहलानी ।।
खोए आप अपनपो सरबस, निज स्वरूप नहिं जानी।
फिर केवल महाकारण कारण, सूक्ष्म स्थूल समानी ।।
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण, केवल मुनि विज्ञाना।
भए नष्ट यहि हेर फेर में, कतहुँ नाहिं कल्याना ।।

कहैं कबीर सुनो भई साधो, खोज करो गुरु ऐसा ।
जेहि ते आप अपनपौ जानो, मेटो खटका रैसा ।।
षट् शरीर में जगत भुलाना, ब्रह्म ज्ञान को माना ।
ब्रह्म सुकेवल भै विज्ञानी, सारशब्द नहिं जाना ।।

इस प्रकार से यह जीवात्मा इन छवों देहों में उलट-पलट कर रहता है, इनसे निकलने नहीं पाता । निरंजन व आद्या ने अपनी भक्ति में लगा कर इसको अपनी कला से अपना रूप दिखा दिया, और ऋद्धि-सिद्धि देकर सभी को भर्मा दिया कि सिवाय हमारे तेरा और कोई मालिक नहीं है; हमारी बन्दगी भजन किया कर, नहीं तो चौरासी में पड़ कर नरक भोगेगा । यही माहात्म्य सब वेदादि ग्रन्थों में है । इसी को जीव ने मान लिया और बहुत ख़ुशी से इसी देह में गगन महल तक जाकर ओहं, सोहं, ररंकार, ज्योति, अनहद वग़ैरह की साधना करके ज्योति-स्वरूप निरंजन का दर्शन पाकर आनन्द मानने लगा । यह न समझ सका कि यह तो काल का जाल है, इससे मेरा छुटकारा कभी न होगा। इसकी ख़बर बिना सत्यगुरु के कैसे पावे, और कौन है जो इसको काल से छुड़ावे ? अब इसी कारण सत्गुरु कबीर साहब हर एक युग में आये और जीवों को नजात की राह बताई । तिस पर भी यह ख़बरदार नहीं होता, ऐसा निरंजनी ज्ञान में मस्त हो रहा है । अपने सच्चे मालिक से वह नहीं मिलता । काल पुरुष की भक्ति हित चित से करके जप तप में मरता है । सत्यगुरु का ज्ञान-रत्न नहीं लेता, जिससे जन्म-मरण का दुःख छूट जाय । सद्गुरु ने हमेशा इस जीव को समझाया, और अब भी वे समझा रहे हैं । जिसने आपका उपदेश मान लिया वह सत्य पुरुष गुरु के दर्बार में पहुँच

कर मुक्त हो गया, और यमदंड से बच गया। देखिए सद्‌गुरु वचन—

युगन युगन हम आइ चेतावा, कोई कोई हंस हमारा।
कहैं कबीर ताहि पहुचावों, सत्यपुरुष दर्बारा।

फिर कहते हैं—

अब हम आदि संदेशी आए।
निर्गुन सर्गुन जीव भुलाने, तब हम यह जग आए।
यम का त्रास देख जीवन पर, समरथ हुकुम सिधाए॥

यहाँ आकर उन्होंने जीवों को सत्यपुरुष से मिलाने वाले सार शब्द का उपदेश किया, और सत्य भक्ति में लगाया, और काल का जाल दिखा कर सत्य मुक्ति-पद लखाया, व उसकी पहिचान करने का तरीक़ा बताया। आपका जगत में बिदेह रूप मुक्ति-स्थान से आना बख़ूबी साबित है। आपकी पाँच तत्व की देह न थी कि जिसमें यह जीव फँसा है और जिससे वह रिहाई नहीं पाता। देखिए साखी नाभा जी—

पानी से पैदा नहीं, श्वांसा नहीं शरीर।
कछु अहार करता नहीं, ताका नाम कबीर॥

शब्द सत्यगुरु

अब हम अविगत से चलि आए। मेरा मर्म विधिहुँ ना पाए॥
ना हम लीन्हा गर्भ बसेरा, बालक होइ दिखलाए।
काशी शहर सरोवर भीतर, तहाँ जुलाहा पाए॥
रहे विदेह देह धरि आए, काया कबीर कहाए।
युगन युगन के भूले हंसा, रामानन्द चेताए॥
लोहू हाड़ चाम ना मोरे, मैं तो अपरम्पारा।
शब्द स्वरूप नाम साहब का, सोइ निज नाम हमारा॥
धरणि अकाश शून्य नहिं मोरे, मैं तो अगम का बासी।
कहैं कबीर सुनो हो अवधू **लखो पुरुष अबिनासी॥१॥**

अवधू हम पाटन पुर वासी ।
तीर्थ न जाऊँ देवल न पूजों, नहिं मथुरा नहिं काशी ।।
अयना के द्वै दरिया कहिए, नीर निरंतर छाहीं ।
ताके माहीं रूप हमारा, हम अयना के माहीं ।।
रहनी रहै सो रोगी कहिए, करनी करै सो कामी ।
रहनी करनी दोऊ से न्यारे, ना सेवक ना स्वामी ।।
ठाकुर को हम ठोंक बहावा, हरि की हाट उजारा ।
राम रहीम ते करैं मजूरी, सतगुरु के दरबारा ।।
शिव महेश गनेशा कहिए, पूजा पाती लावें ।
एक राम दशरथ के बेटा, तेहिं कर्ता ठहरावें ।।
एक न करता दो न करता, नौ करता ठहरावें ।
दशएँ कर्ता भ्रम मिलत हैं, सत्य कबीर गोहरावें ।।२।।

अवधू हम उहई के बासी ।
त्रिकुटी शून्य वहाँ कछु नाहीं, दंड मेरु नहिं गिरवर ।
अजपा सुखमनि एको नाहीं, बंक नाल नहिं सरवर ।।
ब्रह्मा बिष्णु नहीं गमि शिव की, नहीं वहाँ अविनाशी ।
आदि ज्योति जहाँ अलल न पावै, हम ही भोग विलासी ।।
जहवाँ योगी युक्ति न पावै, शब्द सुरति नहिं होई ।
जहाँ कर्तार करै ना पावै, हमहीं करैं सो होई ।।
पाँच तत्व स्वाँसा वह नाहीं, जगमग झिलमिल नाहीं ।
साहब कबीर की औघट घाटी, बिरला गुरु मुख पाहीं ।।

इसी तरह से सत्यगुरु साहेब ने कई जगह फ़रमाया है कि मैं ही सबका कर्त्ता-धर्त्ता मालिक हूँ, सब मुझसे हुआ और मुझमें सब कुछ था—

साखी : जब हम रहे रहा नहिं कोई । हमरे माँह रहा सब गोई ।।

सत्यगुरु का गैब स्थान से आना

जीवों के हेतु और भी लोगों ने तहक़ीकात करके लिखा है। उन लोगों ने सबसे अधिक बड़ाई आप ही को दी है। आपके समान जगत में और कोई नहीं हुआ। सत्यगुरु होकर जीवों को मुक्ताने के हेतु आपका सत्यलोक से आना उन्होंने भी लिखा है, जिसे मैं आगे दिखाऊँगा। अब मैं जीव के मुक्त होने का यत्न बताऊँगा। पहले समझना चाहिए कि ईश्वर और जीव में फ़र्क क्या है।

जीव व ईश्वर का बयान

पहले हम सबको देखना चाहिए कि ईश्वर व जीव में संबंध क्या है,तथा दोनों एक जिन्स हैं कि नहीं। देखिए वह मालिक, जिसको सत्यगुरु साहब ने सारशब्द बताया है, महा चैतन्य सबका जानन-हार, सबमें और सबसे न्यारा और अगम, अगोचर विदेह स्वरूप, सवशक्तिमान, अविनाशी, अखंड रूप है; यह सिफत सब जीवों में भी थोड़ी-थोड़ी इसके मुताबिक़ पाई जाती है। जैसे देखिए, यह भी चैतन्य और अविनाशी वो सबका साक्षी और जानने वाला है जिस पर सब लोग गवाही देते और मानते आये हैं कि जीव क़ा नाश नहीं होता। यह बात इससे साबित होती है कि इसको आवागमन भोगना पड़ रहा है। जो नाशवान होता तो आवागमन के फेर में न पड़ता और जरामरण के दुःख न सहता और काहे को अदला-बदली का अधिकारी अपने कर्मानुसार होता। दूसरे बिदेह होना भी इससे साबित होता है कि जब यह देह को छोड़ता

है तब आते-जाते मालूम नहीं होता कि किधर से निकल कर कहाँ गया। जब तक देह में रहता है तब तक सब कुछ करता-धरता रहा इससे यह कर्त्ता पुरुष भी ठहरता है और विदेही भी साबित होता है।

साखी : तत्व के भीतर ईश्वर, तत्व कही फिरि देह।
विदेही देही बसै, सुरति निरति करुनेह॥

यह सब बातों को जानने वाला, बिचारने वाला, और सब बातों का समझदार व साक्षी भी है। इस तरह से ग़ौर करने पर पाया जाता है कि यह और वह दोनों एक रूप और एक जिंस हैं, किसी तरह का कुछ फ़र्क नहीं हैं। फ़र्क सिर्फ़ यह है कि यह देह में आने से जुज़ यानी अल्पज्ञ हुआ; वह विदेह रहने से कुल, सर्वज्ञ और भरपूर रहा। वह समुद्र रूपी है तो यह उसका क़तरा (बूँद) रूपी है; वह जल रूपी है तो यह लहर है। यह देह धारण करने से अल्पज्ञ हुआ और एक जगह पर बँध गया। वह विदेह होने से सब जगह भरपूर रहा। यह देह में आने से क़ैद व बरबाद हुआ, वह विदेह होने से आज़ाद रहा। यह देह में आने से अशक्त हुआ; वह विदेह होने से सर्वशक्तिमान रहा। इसी से यह जीवात्मा और वह परमात्मा कहा गया। इसके सिवा कुछ फ़र्क नहीं है। वस्तु एक ही ठहरती है। इसी सबब से सतगुरु साहब को जगत में अपनी जिंस के लेने को आना पड़ा, नहीं तो जीव के उपदेश करने का क्या प्रयोजन था ?

सत्यगुरु का उपदेश

सतगुरु कबीर साहब ने जगत में जीवों को अपने सत्य पुरुष

सारशब्द परमात्मा से मिलने का उपदेश किया, जिससे जीव मुक्ति गति को प्राप्त हो। उसके यत्न और तरीके तथा असूल समझाये और कहा कि ऐ जीव; तुझमें सब औसाफ़ हैं और थे, मगर तेरे कुरंग में पड़ने से यानी देह धारण करने से तेरा उसूल रंग मिट गया और तू निरंजन काल के नकली रंग में रंग रहा। जहाँ से बिछुड़ा था उसको भूल गया। तू काल के फंदे में पड़ कर राजा से प्रजा हो गया और सब शक्तियों का तूने खून कर डाला; अब तेरा कुछ वश निरंजन काल से नहीं चलता है कि तू अपने को इस देही बंधन से छुड़ाकर इस क़ैद हस्ती से निकल सके। अब जो तू मेरे कहने से चलेगा और मेरे उपदेश के मुताबिक़ करेगा यानी सारशब्द को ग्रहण करेगा तो फिर तुझको कोई नहीं पकड़ सकता। "तेरा रोकनहारा कौन मौज से आव चला", नहीं तो निरंजन काल के जाल से न छूटेगा।

साखी : हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंग रहा, तैं किया और लगवार ।।

जब तू सारशब्द पावेगा, तब जरा-मरण चौरासी के फंद से छूट जावेगा। नहीं तो फिर पछतावेगा। संसार में निरंजन काल ने तेरे फँसाने के वास्ते बहुत प्रकार के शब्द रच रक्खे हैं। तू सारशब्द की डोरी ढूँढ़ कर पकड़ ले और चला जा।

साखी : शब्द शब्द बहु अंतरे, सार शब्द मथ लीजे।
कहैं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं, धृग जीवन सो जीजै ।।

विदून सारशब्द के तेरा जीवन धिक्कार है, और वह सार-शब्द बिदेह स्वरूप, अक्षर से रहित निःअक्षर तथा निःतत्व है, वह जिह्वा पर नहीं आता। देखिए सद्गुरु वचन—

चौपाई

निरखि परखि के अक्षर बूझै। बिनु अक्षर वह पंथ न सूझै।।
जैसे बसत फूल पर बासा। आदि अक्षर संग शब्द निवासा।।

साखी : शब्द शब्द सब कोइ कहै, वह तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरखि परखि कर लेह।।

उसी सारशब्द की तारीफ़ गुरु नानक साहब भी करते हैं। देखिए सिद्धि गुष्टि–

क्या भर्मे सच सोचा होय। साँच शब्द बिन मुक्ति न कोय।।
रहे इकान्त एको मन बसिया, आशा माहिं निरासू।
अगम अगोचर देखि दिखावे, नानक ताकर दासू।।

फिर सतगुरु ने फ़रमाया है कि अगर तू सारशब्द के सिवाय अन्य की खोज करेगा तो हमेशा यमपुरी में रहेगा और जन्ममरण का दुःख कभी नहीं छूटेगा—

साखी : आगे खोजै गिर पड़ै, पाछे खोज भुलाय।
सारशब्द के आगे खोजै, बाँधा यमपुर जाय।।

कहैं कबीर सुनो टकसारा। सारशब्द हम प्रकट पुकारा।।
जो नहिं मानैं कहा हमारा। राम रहे उनहूँ ते न्यारा।।

सतगुरु कहते हैं कि हे जीव, सारशब्द के बिना तेरी सुरति अंधकार में ही रहेगी, तू अपनी असली रोशनी में नहीं जा सकता–

साखी : सुरति फँसी संसार में, तासे परिगो दूर।
सुरति बाँधि स्थिर करो, आठो पहर हजूर।।
शब्द बिन सुरति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय।।

इसलिए शब्द कहा—

जो कहा मान मन मेरो, तौ गुरु शब्द विवेकी हेरो ॥

इस तरह, इस पर सतगुरु साहब बार-बार सारशब्द का उपदेश करते हैं कि जिससे यह बिछुड़ा है, अपने उस स्वरूप में मिल जावे, चौरासी से छुट्टी पा जाय, निरंजन के जाल से निकल जाय, और अपने अमर लोक में पहुँच कर ब्रह्मानंद का सुख भोगे।

ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादि होने का वर्णन

जगत में जीव का ईश्वर-अंश होना वेद और महात्मा लोगों ने कहा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी ॥

मगर अब कुछ लोगों ने यह सिद्धांत खड़ा कर लिया है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं। यह ऐसे सिद्ध करते हैं कि जीव व प्रकृति नहीं होती तो ईश्वर जगत कैसे रचता, इसलिए यह तीनों अनादि हैं। अनादि का अर्थ है कि जिसका आदि न हो, और सर्वशक्तिमान हो, वह सब जगह भरपूर हो, अगम-अगोचर हो, और अविचल, अखंड हो—यह तारीफ़ अनादि की है। वे लोग ईश्वर का सर्वशक्तिमान होना मानते हैं, सिर्फ़ इस वजह से कि उसने जीव और प्रकृति को पकड़ कर जगत को रचा। इस वजह से वह जबरदस्त सर्वशक्तिमान है। अब यह देखना चाहिए कि ईश्वर तो सर्वशक्तिमान ठहरा और जीव व प्रकृति उसके मुकाबिले में अशक्त व कमजोर ठहरे, तब ये अनादि कैसे कहे जावें? अनादि की तारीफ़ से तो ये गिर गये। फिर इसके अलावा जो अनादि की तारीफ़ ऊपर कही गई है वह जीव

और प्रकृति में कोई नहीं पाई जाती। अनादि में पहला गुण सर्व-शक्तिमान होने का है। जीव व प्रकृति में यह गुण नहीं है। क्योंकि अगर इनमें यह गुण होता तो ईश्वर के अधीन हो कर ये उसके कब्ज़े में न आते। जीव को कौन ऐसी ख़ुशी थी कि अपनी आज़ादी और शक्ति को छोड़ कर जरामरण का दुःख सहता, और आवा-गमन के फेर में पड़ कर अपना हमेशा का आनन्द खोता। दूसरी बात यह है कि जब ईश्वर बिना जीव व प्रकृति के जगत की रचना नहीं कर सकता था, इस काम में लाचार, मजबूर और इनके अधीन था, तब वह सर्वशक्तिमान नहीं ठहरा। फिर तो ये तीनों अनादि नहीं ठहरे। परमात्मा के विषय में यह कहना कि प्रकृति और जीव की मदद के बिना वह जगत नहीं रच सकता था, मेरी समझ में, बड़ा अधर्म और अनुचित है कि यह जीवात्मा परमात्मा की बराबरी करे। जो सब तरह लाचार व मजबूर है वह उसको क्या मदद दे सकता है? जगत के रचने वाले ने अपनी अनंत सामर्थ्य से जगत को रचा है, इसी से जगत का कर्त्ता है। जब ईश्वर ने अपनी अनन्त सामर्थ्य से जगत को रचा—तो वही अनादि है, और यह उसका बन्दा है; जैसा कि इस साखी से मालूम होगा—

प्रेम जगावे बिरह को, बिरह जगावै जीव।
जीव जगावे पीव को, वही जीव वही पीव ॥

देखिए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महराज ने, जो हाल में बहुत बड़े विद्वान याने आलिम वेद के गुज़रे हैं, अपनी किताब 'आर्य्य विनय' के २८३ सफ़ा पर दूसरे प्रकाश यजुर्वेद के ३२ वें मंत्र की यह टीका की है—

अथ मंत्र : किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भण कतमात्स्वित्कथासीत

यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्या मौर्णोन्महिम्ना विश्वचक्षाः ॥

व्याख्या (प्रश्नोत्तर विद्या से)–इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करने वाले ईश्वर का अधिष्ठान क्या हैं ? तथा निमित्त कारण और साधन जगत व ईश्वर के क्या हैं ? उत्तर–अतः जिसका विश्व (जगत कर्म) किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत को रचा है, वही इस सब जगत का अधिष्ठान, उपादान, निमित्त व साधनादि है। उसने अपनी अनन्त सामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत को यथायोग्य रचा और भूमि से लेकर स्वर्ग पर्यंत रच कर अपनी महिमा से औौर्णोति आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है, तथा आनन्दमय है, और वह ईश्वर विश्वचक्षा, सब संसार का द्रष्टा है, उसको छोड़ कर अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःख-सागर में क्यों न डूबेगा ? और पुनः २६८ सफ़ा में यह भी मंत्र है—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरतः। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

व्याख्या—वह ब्रह्म चक्षुः, सर्वदिक् चेतन है, तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिए व मन आदि इन्द्रियों के लिए हितकारक, मोक्षादि सुख का दाता है; पुरस्तात, सबका आदि प्रथम कारण वही है। शुक्रम्, सबका करने वाला किंवा शुद्ध स्वरूप है। उच्चरत, प्रलय के ऊर्ध वही रहता है, उसी की कृपा से हम लोग शत वर्ष देखें, सुनें कहें, कभी पराधीन न हों अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान, वृद्धि व पराक्रम

सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें, ऐसी कृपा आप करें कि कोई अंग मेरा निर्बल, क्षीण और रोगयुक्त न हो तथा शत वर्षोपरान्त भी देखें, सुनें, कहें। ये लोग बहुधा जीव के अंश होने में विवाद करते हैं कि क्या परमात्मा कट-कट कर अंश हो गया। उनसे पूछना चाहिए कि वह परमात्मा निमित्त कारण है, कुंभकार से चक्रादि साधन क्या कट-कट कर बन गये ? फिर कहते हैं कि परमात्मा चेतन, और जगत जड़ है, तो कैसे माना जाय कि वह ही परमात्मा कुंभकार रूपी चैतन्य और चक्रादि रूपी जड़ हो गया ? फिर जो कहते हैं कि प्रलय के ऊर्ध वही रहता है, तो तीनों अनादि कैसे हो सकते हैं ? अनादि का नाश नहीं होता। जो यह अनादि होते तो प्रलय के ऊर्ध वह भी बने रहते। इससे एक ही अनादि साबित होता है।

चौ० एक अनंत आप होय आया। एक भेद कोई बिरलै पाया ॥

इसी कारण वह परमात्मा सतगुरु संत स्वरूप जगत में आये और जीवात्मा को अपने सत्य स्वरूप में मिलने का उपदेश उन्होंने किया। जब से इस जीवात्मा ने अपने सारशब्द विदेह रूप परमात्मा से बिछुड़ कर देह धारण किया तब से इसी को आनन्द समझने लगा। अब देह छोड़ते इसे बहुत दुःख होता है—

उलटा छूरा थाम के मूड़ेसि, तनिक नहीं चर्राई।
दुइ दुख देख सबै सुख माने, देखो हाथ की सफाई ॥

इसी से देह छोड़ना नागवार याने बुरा लगता है। निरंजन के बहकाने से उसी के ज्ञान में रहता है, और उसी की आँख से देखता है। अपनी आँख नहीं खोलता, अंधा हो रहा है। सत्यगुरु के उपदेश को नहीं मानता, न सुनता है। अनेक मत आनुमानिक

खड़े हो गए, काल की कला को किसी ने नहीं पहिचाना।

साखी : जेते गए पंडिता, तेती गई बहीर।
ऊँची घाटी नाम की, तहँ चढ़ गए कबीर।।

सब भेड़ियाधसान हो गया, सत्य वस्तु को देखने वाला न ठहरा, अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग हो गया।

शब्द

आदि गुरु जिन युगन पुकारा, कोटिन में कियो कान।
अन्तर पट हिय खुली समाधी, दर्शंत पुरुष पुरान।।

कोई कोई सत्यगुरु का प्यारा उसके हुक्म पर खड़ा हो गया, उसकी आखें खुल गईं, वह सत्यगुरु के उपदेश से अपने सत्य लोक को चलता हुआ। देखिए सत्यगुरु वचन—

युगन-युगन हम आय चेतावा, कोई-कोई हंस हमारा हो।
कहैं कबीर ताहि पहुँचावों, सत्यपुरुष दर्बारा हो।।
चौ०कहते मोहि भया युग चारी। समुझत नाहिं मोर सुत नारी।।

जो लोग निरंजन के ज्ञान में पड़ कर अंधे हो रहे हैं वे सत्य-गुरु के वचन को क्या समझेंगे? उनकी समझ पर आरी चल गई है। काल पुरुष ने बल-बुद्धि छीन ली, जिससे जीव अपने को आनन्द समझने लगा। अपनी आदि बुनियाद यानी जड़ को भूल गया। जब तक भूल न मिटेगी यानी स्वरूप में न मिलेगा तब तक चौरासी में ही रहेगा।

आदि अक्षर को मर्म न पावे। भटकि-भटकि फिर योनिहिं आवे।।

भूल इसकी कैसे मिटे? भूल इसकी यों मिटेगी कि सतगुरु के अमृत रूपी वचन को ख़ूब समझे और बूझे और महात्माओं से, जो इसके जानने वाले हों, सतसंग कर विचार करे; अपनी चतुराई और छल-कपट को त्याग कर सतगुरु की शरण पकड़े और सच्चे

दिल से सारशब्द सत्यपुरुष परमात्मा से मिले और चारों भेदों को बख़ूबी समझे और परिचय करे, तब इसकी भूल मिटेगी, फिर यह चौरासी में न आवेगा।

साखी : कहैं कबीर भूल की औषधि, पारख सबकी भाई।
भूल मिटैं गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई ।।

सतगुरु मदन साहब कहते हैं—

आदि ब्रह्म ज्यों जल है भाई, जीव तरंग समान।
मदन बयारि विषय जब मिटिगै, थोरे माहिं थिरान ।।

फिर जीते जी सतगुरु की दया से सारशब्द में मिल कर मुक्त हो जावेगा, फिर लौट कर जगत में न आवेगा। सतगुरु के चारों भेद बूझे बिना न वह सतगुरु का भेदी होगा और न निरंजन के जाल से छूटेगा।

चौ० : चार भेद को बूझै पदै समाय। बिन बूझे चौरासी जाय ।।
सारशब्द पावेगा सोई। जाको सतगुरु पूरा होई ।।

सतगुरु ने उन सतगुरुओं की तारीफ़, जिन्हें उसने अपने भेदी जीवों के हेतु बनाया है, इस तरह उन पर की है—

चौ० : चार भेद भेदी जो होई। कहैं कबीर गुरू है सोई ।।
चार भेद का मर्म न जाना। सो गुरु यम के हाथ बिकाना ।।
गुरु रोगी, रोगी भै चेला। पौ का रोग दोऊ घट मेला ।।
अंध-अंध को राह बतावे। कहु केहि भाँति मंजिल पहुँचावे ।।
जग गुरुआ गति कही न जावे। जो कछु कहूँ तो मारन धावे ।।

जगत के गुरुआ लोग, जो काल पुरुष के उपदेशक हैं, उनकी सिफ़त यह है कि वे लोग ठगोरी डाल कर जीवों को काल के फंदे में बाँध कर चौरासी में फँसाते हैं।

सतगुरु की परिभाषा

सतगुरु जगत में उसको कहते हैं जो देह से रहित विदेह रूप हो, सत्य का वक्ता हो, तत्वरहित निःतत्व हो, और गर्भयोनि से अजन्मा हो, सर्वशक्तिमान सब जगह भरपूर हो हाजिर नाज़िर यानी सर्वव्यापक, ज्ञान रूप विज्ञानी हो। यह सब सिफ़त कबीर साहब में है और किसी में नहीं, जैसा कि सद्‌गुरु के वचन से जाहिर है, और जैसा कि उनके जानने वालों ने कहा है।

नाभा जी का बचन

पानी से पैदा नहीं, स्वाँसा नहीं शरीर।
कछु अहार करता नहीं, ताका नाम कबीर॥

सत्यगुरु बचन

लोहू हाड़ चाम नहिं मोरे, मैं तो अपरंपारा।
शब्द स्वरूपी रूप साहब को, सो निज नाम हमारा॥
धर्ती अकाश शून्य नहिं मोरे, मैं तो आगम बासी।
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, हमहिं पुरुष अविनासी॥

संसार में सच्चे सद्‌गुरु कबीर साहब हैं, जो विदेही, सत्य-पुरुष शब्द रूप हैं और जो जीवों को मुक्ताने के लिए आये और उन्हें अमरलोक जाने की राह बताई। दूसरे सतगुरु जगत में वे हैं जिनको सतगुरु कबीर साहब ने अपनी जगह जीवों को मुक्ताने के लिए मुक़र्रर किया, और वे पूरे-पूरे उनके हुक्म के पाबन्द और आमिल और राज़दार यानी भेदी हैं, जो चार भेद जानने वाले हैं, और सारशब्द सतपुरुष का लखाव कराके जीवों को अमरलोक को जीते जी पहुँचाते हैं। वे शब्द रूप सत्यगुरु के

उपदेशक हैं, इसलिए उनको भी सत्यगुरु कहते हैं। देखिए सत-गुरु वचन—

हरिजन हंस दशा लिए डोलें। चुनि चुनि अमृत बाणी बोलैं॥
सार शब्द पावैगा सोई। जाको सतगुरु पूरा होई॥
गुरु पूरा होय सोइ लखावे। बाँह पकरि लोक पहुँचावे॥

किसके भाग्य हैं जो ऐसे संत महात्मा सद्गुरु से मिलें जिनके मिलने से सच्ची रोशनी दिल में पैदा होती है, अंधकार दूर भागता है, जीव मुक्ति-पद को पहुँचता हैं। उनके दर्शनों से पाप का नाश होता है, जन्म-मरण का दुःख छूटता है, चौरासी के फंद से नजात मिलती है।

सतगुरु कबीर साहब के जगत में आने का कारण

जब यह जीवात्मा निरंजन और आद्या के बहकाने से छठी देह में आकर फँस गया, फिर उधर लौट कर अपने अमरलोक को न जा सका, अपने सारशब्द सत्यपुरुष से न मिल सका, तब अपने अमरलोक से मृत्युलोक में आकर सतगुरु कबीर साहब ने निरंजन काल की दग़ाबाजी जीवों को दिखा-समझा कर सारशब्द सतपुरुष के मिलने का उपदेश किया और फ़र्माया—

कहैं कबीर हम आदि के अहदी लाये हुक्म हजूर।
यम की त्रास देखि रूहों को, समरथ बचन कबूल॥

चौ० : काहे डरो डर देव छुड़ाई। काल डरै सुनि नाम दोहाई॥
हौं गुरु देव शब्द मोरे हाथा। सब घटवार नवावैं माथा॥

अब जब तक यह जीवात्मा सतगुरु की ओट नहीं गहता, तब तक जरा-मरण के दुःख से नहीं छूटता। जब सतगुरु की

पनाह लेगा तभी वह इस दुःख से छूट कर हमेशा के लिए परमानन्द प्राप्त करेगा।

शब्द : सारशब्द को झीना मारग, तामें सहज समावे।
जहाँ से बिछुड़्यो मिल्यो ताहिमें, मदन महा सुख पावे॥

सतगुरु बचन : शब्द

सतगुरु पीव जीव के रक्षक, तासे करो मिलाना।
जिनके मिले परम सुख उपजे, पाओ पद निर्वाना॥
साहब भजि साहब भये, कछु रही न तबाही।
कहैं कबीर वह घर गये, जहँ काल न जाई॥

सत्यगुरु कबीर साहब किस तरह सब जगह भरपूर हैं—

पूरो पूरण प्राण, प्राण ते और न कोई।
काया बीर कबीर, परम गुरु निश्चय सोई॥
सब वजूद के अंदरे, हैं मौजूद कबीर।
मोहिं सुलभ करि देखिये, सबही में हौं पीर॥
हमी दास दासन के दासा, अगम अगोचर हमरे पासा॥

सतगुरु की बानी को विचारो, ग़ौर करो और उसके बाद देखो कि निरंजन काल के उपदेश से जो वेद-वेदांत के वसीले से गुरुआं लोग मुक्त होना बताते हैं, उससे कोई जीव अमर लोक को नहीं गया। सब आवागवन के फेर में पड़ कर चौरासी भोग रहे हैं, कोई उबरा नहीं। तब सतगुरु कबीर साहब जगत में आये और जीवों को काल से छूटने का यत्न बताया। अपना अंश समझ कर हरदम गुप्त होकर वे जीवों के साथ रहते हैं, और हर आफ़त से बचा कर नेक बद की ख़बर देते रहते हैं। मगर इसको कोई नहीं समझता, सब बेख़बर हैं। सतगुरु ने कहा है—

जहाँ संत तहँ प्रकट भयऊ। जहाँ असंत गुप्त तहाँ रहेऊ।
मुझको कहाँ तुम खोजो बन्दे, मैं तो तेरे पास में॥
रहे बिदेह देह धरि आए, काया कबीर कहाये।
संम्रथ का परवाना लाए, हंस उबारन आये॥

इस तरह वह सतगुरु गुप्त या प्रकट हो अपनी आत्मा के साथ रहता है। जीव खुद अपने दयाल रक्षक से नहीं मिलता, यह आप ही काल के वश होकर मारा-मारा फिरता है। न सतगुरु के बचन को सुनता है, और न अपनी सच्ची मुक्ति को चाहता है। इसी पर सतगुरु ने कहा—

मैं तो देखूँ तोंहि को, तूं देखै काँहि और।
लानत ऐसे चित्त को, एक चित्त दुइ ठौर॥
जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाँहि।
बिन विवेक भटकत फिरैं, पकरि शब्द की छाँह॥

देह धरने से जीव, निरंजन और आद्या के अधीन हो गया, और उसके हुक्म पर चलने लगा। यह दोनों स्त्री-पुरुष धोका देने को जीव के साथ ही रहते हैं। इसकी खबर जीव को नहीं होती, और वह 'साहब साहब' चारों तरफ़ पुकारता फिरता है, लेकिन वे इसकी कुछ मदद नहीं करते। बिना सतगुरु के काल का दंड जीव सहता है—

साखी : साहब साहब सब कोइ कहै, मोंहि अँदेशा और।
साहब से परिचय नहीं, बैठेगा केंहि ठौर॥

जब यह दिल से अपने सतगुरु की तलाश करेगा, तब वह मिलेगा। जहाँ ढूँढेगा वहाँ पावेगा। उसकी महिमा कहने सुनने से बाहर है, कोई विरले जन उसे समझेंगे।

शब्द मदन साहब

महिमा सतगुरु अपार, बिरले जन जाना ॥ टेक ॥
जाना जिन गुरु प्रताप, मेटि गयो त्रिबिध ताप ।
सत मत सत गत की बात, हिय बिच पहिचाना ॥१॥
अभय रूप सत स्वरूप, निर्मल बानी अनूप ।
देखत छवि दयावन्त, तन मन सुख माना ॥२॥
सारशब्द को प्रकाश, घट घट में गुरु विलास ।
आपन जन लियो पास, परे तत्व छाना ॥३॥
चार भेद जाको बिम्ब, भेद नहिं पायो शम्भु ।
अक्षर बिबि जुक्ति साधि, युग युग अरुझाना ॥४॥
लखि न परेव आदि अंत, जहाँ अचल राज कंत ।
मानो सरिता समुद्र, बुंद में छिपाना ॥५॥
काल खड़ा कालि आज, जरामरण लिए समाज ।
त्रिभुवन में पड़ी गाज, कोई ना बचाना ॥६॥
जैसे चक्की दरेर, कोई न बचत हेर फेर ।
बचैगा सोई जो, सत्य कील में लपटाना ॥७॥
धनि धनि सद्गुरु की शरण, परत बरत जरा मरण ।
तारन तरन शोक हरन, दुःख टरत नाना ॥८॥
दया रूप मिल्यो राम, सब बिधि भये सुफल काम ।
पाय अमर धाम, मदन नाम में समाना ॥९॥

उन सतगुरु कबीर साहब की वन्दना गुरु नानक, दादू साहब और गरीबदास साहब सब महात्मा करते हैं ।

गुरु नानक वचन

वाह वाह कबीर गुरु पूरा है ॥ टेक ॥
साँचे गुरुन की मैं बलि जैहों, जाको सकल जहूरा है ॥

अधर दुलंचा परे गुरुन के, शिव ब्रह्मा जहाँ झूला है।
श्वेत ध्वजा फहरात गगन में, बाजत अनहद तूरा है॥
पूर्ण कबीर सकल घट दरशै, हरदम हाल हजूरा है।
नाम कबीर जपै बड़भागी, नानक चरण की धूरा है॥

मुरशिद मेरा महरमी, जिन मरम लखाया॥
परम पुरुष की बाग़ में, मसजिद यह काया।
झाड़ू दे निज नाम का, कूड़ा दूर बहाया॥
जस छेड़ी तस गाय हैं, वैसेहि आपन काया।
रक्त माँस सब एक हैं, दूजा को फ़रमाया॥
दरदवंत दरवेश हैं, बिन दरद कसाई।
गले बिच छूरी चलाय के, तोहिं दरद न आई॥
तसबीह एक अजूब है, तामें हर दम दाना।
कुंज किनारे बैठ के, फेरा तिन जाना॥
नानक घट परिचय भया, सबही घट पीरा।
सकल मंदिर में रमि रहे, महबूब कबीरा॥

साखी दादू दयाल जी

साँभर में सतगुरु मिले, दियो पान की पीक।
बूढ़ा बाबा जस कही, यह दादू की सीख॥
मेरे कंत कबीर हैं, वर और न बरिहौं।
दादू तीन तिलाक हैं, चित और न धरिहौं॥

साखी गरीबदास जी

गरीब नानक निर्भय किया, वाह गुरू सत ज्ञान।
अदली पुरुष पहचानिए, निर्गुन पद निर्वान॥
गरीब दादू के सिर पर सदा, अदली अदल कबीर।

टकमारे में पद मिले, फिर साँभर के तीर ।।
गरीब नौलख नाथ नाव में, दश लख गोरख तीर ।
लाख दत्त संगत सदा, पड़े सब चरण कबीर ।।
गरीब मुहम्मद के मुरशिद सही, कलमा रोज़ा दीन ।
मुसलमान माने नहीं, मुहम्मद केर यकीन ।।
गरीब सुलतान को तीर लगा, बलख बुख़ारा त्याग ।
जिन्दा का चोला दिया, सतगुरु सत्य वैराग ।।
गरीब वहुरंगी विरियाम है, मिला नीर में नीर ।
गोरख के मस्तक गहे, अदली अदल कबीर ।।
नौ योगेश्वर यदर में, जनक विदेह उद्धार ।
गरीब रिखब देव के आये, करुणामय करतार ।।
रिखि नारद सनकादिक सही, वज्र दंड बैराग ।
योगजीत सतगुरु मिले, उपजा अति अनुराग ।।
गरीब दुर्वासा औ गरुल को, दीन्हा ज्ञान अपार ।
दृष्टि खुली निज ध्यान से, फिर नहिं लगे लगार ।।
मुहम्मद की जो चली है रूह़ दरगाह देखे दूह वदूर ।
पीर कबीर ज़िन्दा ख्याल, मारग मंतर तारन वाल ।।

जब तुम अपने दिल में ग़ौर करके देखोगे तो दिल दरगहि में पहुँच कर सत्य सतगुरु से मिलोगे। वह तुम्हारे दिल में बैठा हुआ नेकी-वदी की खबर दे रहा है, उसकी पहचान नहीं करते। इससे वह भी तुमसे दूर हो गया—

साखी : सुरति फँसी संसार में, तासे परि गयो दूर ।
सुरति बाँधि स्थिर करो, आठो पहर हज़ूर ।।

शरः यानै बुराई की हिदायत देकर काल तुम्हें फँसाता है और

सतगुरु ख़ैर याने भलाई की हिदायत करके बचाता है। मगर तुम बुराई की तरफ़ ले जाने वाले की सुनते हो और जो भलाई की तरफ़ खींचता है, उससे भागते हो। इस वजह से वह तुमको नहीं मिलता—

सांचे से भागा फिरै, झूंठे से बंधा।
कहैं कबीर कासे कहूं, सकलो जग अंधा॥

जो कोई सच्चाई से उसकी चाह करेगा और अपने को निव-छावर समझेगा, उसको परिचय होगा और वह उससे मिलेगा।

साखी : आदि कही अब कहत हौं, अंत कहेगा सोय।
सो वकता जेहि लखि परे, तेहि गुरु परचे होय॥

सोरठा : कोइ एक शूरा जीव, जो अैसी करनी करै।
ताहि मिलेंगे पीव, कहैं कबीर पुकारि के॥
सतगुरु के दरबार, शीश दे खेल लो।
कहैं कबीर पुकारि, परम पद मेल लो॥
जो अैसी रहनि ग्रहन करै,तो उसको वह मिलै।
कहैं कबीर पुकारि, समझि हृदया धरो॥
जुगन जुगन करो राज, जो दुर्मति परिहरो॥

जब यह सतगुरु की भक्ति और सेवा में आवेगा तब सतगुरु कहते हैं कि—

शब्द : अजहूँ लेहु छुड़ाई काल सो, जो निज होय हमारा।
कहै कबीर ताहि पहुँचावों, सत्य पुरुष दर्बारा॥

देखो भाइयों, यह अपनी खता है कि ऐसे सतगुरु दयाल से मेल मुहब्बत नहीं करते, न उसके हुक्म के पाबंद होते, न उसके उपदेश को सुनते न मानते। जीव अपनी कमनसीबी से भूला है—

हम कह दिया संदेश, तुम्हारे पीव का।
बिन समुझे नहिं चैन, आपने जीव का ॥

अब सतगुरु का गैब स्थान से आना तो अच्छी तरह साबित है। पहिले तो सतगुरु के वचन को देखो फिर जिन लोगों ने इस बात की जाँच की है उनके वचनों को देखो और विचारो। नाभा जी ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' में सतगुरु साहब का हाल लिखा है कि कबीर साहब जगत में गर्भवास से होकर नहीं आये। एक कुवाँरी कन्या के हाथ से फफोला पड़ कर पैदा हुए। पाँच तत्वों की देह नहीं धारण की। करबीर शब्द का अर्थ करके इन्होंने अपने अनुमान से लिखा है, यह बात ठीक नहीं है। जब उनके माता-पिता का पता न चला तब कबीर शब्द को करबीर का अर्थ करके, हाथ से पैदा होना लिख दिया। यह नासमझी है कि कहाँ कबीर नाम परमात्मा का है उन्होंने जीवों के हेतु अविगत रूप, इच्छाचारी देह धरके उपदेश किया और जीवों को काल से छुड़ाया और इसको मुक्ति का यत्न बताया। खैर यह उनकी समझ का क़सूर है। गर्भ योनि से न्यारा होने को साबित किया है और सब भक्तों पर आपको शिरमौर साबित किया है—

माता नहीं पिता नहिं उनके, गर्भवास नहिं आए।
शब्द स्वरूप देह धरि प्रकटे, बंदी छोर कहाए ॥
देह नहीं अरु दर्श देही। रहूँ सदा जहँ पुरुष विदेही ॥

बचन : नाभा जी

अनन्त कोटि निज भक्त हैं, तामे एक करोर।
लाख लख नेजाधारी। समरथ सहस्र सौ तामे अधिकारी ॥
पचास भक्त प्रसिद्ध, पचीसो परम उजागर।
द्वादश भक्त प्रमान, षटो रस गुन के आगर ॥

चतुर भक्त गोविंद दरश, उभै भक्त तारण तरण।
तामें मुख्य कबीर हैं, ता पद के नाभा शरण॥
बानी अरबो खरब है, ग्रंथन कोटि हज़ार।
कर्त्ता पुरुष कबीर हैं, नाभा कियो बिचार॥

नाभा जी ने आपको कर्त्ता पुरुष माना है, अनन्त बानी और वचन वो ग्रन्थों का कहनेहारा सतगुरु को माना है, जैसा कि सत-गुरु ने खुद फ़र्माया है—

साखी : बीजक

जितने पत्र बनस्पति, अरु गंगा की रेनु।
पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैनु॥

'भेदसार' में कहा है—

बानी अर्बों खर्ब मैं भाषी। सार वस्तु निज न्यारे राखी॥

अब इस अँग्रेज़ी ज़माने में मिस्टर विलसन साहब, जो लाट पादरी ईसाई मत में हुए हैं, उन्होंने अपनी तवारीख़ में हर एक मतान्तर की जाँच करके लिखा है। उसमें सतगुरु कबीर साहब का भी हाल लिखा है कि ग़ैब से आना जीवों को महज़ बिहिश्त ले जाने के लिए मेरी तहक़ीकात से पाया जाता है, और कहीं से उनके माता-पिता का पता नहीं चलता, और आप का कलाम ऐसा मुबहम है कि समझ में नहीं आता और आप के मत वालों में आज वही सत्यता चली आ रही है। जिसका जी चाहे इन दोनों किताबों को देख कर शंका दूर कर लेवे। इनके सिवाय तीसरे महाराज रघु-राज सिंह साहब, रियासत रीवाँ के थे, जो वैष्णव थे। आपने भक्त-माल में तहकीक़ात के बाद सत्यगुरु साहब कबीर के निसबत यह लिखा है कि आपने चारों युगों में चार नाम से प्रकट होकर जीवों को

उपदेश किया है। देखिए 'भक्तमाल' में महाराजा साहब का लेख--

साखी : सतयुग सत्यसुकृत नाम रहु, अरु मुनीन्द्र त्रेताहि।
द्वापर करुणामय रहेव, अब कबीर कलि माहि॥

फिर एच० एच० विलसन साहब अपनी 'दरश' नामक किताब (हिन्दुओं के धर्म के विषय में ६९ पृष्ठ तीसरे प्रकरण) में कबीरपंथियों के विषय में लिखते हैं कि कबीर साहब की शिक्षा का प्रभाव उनके मुख्य-मुख्य शिष्यों पर बहुत पड़ा था। उनकी शिक्षा का प्रभाव उनकी अनुपस्थिति में उससे बढ़ कर हुआ, कारण यह कि सर्व पंथों को इस पंथ की शाखाएँ कह सकते हैं। गुरु नानक साहब ने, जो हिन्दुओं में एक विशेष धर्म के आचार्य हुए, प्रायः अपनी धर्म-कथाओं में कबीर साहब का अनुकरण किया है। फिर भी देखिए, एच० एच० एलफ़िन्स्टिन साहब, जो अँग्रेजी इतिहास लिखने वालों में नामी और बड़े इतिहास-लेखक हो गये हैं, वह भारत के इतिहास में इस प्रकार से लिखते हैं, और नानक शाह के विषय में साक्षी देते हैं कि नानक शाह कबीर साहब के शिष्यों में से एक शिष्योंथे, परन्तु उन्होंने अपने लेख में कोई पृथक् वृत्तान्त कबीर साहब का नहीं लिखा, कारण यह कि उनके अनुगामियों में से किसी ने भारत के देशी इतिहास में कोई भाग नहीं लिया (देखिए एलफ़िन्स्टिन साहब के भारत के इतिहास की १२वीं जिल्द के प्रथम भाग के ६७८ पृष्ठ में)। वह शिष्यों के विषय में इस प्रकार से लिखते हैं कि इस धर्म के आचार्य नानक पन्द्रहवीं शती के अन्त में प्रकट हुए और कबीर साहब के शिष्य थे। इस कारण वह एक प्रकार के हिन्दू ईश्वरवादी थे, परन्तु उनके धर्म का मुख्य अभिप्राय सब को एक धर्म में मिलाने

का था।

फिर देखिए भारत के इतिहास का संक्षेप, जिसको कैलाश चन्द्र मन्ना, बी० ए० और देवेन्द्र नाथ राय, बी० ए०, एफ० एल०, एम० एस०, कालेज भवानीपुर, ने लिखा है। वह इस प्रकार है। देखिए भारत के इतिहास के पृष्ठ १०५ में—रामानन्द के बारह शिष्यों में कबीर साहब बड़े ही सुप्रख्यात हुए। उन्होंने मूर्त्ति पूजन के सब नियमों का खंडन किया और पण्डितों के शास्त्र तथा वेद-पाठ को तुच्छ बताया और उन पर आक्षेप किया। नानक साहब ने सब धार्मिक युक्तियाँ कबीर साहब से सीखी हैं। फिर देखिए उसी पुस्तक के १०८ पृष्ठ में—नानक शाह ने सिख धर्म पन्द्रहवीं शताब्दी में स्थापित किया और उन्होंने सभी धार्मिक रीतियों को कबीर साहब से सीखा। फिर देखिए ग्रन्थ रचयिता के पूर्व लिखित का व्याख्यान करने के समय मालकम साहब के लेख से निम्न-लिखित अनुवाद किया है कि—नानक प्रख्यात तथा सुप्रसिद्ध कबीर के विषय का अनुकरण किया करता है, और कबीरपंथी कहते हैं कि नानक ने कई सहस्त्र साखियाँ कबीर साहब की पुस्तकों से ली हैं (मालकम साहब की पुस्तक भारत के इतिहास को देखिए)।

फिर देखिए—मोनियर विलियम साहब, एक सुप्रसिद्ध अँग्रेज, जिन्होंने स्वयं भारतवर्ष का भ्रमण किया है, जो विलियम कालेज, आक्सफोर्ड में प्रोफेसर थे, अपनी पुस्तक भारत के धार्मिक ध्यान तथा आयु के छठें प्रकरण के १५८ पृष्ठ में लिखते हैं जो इस प्रकार आरम्भ होता है—'एकता का धर्म, जिसके रचयिता कबीर साहब हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं

सदी के बीच उत्तरी भारत में कबीर साहब के धर्म का बड़ा प्रचार हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि, यही धर्म पंजाबी सिक्ख धर्म की जड़ है और यह इस बात से जाना जाता है कि कबीर साहब की वाणी नानक शाह तथा उनके स्थानापन्नों ने स्थान-स्थान पर अपनी पुस्तकों में लिखी है। फिर देखिए—यही महाशय अपनी पुस्तक सिक्ख धर्म के ग्यारहवें प्रकरण के १६२ पृष्ठ में नानक साहब का विवरण निम्नलिखित रूप से करते हैं। जो कुछ वह कहते हैं वह ट्रम्प साहब के ज्ञातव्य के उस विज्ञाता के अनुसार है जिसे उन्होंने स्वयं लाहौर में आकर प्राप्त किया। वे लिखते हैं कि नानक शाह ने धर्म के बनाने की बात नहीं कही। यथार्थ में उस धर्म की जड़ कबीर साहब की वाणी में है। कारण यह है कि कबीर की धर्मपुस्तक का अनुवाद वह अपनी पुस्तक में करते हैं।

फिर देखिए–तारीख आइनानुमा प्रथम भाग राजा शिवप्रसाद साहब बनारसी कृत, जिसकी नवाब लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर अवध, पश्चिमोत्तर प्रान्त, सन् १८७२ ई० की आज्ञानुसार सरकारी मुद्रणालयों में सातवीं बार पाँच सहस्र कॉपी छपी। उसके पृष्ठ १५० की पहली पंक्ति में यह लिखा है कि 'पन्द्रहवीं सदी में कबीर साहब के शिष्यों में से नानक शाह ने सिक्खों का एक नवीन धर्म प्रचलित किया।" फिर देखिए–डबल्यू० डबल्यू० हण्टर, सी० आई०ई०, एल०एल०डी० का इण्डियन इम्पायर। उन्होंने अपनी इस पुस्तक के १६४ पृष्ठ में कबीर साहब के कौतुकों के विषय में लिखा है। फिर इसी पुस्तक के १०३ और १०४ पृष्ठों में कबीर साहब तथा नानक शाह के विषय में लिखा है और फिर देखिए—"एक दिन साधू हंसूदास जी आकर गुसाईं धर्मदास जी

से कहने लगे कि हे स्वामी जी, आज एक साधू पंजाब देश से आया है जिसने नानक शाह का बिचित्र वृत्तान्त और करामात की बातें सुनाई हैं। तब धर्मदास साहब ने कहा कि वह बातें सुनाओ। हंसूदास ने कितनी ही बातें सुनाईं। तब वे बातें सुन कर धर्मदास साहब ने कहा कि हे हंसूदास जी, नानक जी मेरे गुरु-भाई हैं।" फिर देखिए—गुसाईं गरीबदास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि नानक शाह तथा दादू राम इत्यादि कबीर साहब के शिष्य हैं।

यहाँ मैं अब वह बातें लिखता हूँ जिनको स्वयं नानक साहब की जन्म साखी से चुना है। सब जन्म साखियों में भाई वाले की जन्म साखी सर्वोत्कृष्ट तथा बड़ी प्रमाणित मानी जाती है। इस जन्म साखी को सब मानते हैं। जब नानक साहब परम धाम को सिधार गये तब उस समय भाई वाला गुरु अंगद जी के पास गया। अंगद जी नेत्रों में जल भर कर उससे यों कहने लगे कि हे भाई वाला! आप तो गुरू जी के साथ फिरते रहे हो और आप को सब वृत्तान्त भली प्रकार ज्ञात है, मुझसे सतगुरु के भ्रमण का सब वृत्तान्त कहो। इस बात पर भाई वाला ने गुरु अंगद जी से जो कुछ कहा, वही इस जन्म साखी में लिखा हुआ है, अर्थात् यह जन्म साखी सम्वत् १५८३ विक्रमी की है जिसमें निम्नलिखित बातें लिखी गई हैं। इस जन्म साखी के २६६ पृष्ठ पर, नानक शाह जी साहब से भाई मरदाना प्रश्न करता है—"हे महाराज! तू सानूं जो गुरू मिलिया सो कौन मिलिया आहाते नाम उसदा की आहा ?" अर्थात्—"हे महराज! तुम्हें कौन गुरु मिला है, उसका नाम क्या है ?" उत्तर– ता फिर नानक जी ने कहिया—

"नाम उसदा बाबा जिन्दा हुआ है और जित्थे तोड़ी पवन और जल है सब उसदे बचन बिच चलदे हैं।" अर्थात्–"उसका नाम बाबा ज़िन्दा है और जहाँ तक पवन जल हैं, सब उसकी आज्ञा के बीच चलते हैं।" फिर देखिए (पृष्ठ २२६) भ्रमण के समय एक साधू ने नानक साहब से पूछा, कि तू साडा (अर्थात् तुम्हारा) गुरु कौन है ? तब नानक जी ने कहा–मेरा गुरु ज़िन्दा है। फिर देखिए पृष्ठ ३४६। जब नानक साहब कन्धार देश को गए तब उनको यार अली नामक एक फ़कीर मिला। उससे और नानक साहब से बहुतेरे प्रश्नोत्तर हुए। उनमें एक प्रश्न यह भी था। यार अली ने पूछा कि आपका गुरु कौन है ? तब नानक साहब ने उत्तर दिया कि मेरा गुरु बाबा ज़िन्दा है। अब मैं यहाँ वही भाषा लिखता हूँ जिसमें यार अली और नानक शाह में वार्तालाप हुआ था। "बोलो भाई वाह गुरु ! नानक उत्थे उदारी ले तीता जाय क़न्धार विच्च खड़े हुए। उत्थे एक मुग़ल फकीर आहा, उस नाल भेंट हुई तब उसने पूछ्या। (अर्थात् नानक जी वहाँ से उड़ के क़न्धार में पहुँचे, वहाँ एक मुग़ल से भेंट हुई, तब उसने पूछा) "शुमा चे नामदारी–ता गुरु नानक बोल्या–मा नाम नानक निरंकारी। फिर मुग़ल बोल्या-न फ़हमीद। ता गुरु नानक बोल्या– मा पीर ज़िन्दा पीर। ता फिर मुग़ल बोल्या– शुमा मीर ज़िन्दा पीर। ता गुरु नानक कह्या। अरे-अरे। ता फिर मुग़ल कह्या–मा एतक़ाद नेस्त। ता गुरु नानक कह्या–चे गुफ़्त। ता मुग़ल कह्या– पैदा शुदी, मुरीद शुदी। ता गुरु, नानक कह्या–एक ख़ुदाय पीर शुदी कुल आलम मुरीद शुदी, फ़क़ीर खबरदार निगाह दीगर नदारी। ता मुग़ल पीर उत्थे उगा। ता गुरु नानक कहिया–एक

खुदाय नीज़ दीगरे नेस्त । ता मुग़ल बोल्या शुमा पीर मा मुरीद। ता गुरु नानक कह्या—शुमा नाम चेदारी । ता मुग़ल कह्या—नाम मन यार अली अस्त । ता गुरु नानक कह्या—नाम शुमा बाबुल कंधारी ।'' फिर देखिए पृष्ठ ३६६ । जब नानक शाह बाबर शाह के साथ वार्तालाप कर रहे थे तब बाबर शाह ने पूछा कि "सुन नानक, तू कबीर का चेला है ?'' तब गुरु नानक ने कहा, "हाँ, सुन बाबर! कलन्दर कबीर ऐसा था जो परमेश्वर के समान था। उसमें तथा परमेश्वर में किसी प्रकार की विभिन्नता नहीं थी। उसमें तथा परमेश्वर में जो भेद रखता है सो परमेश्वर का सेवक नहीं है। वह (कबीर) बड़ा ही पवित्र है।'' फिर देखिए पृष्ठ ३१८। जब नानक शाह ध्रुव-मंडल में पहुँचे तब वहाँ नानक शाह को स्वयं कबीर साहब मिले और यों कहा—

चौ० : कहैं कबीर सुन नानक भाई । हम तुमको उपदेश कराई ।।

बयान बीजक का

इस बीजक के कहने का क्या प्रयोजन और अर्थ है ? पहले सतगुरु की साखी देखिए फिर अर्थ विचारिए—

बीजक कहे साख धन, धन का कहै संदेश ।
आतम धन जेहि ठौर है, बचन कबीर उपदेश ।।

सतगुरु ने अनन्त वाणी व ग्रन्थ व शब्दादिक हर ज़बान व विद्या में जीव को समझाने के लिए नाना प्रकार से कहा है, जिसमें काल की दग़ाबाजी से जीव की गिरफ़्तारी व फँसाव दिखाया, और इसके छूटने का यत्न बताया है। उन सब बानी-बचनों को

खुलासा एक ठौर करके रख दिया है, और इसका नाम 'बीजक' रक्खा है, जिसमें सबको उनके कुल कलामों का मूल एक ठौर पर मिल जावे। कुल ग्रन्थों, बानी व बचनों की तलाश में तकलीफ न होवे, सहज ही थोड़े में सबका सार, अपने फँसने और छूटने का हाल मालूम पड़े, जिसे समझ कर अपना धन ढूँढ़ लेवे, और काल के जाल से छूट कर अपने अमरलोक को चला जावे याने आवागवन से छूट जावे। इसलिए बीजक कहा है। बीजक का अर्थ ही यही है कि वह आत्म धन की खबर दे—

बीजक बतावे वित को, जो बित गुप्ता होय।
वैसे शब्द बतावे जीव को, बूझै बिरला कोय॥

वह सतगुरु का बीजक दो खज़ानों की खबर देने वाला है। एक तो सतगुरु की अनन्त वाणी का जो उन्होंने कही हैं—दूसरा जीव का खजाना कि जिससे वह निकल कर काल के जाल में फँसकर चौरासी भोग रहा है। अब न यह अपना वह ख़जाना पाता है, न अपनी जमा से मिलता है। इसकी जमा देखना चाहिए कि क्या है। इसकी जमा सारशब्द है, जिसकी महिमा वेद किताब कहकै हार मान गये और शिव सनकादिक और सारे ऋषीश्वर मुनीश्वर, पीर औलिया, संत महंत, गुणानुवाद गाते-गाते मर गये। काल की पहुँच से न्यारे उसी सारशब्द सतपुरुष का लखाव सतगुरु ने कराया और उसकी प्राप्ति के यत्न बताये, बिदून उसके मिले जीव की मुक्ति नहीं होगी। इसी वास्ते उन्होंने यह बीजक ग्रन्थ और अनन्त बानी व बचन कहे हैं।

बयान टीकाओं का

अब मैं देखता हूँ कि सतगुरु के बीजक ग्रन्थ की टीका लोगों ने अपनी बड़ाई के वास्ते लिखा है। उन्होंने अपनी चतुराई और बुद्धि के बल से सतगुरु का सिद्धान्त तोड़ा है, और अपना सिद्धांत खड़ा किया है, जिसको देख कर जीव सतगुरु के सिद्धांत से गिर जाता है। सतगुरु के विरुद्ध होने से उसे संत जौहरी अंगीकार नहीं कर सकते। अज्ञानी जीव जो सतगुरु के भेदी नहीं हैं, टीका को देख कर मगन होते हैं और अपने को सतगुरु का ज्ञानी समझ कर सबको गुमराह करते फिरते हैं। यह टीकाकार दूसरे निरंजन हो गए हैं जो जीव को मुक्ति के रास्ते से हटा कर चौरासी के खूँटे में बाँध गये हैं। मुक्ति के वास्ते सद्‌गुरु का सिद्धांत सारशब्द का है और इन टीकाकारों में से किसी ने तो पारख सिद्ध किया और किसी ने जीव को जमा माना है। कोई रकार मकार सिद्धांत की टीका करते हैं जो सतगुरु के सिद्धांत सारशब्द के विरुद्ध है। कहाँ सारशब्द और कहाँ पारख और जीव जमा तथा रकार मकार। इससे जीव को चौरासी में फँसाना है। छूटने का यत्न तो सतगुरु ने एक सारशब्द बताया है। तब टीकाकारों का सिद्धांत कैसे ठीक पड़ेगा, और जीव कैसे भव पार होगा? उसका जन्म-मरण का दुःख हमेशा बना ही रहेगा। सतगुरु का देश अमर-लोक है, और निरंजन का मर्त्यलोक, जिसमें से छूटने का उपदेश सतगुरु ने किया है। टीकाकारों की बुद्धि को काल पुरुष ने कैसा हर लिया कि सब अंधे हो गए। किसी को यह नहीं सूझा कि हम सारशब्द को छोड़ कर सतगुरु के विरुद्ध कहाँ बैठेंगे—इतनी परख

उनको नहीं हुई। इस टीका के जानने और मानने वाले क़ायल नहीं होते और न कुछ अपने भीतर विचार करते हैं कि यह क्या बात है। सतगुरु तो पुकार-पुकार कर सारशब्द ग्रहण करने को कहते हैं। हम इस पारख और रकार मकार में कहाँ मर रहे हैं? वे बिचारे भी क्या करें, उनको यह टीका उपदेश ही ऐसा करती है कि जहाँ शब्द का नाम आवे, तुम उसको माया जानना और शब्द को आकाश का गुण समझना। शब्द तो तेरी कृपा से होता है, इसलिए तुम शब्द को न मानो। शब्द मुक्ति का दाता नहीं है। खाली पारख पर रहना, और दूसरी तरफ आँख उठा कर न देखना। सारशब्द या आदि शब्द कोई वस्तु नहीं है। सारशब्द तो निर्णय का नाम है। वह कहते हैं कि यह सब झूठ प्रपंच है। रकार मकार मुक्ति का दाता है, इसके सिवाय और कोई मुक्ति का दाता नहीं है। यह रकार मकार निरंजन व आद्या का रूप है, जिसको सतगुरु ने काल व माया बताया है। यह दोनों जगत के कर्ता व दाता हैं, मुक्ति के दाता नहीं हैं। तब मुक्ति पद कैसे सिद्ध होगा? यह दोनों टीकाएँ सतगुरु के बीजक के विरुद्ध हैं। इन दोनों विद्वानों को सतगुरु का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था, इसी से ये लोग भूल में पड़े तथा और की और कहने लगे व जीवों को गुमराह करने लगे। यह वही मसल हुई कि—हम तो डूबेंगे मगर यार को भी ले बहेंगे—सो वैसा ही दीख पड़ता है। कोई रकार मकार में और कोई पारख में धँस मरा। सतगुरु के विचार के बिना वे सारशब्द से गिर गए और मुक्ति दाता सत्यपुरुष की खोज न की, इससे सतगुरु के द्रोही बन गए, मुक्ति-गति को प्राप्त न हुए, आवागमन के फेर में पड़े रहे। जब यह लोग

दिल में विचारते कि सतगुरु ने सारशब्द को सत्यपुरुष, सबका कर्ता और मालिक कहा है, पारख व रकार मकार को कर्ता नहीं कहा, बल्कि इन सबका खंडन किया है और कहा है कि सार-शब्द के सिवाय और कोई मुक्ति का दाता नहीं है, तब उनकी भूल मिट जाती। इनकी मति निरंजन ने मार ली, सतगुरु के भेदी न हुए—

साखी : जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाँहि।
बिन विवेक भटकत फिरें, पकड़ शब्द की छाँह ॥

सतगुरु ने सारशब्द को सबसे परे व न्यारा बताया है जिसका भेद इन लोगों को नहीं मिला, नहीं तो ऐसे न बहकते, न गुम-राही में पड़ते। बिना पूरे सतगुरु के मिले यह पदार्थ नहीं मिल सकता। देखिए सद्गुरु वचन—

शब्दभेद है अगम अपारा, भेद न पावे कोई हो ॥
कोटिक शब्द कही मुख बानी, एक शब्द हम गाई हो।
ताको भेद काल नहिं पावे, सो संतन चित लाई हो ॥
कहैं कबीर अगम की बानो, पूरे गुरू लखाई हो।
शब्द भेद पावेगा सोई, जाको सतगुरु पूरा होई हो ॥

देखो भाई, जो इन लोगों को पूरे सतगुरु मिलते तो ये लोग सारशब्द, अगम पुरुष का भेद पाते। यह तो निरंजन के उप-देशक थे, सतगुरु के भेदी न थे, न उनके बानी-बचन की बूझ इनमें हुई। यह सब तो विद्या के अभिमान से निरंजन काल के फंद में पड़ गये। यह बात देखने योग्य है—इस पुरुष की बानी समझने में हमारी बुद्धि नहीं अँटती, तब हम उसके वचनों की टीका कैसे लिखेंगे, यह अपनी भूल व नादानी है। यह मल-मूत्र

का निवासी गंदा जीव उस विदेही पुरुष के कलाम की टीका बुद्धि व विद्या से करने लगा; यह काम देहधारी का नहीं है। यह लोग इतना भी नहीं विचारते कि सद्गुरु ने अनन्त बानी में क्या कहा है, उन सबका मतलब क्या है, और उनका क्या प्रयोजन था, जो एक बात के वास्ते अनन्त ग्रन्थ और बानी बचनों से इसको समझाते। उसी एक बात का विस्तार करके नाना प्रकार से कह कर समझाया है, उन्हीं सब बचनों व ग्रन्थों का ख़ुलासा हम सब के लिए, मूल-मूल एक ठौर इस बीजक ग्रन्थ में कह दिया है, कि हम लोग उसको देखकर उनके अनन्त ग्रन्थों व वचनों की खोज करके सतगुरु का शुद्ध ज्ञान लेकर अपनी जमा सारशब्द में जीते जी मिल रहें, और सत्य मुक्ति - गति को प्राप्त कर जरा-मरण के दुःख से छूट कर आवागमन के फंद से बचें। वही सब अनन्त बानी व बचन इसकी टीका है। उनके कलाम की टीका कोई नहीं कर सकता। उन्होंने अपने कलाम की टीका आपही कर दी है। साधारण मनुष्य के ऊपर टीका करने को नहीं छोड़ा, कि वह अंटसंट टीका करके, जीवों को गुमराह करे और सारशब्द से मिलने को रोक दे जिससे जीव मुक्ति गति को न पहुँचे, हेर-फेर चौरासी में रहे, कभी छूटने न पावे। हाँ यह उनकी टीका उस समय ज़रूर कबूल होती, जब वह सतगुरु के सिद्धान्त से न गिरती, बल्कि दोनों में बराबर मेल होता चला जाता। उसके विरुद्ध होने से यह दोनों टीकाएँ डुबा देने के क़ाबिल हैं। भूल से भी इनकी तरफ़ न देखें, क्योंकि इससे जीव का उद्धार नहीं होगा।

इसलिए मैं अपने उन गुरु-भाइयों से प्रार्थना करता हूँ, जो

इस टीका के भरोसे पर अपनी उम्र खो रहे हैं और यह समझते हैं कि यह टीका हमारे लिए मुक्ति का जहाज़ बनाया गया है, अब इस पर चढ़ करके हम भौसागर से पार उतर जावेंगे—सो इस भरोसे न रहें। यह नाव उन्हें, जो इस पर सवार बैठे हैं, बीच धारा में ले डूबेगी। फिर कोई बाँह पकड़ कर निकालने वाला न खड़ा होगा। उन टीकाकारों का तो पता भी नहीं कि कहाँ गये, और तुमको सतगुरु से परिचय न हुआ और न उनके बचन पर खड़े होकर तुमने प्रतीत की। फिर कौन गुहार लगेगा और कौन चौरासी के भँवर से बचावेगा ? तुम्हारी नाव का खिवैया टीका दिखा के अलग जा बैठा, फिर कैसे नाव पार घाट लगेगी ? इस लिए ऐ भाइयो, अपने दिलों में बिचारो और बूझो कि हम कबीर-पंथी हैं, हमको जहाँ तक सतगुरु के सिद्धान्त से मिलान होगा, वहाँ तक हम उसको ग्रहण करेंगे; जहाँ पर मिलान न होगा हम उसको अंगीकार नहीं कर सकते हैं। तब तो बेशक इस भूल से बच सकते हैं, नहीं तो इससे बचना बहुत दुर्लभ है। क्योंकि पारख जीव जमा व रकार मकार शब्द को सतगुरु ने मुक्ति का दाता नहीं बताया है, वह मुक्ति के हेतु हमको सारशब्द का उपदेश बारम्बार करते हैं—

सारशब्द गहि बाँचिहो मानो इतबारा।

फिर कहा है कि—

सारशब्द में एकै सिद्धि, मुक्ति करै तँह सेवा।
सारशब्द का खेल निराला, समुझै गुरुमुख भेवा।।

तब हमको क्या प्रयोजन है कि हम इन लोगों के बहकाने से सारशब्द को निर्णय का नाम मान लें ? हमको तो अपने आचार्य

के हुक्म पर चलना चाहिए न कि दूसरों के ज्ञान पर। इन लोगों को सारशब्द का परिचय नहीं है। मनमतिया ज्ञान से वे सतगुरु के बीजक की टीका उसके विरुद्ध कर गये और अंधों को अपनी चतुराई दिखा गये। वे उसको देख-देख कर बहुत मगन होते हैं और समझते हैं कि हम कबीरपंथी हो गये और हमको मुक्ति की पक्की सीढ़ी मिल गयी—बिना परिश्रम सतगुरु के दर्बार में पहुँच जायेंगे, कोई रोकेगा नहीं—सो यह सब धोका और भूल है।

अब मैं अपने गुरुभाइयों के सामने दोनों टीकाओं के सिद्धांतों को दिखाऊँगा, जो सतगुरु के विरुद्ध हैं और जिसको सुजन जन और सतगुरु के भेदी देखकर इन्साफ़ से कहेंगे कि सारशब्द मुक्ति-दाता है कि पारख या रकार मकार। उनके विचार से जो सारशब्द मुक्ति का दाता ठहरे, पारख और जीव जमा न ठहरे, तो मुझे क्षमा करके दया देवेंगे, जिससे मेरे गुनाह सतगुरु की दरगाह से माफ़ होवें, और मैं उसकी बन्दगी में लगूँ।

देखिए! इस वक्त मेरे सामने सतगुरु के बीजक की दोनों टीकाएँ मौजूद हैं, जिनको मैंने बड़े शौक़ से देखा तो बिलकुल सतगुरु के बचनों के विरुद्ध पाया। इन टीकाकारों को अपना गुरुमत ही नहीं मिला तो उनकी टीका कैसे शुद्ध हो? देखिए "सारशब्द गुरुमत है सार। और सकल है यम की धार॥" जो सारशब्द-सिद्धान्त से अलग जा रहा हो उस ज्ञान को कोई कबीरपंथी नहीं मान सकता। हाँ, जो उनके दर्बार में बहुत से खोगीरपंथी भर्ती हैं, अलबत्ता इसको मानेंगे, क्योंकि वे पराई आँखों से देखते हैं। उन्होंने बाहुली माहुली फोर ड़ारी। इस वास्ते दोनों टीकाओं का खंडन करके उनको दिखाया जाता है कि तुम

आँखें खोल कर देखो, तुम्हारा गुरुमत सारशब्द है। जब तक इसको न पावोगे, मुक्ति-गति को न प्राप्त होगे। महाराज विश्वनाथ सिंह साहब ने अपनी टीका में गुरुमत रकार मकार शब्द को सार मान कर मुक्ति का दाता ठहराया है। और दूसरी टीका पूरणदास साहब की है, वे खाली पारख पर बैठे रहना और जीव जमा मानना गुरुमत बताते हैं। इस सबब से पहले मैं पूरणदास साहब की टीका को लेता हूँ, जिसका आजकल बड़ा अधिकार है। अज्ञानी लोग गुरुमत से हट कर पारख झंडे पर बैठ गये। अब उस पर से उतरते नहीं, काल के मुख में जा रहे हैं, मुक्ति पद को नहीं पाते, और न यह टीका उनको उससे मिलने देगी।

टीका-खंडन

साखी : बीजक

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहँ चला बिगोय ॥

देखिए टीका पूरणदास साहब। "टीका गुरुमुख—गुरु कहते हैं जब पृथ्वी, आब, तेज, वायु, आकाशादि, त्रिगुण अवस्था और प्रकृति आदि चारि खानि न था, तब यह जीव आप मुक्त था। कौन प्रकार से यह शंका तो दूसरा बिजाति बंधन था नहीं तो मुक्त सहज ही था यह अभिप्राय। जो बन्धन मूल में न था तो बीच में कैसे पैदा हुआ और पंच तत्व न थे तब यह जीव कहाँ था। यह शंका, जब पृथ्वी न थी तब साँच भूमि कहाती, और जब जल नहीं था तब विचार रूपी आब, और अग्नि न थी तब

शील का प्रकाश था और वायु न हता तब दया का पसारा था, आकाश न था, धैर्य का आकाश था। ये जीव के पाँचों अनादि तत्व यही ब्रह्मांड और यही तत्वन की देह हंसा की हती, पक्के तत्व के आधार से पक्की देह हंसा का हता, तामें हंसा एक और रूपक दूसरा भाव कुछ न था। जीव आप ही स्वतः शुद्ध याको कर्ता, दूसरा नहीं यह निश्चय है। संतो सोई तुम्हारी छठी देह ताको छोड़ के तुम पंच देह के हिंडोले में बैठे, यह अभिप्राय। तो कौन प्रकार से पंच देह पैदा हुई और कौन प्रकार छठी देह छूटी और कौन प्रकार यह जीव हिंडोले में पड़ा यह शंका, तो जब छठी देह में सुखी था तो एक समय हंसा ने अपनी देह और ब्रह्मांड देख कर परम हर्षमान हुआ। तब इन्द्रिय गोलक और इन्द्रियन की विषय थी कि नहीं ये शंका, तो नेक चर्चा इन्द्री गोलकन की। इन्द्री का व्यवहार थे तो कैसे थे और कैसे देखा? सो सुनो! विचार रूपी नेत्र व शील का प्रकाश सत्य सोई भाश सो विचार रूपी नेत्र से देखा यह अभिप्राय। अब छठी देह प्रथम वर्णन करता हूँ, सुनो। साँच की प्रकृति निर्णय नारी निर्बुधि निर्मल मास। प्रकाश त्वचा स्थिर हाड़ क्षमा रोम विचार की प्रकृति। अस्ति नास्त पद विलगान सोई पसीना शुद्ध सोई बिंद हेत सोई रक्त अमल सोई राल निर्मल सोई मूत्र शील की प्रकृति। अक्षुधा तृष्णा निर्मैथुन निरालस ओ निद्रा दया की प्रकृति। अमल अचल अक्षर व संकोच असोच धीरज की प्रकृति। अकाम, अक्रोध, अलोभ, निर्मोह, निर्भय, पाँच की पचीस। अब दश इन्द्री सुनो! शील की इन्द्री नेत्र, पाँव, धीरज की इन्द्री, कान, बानी, शोच की गुदा, नाक, दया की त्वचा, हाथ, विचार की लिंग,

जीभ, ये दश इन्द्री। अब तीनों गुण सुनो, विवेक, वैराग और बोधभाव इस प्रकार की तेरी छठी देह, सो ताही देह को हंसा ने देखा और खुशी हुआ सोई है जागा आनन्द जगा,जो सर्वोत्कृष्ट आनंद, तहाँ हंस की तत्व प्रकृति आनन्द में लै हो गई और देह की बिस्मृत सुखवत भई सो हंस देह छूठी और केवल देह हंस को प्राप्त भई तहाँ अभाव भूमि का विज्ञान जल ब्रह्माग्नि अग्नि निरात बात निजाकाश आकाश तत्वमस्यादि गुण प्रकृति तित प्रकृति ।। तहाँ हंसा कुछ काल रहे फिर चैतन्य स्फूर्ति हुई सो केवल देह हंसा को छुटी जाको सब आत्मा अधिष्ठान ब्रह्म बोलते हैं फिर हंसा को महाकारण देह प्राप्त हुई। तहाँ सुलीन भूमिका जान व जल प्रकाश अग्नि वाडवाग्नि चिन्मय वात चिदाकाश तुर्या अवस्था साक्षी वोध ज्ञान ये त्रिगुण सकल संयति प्राप्त भई फिर तहाँ ते प्रज्ञात्मा अभिमान से प्राज्ञ अभिमान उत्पन्न भया तब सुषुप्ति अवस्था भई तब हंसा को कारण देह प्राप्त भई, तहाँ स्वलेष्टता भूमिका अज्ञान जल अवर्णजल मंदाग्नि स्थिर बवन महदाकाश जड़ जाढ़ मूढ़ ये त्रिगुन तहाँ हंसा कछु काल रहे। फिर प्राज्ञ अभिमान से तेजस उपजा तब हंस की लिंग देह प्राप्ति भई तब स्वप्नवत् अवस्था गतागत भूमिका चंचल जल कामाग्नि अग्नि, गुल्फ वायु, मठाकाश आकाश, रेचक, पूरक, कुम्भक ये त्रिगुण इस प्रकार का लिंग देह। तहाँ तैजस अभिमान से विश्व अभिमान पैदा हुआ सो स्थूल देह हंस को प्राप्त हुई और जाग्रत अवस्था क्षिप्रा भूमिका काम जल जठराग्नि अग्नि श्वांस वायु शून्य घटाकाश रज, तम, सत ये त्रिगुण दश इन्द्री आदि व्यवहार गोलक विषय सब पैदा भई और हंस को स्मृति आई। अहङ्कार खड़ा हुआ। तब पाँच पंचक

पैदा भए अन्तःकरण, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार। आकाश पंचक अर्धशून्य, ऊर्ध्वशून्य, मध्यशून्य, सर्वशून्य, महाशून्य! वायु पंचक प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। अग्नि पंचक कान, नाक, आँख, जिह्वा, त्वचा। जल पंचक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। पृथ्वी पंचक हाथ, पाँव, मुख, गुदा, लिंग; एवं पंचपंचक निर्माण हुए और पचीस प्रकृति निर्माण भई। हंस की पक्की देह जाय के कच्ची देह हुई और पक्का ब्रह्मांड जाय के कच्चा ब्रह्मांड हुआ। धीरज ते आकाश, दया ते वायु, शीतल ते तेज, विचार ते जल, सत से पृथ्वी, गुणन ते गुण और प्रकृति से प्रकृति इस प्रकार तेरी छठी देह से हौं भाव आनन्द जगा, ताते पक्का-कच्चा हुआ, तब अहङ्कार आया और इच्छा किया ताते नारी आदि चौरासी योनि पैदा हुई और सब में आय समाया फिर कल्पित दूसरा कर्ता खड़ा किया औ कल्पि कल्पि नाना बानी वेद शास्त्र, पुराण, श्रुति, स्मृति, छंद, प्रबंध, मंत्र, तंत्र, यंत्र बनाया और इनके पीछे तू कहाँ चला बिगोय। हे गुरु बिगोने का अधिष्ठान मेरी छठी देह सो सब भाष्य अध्यास छोड़ के जो मैं छठी पर ठहरा तो फिर यही दशा को प्राप्त होऊँगा। क्योंकि जब कुछ न था और जीव स्वतंत्र मुक्त था तो उसे क्या खुशी थी कि मेरी पक्की देह जाय और कच्ची देह होय और ऐसी दरिद्र दशा होय यह कुछ उसको इच्छा न होके यह दशा प्राप्त हुई तो अब वह देह को प्राप्त भया और अब फिर ऐसी दशा न होवेगी याको प्रमाण क्या यह सम्पूर्ण कच्चा मसाला पंच देह सहित छठी देह में था, अगर न होता तो कहाँ से निकलता यह शंका। तो छठी देह तो हौं भाव और सब विकार का मूल ठहरा अब तेरा छठी देह कहाँ हैं और पंच देह कहाँ है? तू यथार्थ परख

के देख तो। हे गुरु अब तो मेरे को पक्की देह आदि चारो देह कची अस्थूल देह में मालूम होती है तो हे संत तुम विचार करो प्रथमारम्भ में अस्थूल आदि पाँचो देह एक पक्के देह में थे अब पक्का आदि पाँच देह स्थूल में हैं। तो सोई पक्का कच्चा हो गया अब पक्का क्या कहीं न्यारे बैठा है। नाहक वृथा कल्पना काहे को करता है। ये पाँच देह तेरे को परखाय को छोड़ने के वास्ते छठी देह सिद्ध किया सो तूँ छवों देह परख के पारख भूमिका पर ठहर पारखी को न पक्की से काम न कची से काम। जो छवों भूमिका परखैं सो पारखी ताको स्वरूप पारख तो पारखी पारख रूप। एक पारख जीव को भूमिका और सब नास्तिक धोका। पारख में कची पक्की कुछ सम्भवती नहीं। जब कच्ची नाशी तब पक्की भी गई जब लग पक्की तब लग कची, जब लग कची तब लग पक्की का रहनी लेना और पक्की कची से कुछ काम नहीं, यथार्थ पारख पर स्थिर होना ये अर्थ।"

टीका खण्डन—पहिले देखिए इस साखी का अर्थ ठीक-ठीक यथार्थ हो गया या नहीं, और मुक्त-स्वरूप स्वतः शुद्ध होना जीव का ठहरता है या नहीं। मेरे विचार में जीव का स्वतः शुद्ध और मुक्त-स्वरूप होना नहीं सिद्ध होता, और न यह दर्शाया गया कि यह पारख स्थिर मुक्ति में कहाँ पर थी। मुक्ति का सिद्धांत सतगुरु ने सार-शब्द को ठहराया है, न कि पारख को। देखिए सद्गुरु वचन—

> **सारशब्द गहि बाँचिहो, मानहु इतबारा।**
> **अजर अमर एक वृक्ष है, निरंजन डारा।**
> **त्रिदेवा शाखा भए पाती संसारा॥**

पारख को मुक्ति का दाता नहीं कहा, और न पारख लेने से बचने को कहा है, अलबत्ता सारशब्द को परखने को कहा है कि तू सारशब्द को परख कर ले ले और मुक्त हो जा। मुक्ति का अर्थ भी यह है कि अपने अस्ल से वस्ल हो जा। पारख पर रहने से एक भी वस्ल याने मिलान नहीं होता; अलग बना रहता है। तब मुक्त होना नहीं कहा जा सकता है, और शब्द जिसको सतगुरु ने मुक्ति का दाता कहा है, वह सबसे न्यारा व परे है, और जीव छोटा पद है। वह समुद्र रूपी है, यह बूँद रूपी है, बूँद समुद्र में समा सकता है, समुद्र बूँद में नहीं समाता और बूँद का समुद्र में समाना मुक्ति है। पूरणदास साहब के कथन से खाली पारख पर रहने से यह जीव का जीव बना रहता है, क्योंकि यह किसी से मिलता नहीं। मुक्ति से विलग रहा तब पारख पर रहने से इसका मुक्त स्वरूपी स्वतः शुद्ध होना नहीं ठहरता। जो पारख को मुक्ति-स्वरूप कहा जाता तो यह जीव अलबत्ता उसमें मिलता। ऐसा नहीं है कि पारख जीव में नहीं है, इसी से जीव पारखी कहा गया। तब जीव की मुक्ति होना पारख पर रहने में कैसे साबित होता है? जीव से पारख छोटी है। पूरणदास साहब के इस सिद्धान्त से कि जीव मुक्ति में था तब इसके अनादि पक्के पाँच तत्व इसमें मौजूद थे, एक साँच, दूसरा विचार, तीसरा शील, चौथे दया, पाँचवे धीरज; इस तरह पर पक्के तत्व में यह जीव मुक्त था मगर पारख अनादि मुक्ति में नहीं बताई गई। क्या मुक्ति स्थान में इसको पारख न थी, तो बीच में यह कहाँ से मुक्ति रूपी प्रगट हुई? फिर उन्हीं के कथन से पक्के तत्व के यह बिजाति बन्धन इसके साथ सिद्ध होते हैं जिनसे कच्चे तत्व बने और उनमें जीव फँसा। यहाँ पर पारख

को नहीं गिनाया। तीसरे जब पहिले से यह जीव मुक्ति में यानी पक्के तत्व के देह में था तब पारख पर आने से वे पक्के अनादि तत्व कैसे छूटेंगे? पारख में आने से इसको कौन सी विस्मृति होगी और क्यों कर अभाव होगा? फिर पूरणदास साहब यह भी कहते हैं कि जब इसको छठी देह में आनन्द जगा तब इसको विस्मृति हुई और यह पक्की देह से निकल कर कच्ची देह को चलता हुआ। कच्ची देह में आने से विकार कल्पना में पड़ गया। पारख पर स्थिर होने से न इसको पक्के देह से काम रहेगा न कच्चे से—भला यह बात कैसे अंगीकार होगी? जिसमें जो अनादि स्वभाव हैं, वह कैसे छूटेंगे? जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने का व दीपक का प्रकाश करने का है, उनमें इनका अभाव किसी प्रकार से नहीं हो सकता। फिर अनादि पक्के तत्व, जो इसके मुक्ति के समय में थे, जिससे इसने कच्चे तत्व की देह खड़ी की और उसमें भूल रहा है, सिर्फ़ पारख पर स्थिर रहने से कैसे जा सकते हैं? परखने से तो सिर्फ़ इस क़दर फ़ायदा होगा कि यह पक्की या कच्ची है। इस परखने से इसका नाश नहीं होता इस वास्ते पारख में यह गुण नहीं है। उसमें सिर्फ़ परख करने का गुण है। जब यह पारख अनादि तत्वों का अभाव न कर सकी तब फिर अनादि स्वभाव से यह कच्ची में न हो रहेगा? पारख क्या इसकी टाँग पकड़ेगी? जैसा इसने पहिले किया था, क्या फिर न करेगा? ऐसा निश्चय नहीं हो सकता। फिर यह बात रही कि जब लग पक्की तब लग कच्ची। यह कच्ची-पक्की हमेशा करता रहेगा, इससे तो मुक्ति नहीं होगी। अब देखिए सतगुरु की साखी जिससे वे जीव को उस वक्त की सुधि कराते हैं, जब यह सारशब्द मुक्ति

स्थान को छोड़ कर चला—

साखी : जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय ।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहँ चला बिगोय ॥

जिसको पूरणदास साहब पक्की कच्ची बताते हैं, यह छठी देह हंस की है जिसकी व्यवस्था सतगुरु ने हंस देह के बयान में की है, जो आदि ग्रन्थ में लिखे गए हैं । देखिए पूरणदास साहब की चतुराई । जब यह छठी देह को निरंजन के बहकाने से चलने लगा तब उसी वक्त सतगुरु ने इसको मना किया कि वहाँ न जा, खराब होगा, फिर उससे निकलने न पावेगा और न लौट कर अपने बिदेह स्वरूप सारशब्द से मिलने पावेगा, फिर पछतावेगा, सो तूने मेरा कहना न माना । देख, अब कैसा नष्ट हो रहा है ! "कितनों मैं समुझावत रहे, बहुरि कियो नहिं कान ।" सो वही हुआ । जो अब भी तू मेरी शिक्षा मान ले तो सारशब्द की डोरी गहकर अपने अमरलोक को चला जा, मुक्त हो जा । अब जब तक तूँ सारशब्द की पारख नहीं करेगा, इन छवों देहों से नजात न पावेगा, देखिए सतगुरु वचन—

सोरठा : इंद्री कर्म सब देह, अरसठ शून्य सो देह है ।
मरे धरे फिर देह, बंधन मुक्ति याही हवै ॥

यहाँ पारख झंडे पर पूरणदास साहब बैठाल कर पक्की-कच्ची देह परखाते हैं, कि हाय यह मेरी पक्की और हाय मेरी कच्ची । जो इसी देखा-भाली में यह रहा तो फिर एक दिन लालच में आकर, अपने पिछले स्वभाव से, यह झम्म से कूद कर पक्की-कच्ची करेगा । तब पारख क्या करेगी ? क्योंकि जब इसने पहिले सतगुरु का कहना न माना, तब इसका कहना कैसे करेगा ? चौथे,

पूरणदास साहब ने यह भी लिखा है कि 'यह संपूर्ण कच्चा मसाला पंच देह सहित छठी देह में था ? अगर न होता तो कहाँ से करता ? प्रथम आरंभ में स्थूलादि पंच देह एक पक्की देह में थी अब पक्का क्या कहीं न्यारे बैठा है ? नाहक मिथ्या कल्पना काहे को करता है ? पाँच देह तेरे को परखाय के छुड़ाने के वास्ते छठी देह सिद्ध किया फिर तू छहों देह परख के पारख भूमिका पर ठहर। पारखी को पक्की कच्ची से कुछ काम नहीं।' अब देखिए पहिले यह कहा कि पूर्ण कच्चा मसाला पक्की देह में था फिर कहा कि अब पक्का क्या कहीं न्यारे बैठा है ? तो जब पूर्ण कच्चा मसाला पक्के अनादि तत्वों में घुसा था तब यह विकार तो इसमें पहिले से ही भरा था तब फिर कैसे घुसा था। क्या मुक्ति में भी विकार रहता है, अगर ऐसा ही था तो फिर इसकी कल्पना क्या बेजा थी ? हर क़िस्म का सम्पूर्ण सामान तो इसके पास पहिले से मौजूद था जिसको वह किसी तरह पर नहीं छोड़ सकता। फिर यह भी कहते हैं कि पंच देह तेरे को परखाय के छुड़ाने को पक्की देह सिद्ध किया है, तो इससे यह सिद्ध होता है कि छठी पक्की देह झूठी है, उसे सिर्फ़ पंचायत के लिए सिद्ध किया है। असल में यह पक्की-कच्ची कुछ है नहीं, यह तो ख़ाली हमारा प्रपंच है। तू सिर्फ़ परख के अलग हो रह, जब यह कुछ है नहीं तो फिर यह अलग किससे होगा, फिर पारख भूमिका पर किस तरह ठहरे और क्या मतलब ? यह तो स्वतः शुद्ध मुक्त स्वरूप आप ही है। पारख इसकी कौन होती है और क्यों पारख पर स्थिर हो, जिससे इसका कुछ काम नहीं निकलता ? हालाँकि आप ने ऊपर कहा है कि प्रथमारम्भ में स्थूलादि पाँचों देह एक पक्की देह में थे अब

पक्का क्या कहीं न्यारे बैठा है ? तो पक्की में कची और कची में पक्की एक रूप में होकर स्थूल में थी, तब मुक्ति की देह पक्की इसकी कौन थी ? यह तो सनातन इसी स्थूल देह में यों ही रहा जैसा कि अब भी मौजूद है। फिर परख के न्यारे किससे होगा ? वह न कभी इससे जुदा हुआ था और न अब होगा। इस जगह पर सतगुरु का शब्द छठी देह का, जो आरम्भ में नम्बर छः पर दर्ज है, देखिए और विचार कीजिए। पूरणदास साहब के इस कथन से मालूम होता है, कि यह रोग इसको मुक्ति में भी था, क्योंकि जब मूल में न था तो बीच में कैसे आ गया ? जिसका मूल ही नष्ट था तो वह कैसे शुद्ध होगा, ऐसा निश्चय नहीं होता। इस लिए उनका यह कहना कि अनादि पक्के तत्व मुक्ति में थे, बिलकुल असत्य है। पारख को सतगुरु ने किसी वस्तु के परखने को कहा है कि तू अपनी पारख से उसको परख के देख ले कि यह वही वस्तु है या नहीं। इसलिए सारशब्द को परखने का उपदेश किया है न कि पारख पर रहने को कहा। देखिए, यह पारख औज़ार किसी काम में लाने को दिया गया है, इस वास्ते नहीं कि वह इससे अपनी कच्ची-पक्की देह को देखा करे जिससे इसको कुछ नफ़ा न होगा। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : देह निहारत दिन गयो, माटी छुई न जाय।
इंद्री पोषत स्वाद ते, सँतिहि मैंतिहि खाय ॥
अर्थ लगावे मनमुखी, जग में साधु कहाय।
बिन देखे सतपुरुष के, लख चौरासी जाय ॥
मान बड़ाई में पड़े, मन में बहुत गुमान।
गुरू भये हैं जगत में, मरे न फेरि ठिकान ॥

ज्ञान कथैं बकि बकि मरैं, नाहक करै उपाधि ।
सतगुरु हमसे यह कही, सुमिरन करो समाधि ।।
कोटि जाप संसार में, तासे मुक्ति न होय ।
गुप्त जाप सतपुरुष का, जाने बिरला कोय ।।

सोरठा : मिटै कर्म को श्रंक, जब सत्तनामहिं ध्याइहैं ।
तब जीव होय निःशंक, सत्य बचन सतगुरु कहैं ।।
बिना नाम धरि खाय, कोई न यम से बाँचिहै ।
तिनको देखि डराय, जो जन विरही नाम के ।।
कोई एक शूरा जीव, जो ऐसी करनी करै ।
ताहि मिलेंगे पीव, कहैं कबीर पुकारि के ।।

फिर देखिए सतगुरु ने कहा है —

हंसा परख शब्द निज सारा ।
बिन परखे कोई पार न पावे, भूला यह संसारा ।।

तो यहाँ सतगुरु ने शब्द को परखने की श्राज्ञा दी है । यहाँ पर पूरणदास साहब ने इसका श्रर्थ उलटा निकाला है, कि तू पारख पर रह जा, इसी से मुक्ति हो जावेगी । सतगुरु की वाणी को पूरणदास साहब ने हरगिज नहीं समझा, नहीं तो वे पारख का प्रमाण न करते । इससे मालूम होता है कि उनको सतगुरु का परिचय न था, नहीं तो सारशब्द का लखाव कराके सतगुरु श्रापका भ्रम छुड़ा देते । यही एक बात तो सतगुरु ने सबसे श्रलग दिखाई है, जिसको कि तमाम संसार खोज कर हार गया, परन्तु बिदून सतगुरु के न मिली । तब यह सतगुरु-पदार्थ कैसे पा सकते थे? सतगुरु का कहना है : "सारशब्द जाना नहीं, धोके पहिरा भेष ।" इसमें शक नहीं कि वह सारशब्द से विमुख थे । जो सारशब्द से विमुख होगा, वह

काल के जाल से नहीं छूट सकता, और न वह गुरुमुख कहा जा सकता है। देखिए सद्‌गुरु बचन—

साखी : गुरु सीढ़ी से उतरे, शब्द विमुख जो होय।
ताको काल घसिटिहैं, राखि सकै ना कोय॥

और सतगुरु ने फ़रमाया है कि सारशब्द का भेद अगम-अपार है। उसका मर्म कोई न पावेगा। जो पावेगा वह मुझी से पावेगा —

शब्द भेद है अगम अपारा, मर्म न पावे कोई हो।
चौ० : जो पावा तेहि महीं लखावा, बाँह पकरि लोक पहुँचावा॥

तो हर एक को यह पदार्थ कैसे मिल जाता? यह गुरु पद तो बिना सतगुरु मिले किसी को नहीं मिल सकता। पूरणदास साहब तो ख़ुद ही गुरु बन बैठे, और अपनी युक्ति से कलाम नूरानी की टीका करने लगे, जो मनुष्य के इमकान यानी ताक़त के बाहर है। सतगुरु का कलाम रब्बी है, जिसका खंडन-मंडन नहीं हो सकता, और न उसका कोई अर्थ कर सकता है। तब पूरणदास साहब से यह काम कैसे पूर्ण हो सकता था? बल्कि नामुमकिन है, जो होने लायक़ नहीं। आपने बजाय सारशब्द सिद्धान्त के पारख सिद्धान्त खड़ा कर दिया और जीव को जमा बना दिया, और सतगुरु के सिद्धान्त को हटा दिया। खाली पारख पर रुक गये, और जीवों को गुमराह कर दिया, जिससे अब कोई सारशब्द का खरीदार न रहा। सब पारखी बन के जमादार बन गये, और अपने गुरु पद से महरूम यानी विमुख होकर चौरासी ही में रह गये, मुक्ति पद को नहीं पहुँचे। सारशब्द सतपुरुष का भेद व पता मुक़ाम बिना सतगुरु के बताए दूसरे को नहीं मालूम हो सकता।

देखिए सद्गुरु बचन—

साखी : शब्द हमारा आदि का, पल पल करे जो याद।
अंत फलेगी माहुली, ऊपर को सब बाद॥
शब्दहि मारा गिर पड़ा, शब्दहि छोड़ा राज।
जिन जिन शब्द विवेकिया, तिनका सरिया काज॥
शब्द बिना श्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय॥
इहईं सम्बल कर लो, आगे विषई बाट।
स्वर्ग बेसाहन सब चले, जहँ बनिया नहिं हाट॥

इसलिए हे भाइयो, सतगुरु की आज्ञानुसार अपनी सत्य मुक्ति-गति चाहते हो तो 'सारशब्द को बूझि के करो गुरू से नेह।' इसके सिवाय अगर हम पूरणदास साहब के बचनों को प्रमाण मानें, और सारशब्द का अभाव करके पारख ही को सिद्ध करें, तो हम देखते हैं कि जो औसाफ़ सारशब्द में हैं, इसमें नहीं पाये जाते जिससे कि यह पारख सबका अभाव करके मुक्ति दे दे, यानी पक्की व कच्ची दोनों का नाश हो जावे। क्योंकि आपका कथन यह है कि मुक्ति में भी इसके अनादि पक्के पाँच तत्व मौजूद थे। जब पहिले से यह रोग इसको था तो पारख अनादि रोग को नहीं हटा सकती। हाँ वह इतना ज़रूर कह सकती है कि तुझको फलाँ रोग है। वह तो अनादि तत्वों का देह इसका असली देह रहा, न कभी विदेह रहा और न विदेह में मिलेगा। फिर यह अपने पिछले स्वभाव के अनुसार पक्की-कच्ची करने लगेगा। यह सिल-सिला तो इसका तभी का है जब से यह देह में आया। सिर्फ़ पारख पर रहने से वह नहीं जा सकता। जब तक सारशब्द का

परिचय इसको न होगा तब तक सिर्फ़ पारख से छवों देह का नाश न होगा—

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, केवल पुनि विज्ञाना ।।
भये नष्ट यह हेर फेर में, कतहुँ नाहिं कल्याना ।।

इसलिए ऐ भाइयो, सतगुरु ने कहा है कि—"सारशब्द को जपै भली बिधि, तब पावै वह धामा ।" इस पारख के जपने का हुक्म नहीं है। जीव पारख करके सारशब्द सतपुरुष को जान सकता है। अब यहाँ पर हमको देखना चाहिये कि पारख असल में क्या चीज़ है, उसमें क्या गुण हैं और यह जीव उससे मुक्त हो सकता है या नहीं। देखिए यह पारख एक आला या परखने का औज़ार है, जिससे वस्तु को परख कर उसका खरा-खोटापन जाना जाता है, जैसे कसौटी से। इस तरह सारशब्द को परखने के वास्ते सतगुरु ने पारख रखा है, ताकि यह जीव उसको परख के ले ले, यानी उससे झूठ-सच का हाल इसको मालूम हो, और अपने असली घर की पहिचान हो जावे। जब तक इसे अपने असली घर की पहिचान न होगी, तब तक हरगिज वह इस घर को नहीं जा सकता है। देखिए सद्गुरु बचन—

चौपाई

आदि अक्षर को मर्म न पावे। भटक भटक फिर योनिहिं आवे ।।

इस प्रकार वह अभी आवागमन से रहित न होगा। इस पारख से सिवाय अपनी कच्ची-पक्की देह के परखने से और क्या परखेगा ? क्योंकि पूरणदास साहब ने किसी वस्तु का परिचय नहीं कराया। सिर्फ़ पारख लेने का हुक्म दिया है जिससे जीव कभी देह से अलग न हो, जो इसके बन्धन का मूल है। दूसरे पारख

गुण पारखी का है। पारखी जीव है, जो गुण-अवगुण का विचार करता है। तो पारख जीव में ठहरी फिर जीव उसमें कैसे रहेगा? फिर यह औज़ार गुण-अवगुण को जानने का हुआ न कि गुण-अवगुण को दूर करने का। तीसरे पारख वह है जिसको बूझ कहते हैं। बूझ नाम बिचार का है। बूझ किसमें होती है—समझ में और समझ समझदार में होती है जिसको ज्ञानी कहते हैं। विचार से हर तरह पाया जाता है कि पारख कोई वस्तु नहीं है। यह सब अवसाफ़ यानी गुण जीव के हैं। जीव में हर तरह की सिफ़त क़ुदरती है, जो उसमें मौजूद है। पारख जीव से भिन्न नहीं है, क्योंकि इसको जब सारशब्द की समझ आवे तब यह उसका जानने वाला कहा जा सकता है, वरना नहीं। इस हिसाब से पारख समझ का तीसरा दर्जा है। इससे जान लेना चाहिए कि पारख को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को कोई ज्ञाता अथवा जानने वाला न कहेगा, यदि वे ख़ाली पारख पर अड़े रहेंगे। सतगुरु ने साफ़-साफ़ और पुकार-पुकार कर अपनी बानी में फ़र्माया है—'समुझि बूझि न्यारा होय रहिए।' पारख में गुण-अवगुण दूर करने का गुण नहीं है, और सारशब्द में यह अवसाफ़ है कि वह गुण-अवगुण को जला कर जीव को पाक-साफ़ कर के ले लेता है।

साखी : चुम्बक लोहा प्रीति ज्यों, लोहा लेत उठाय।
ऐसा शब्द कबीर का, काल से लेत छोड़ाय॥

तो पारख शब्द की तुलना में हल्की और तुच्छ ठहरती है, और शब्द भारी पद ठहरता है। शब्द से पारख हुई और पारख से शब्द जाना गया, इसलिए शब्द ही हर तरह बड़ा ठहरता है। तो फिर हम उस शब्द को क्यों न ग्रहण करें जो सबसे भारी और

भरपूर प्रसिद्ध है, जिसकी हिदायत हमें सद्गुरु ने दी है। सार-शब्द से तो परिचय नहीं हुआ और 'पारख-पारख' चिल्ला उठे। इसलिए उस पारख को लेकर क्या होगा जो हमारा गुण-अवगुण नहीं दूर कर सकती ? गुण-अवगुण से मुराद यहाँ उसी कच्ची-पक्की से है। इन्सान को हमेशा उसी को हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए, जो सबसे भारी पदार्थ हो, न कि हलकी वस्तु को। बक़ौल सतगुरु हर तरह पर सारशब्द का ही हासिल करना वाजिब है, न कि पारख का। देखिए सतगुरु का शब्द—

हंसा परख शब्द निज सारा।
बिन परखे कोई पार न पावै, भूला यह संसारा॥
राम रतन प्रहलाद पारखी, पारख दृढ़ उन कीन्हा।
इन्द्रासन सुख आसन लीन्हा, सार वस्तु नहिं चीन्हा॥
शुकदेव परम पद परसा, आतम लीन न माया।
परमातम अजपा जप लीन्हा, न्यारा भेद न पाया॥
सब संतन मिलि बानी छाना, राम भाग दुइ कीन्हा।
रा अक्षर पारख कर लीन्हा, मा माया तज दीन्हा॥
सुनो जौहरी जौहर खोटा, खरा खोट नहिं बूझा।
शिव गोरख लौं को बड़ योगी, तिनहू को नहिं सूझा॥
कहैं कबीर हम सबकी देखा, सबहि लाभ को धाया।
जेहि गुरु मिलि पारख कर दीनो, ठीक ठौर तिन पाया॥

देखिए इस शब्द में कैसा साफ़-साफ़ पारख से सारशब्द को लेने के लिए फ़र्माया है। जिसको गुरु पारख कर देगा वही ठीक ठौर पावेगा, तो पारख से ठीक ठौर लेने को कहा है कि 'हंसा, परख शब्द निज सारा' अर्थात् जो तेरा निज सारशब्द है, उसको

परख कर ले ले। सारशब्द से पारख को लेने के लिए उन्होंने नहीं कहा है। बसबब इसके कि पूरा सतगुरु तो आपको मिला नहीं, आपकी बुद्धि यहाँ उलट गई। इस वजह से इसका मतलब भी उलटा निकाल लिया। सारशब्द का नाम आपने निर्णय रक्खा है और पारख को मूल करार दिया है। बल्कि अपने ग्रन्थ 'निर्णय-सार' में आपने साफ़-साफ़ लिखा है कि "सारशब्द निर्णय को नाम"। सतगुरु के कलाम का अर्थ जैसा आपने किया है, वैसा तो ज़ाहिर हो गया कि नादान से नादान भी ऐसे अर्थ न करेगा, जिससे कि वह अपने सतगुरु के सिद्धान्त को तोड़-मरोड़ कर अपना नया सिद्धान्त क़ायम कर दे और सतगुरु का द्रोही हो जाय। देखिए प्रह्लाद जी ने भी पारख ही को दृढ़ किया था, फिर वह क्यों सारवस्तु से महरूम रहे? देखिए सतगुरु बचन—

राम रतन प्रहलाद पारखी, पारख उन दृढ़ कीन्हा।
इन्द्रासन सुख आसन लीन्हा, सार वस्तु नहिं चीन्हा॥

तब पूरणदास साहेब का सिद्धान्त कैसे माना जावे? यह सरासर उनकी ग़लती है। हर सेवक को हर हालत में अपने सतगुरु के सिद्धांत को क़ायम रखना लाज़िम है। बहुत बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि पूरण साहब पारख के मूजिद कैसे हुए और क्यों कर इसे सिद्ध किया? अफ़सोस की बात है कि उनको ख़ुद पारख न हुई कि मेरे इस सिद्धांत से सतगुरु का सिद्धांत, जिससे हमको मुक्ति मिलती है, छूटा जाता है। यह आपकी समझ का क़सूर है, और क्या कहा जावे? जौहरी लोग, जो सारशब्द जानने वाले हैं, या होंगे, वह आपकी इस अक़्ल-मंदी को समझ जावेंगे कि बजाय सारशब्द के पारख सिद्धांत कहाँ

तक सही है और यह बात तो अच्छी तरह पर मालूम होगी कि वह खुद बजाय मुक्त होने के पारख पर बैठ के अब कच्ची-पक्की किया करते होंगे। अफ़सोस है कि उनके पैरोकार याने उनके हुक्म पर चलने वाले भी इसी रोग में पड़ कर कच्ची-पक्की करते होंगे, और अब जो हैं वे आगे करेंगे। इससे नजात यानी मुक्ति तो वे पावेंगे नहीं। वह भी बिचारे क्या करें ?

साखी : जैसा जाको गुरु मिला, ताकी तैसी बुद्धि।

चौ० : गुरु रोगी, रोगी भए चेला। एकै रोग दोऊ घट मेला ॥
अंध अंध को राह बतावे। कहु केहि भाँति मंज़िल पहुँचावे ॥

इसके सिवाय पहले तो आपने यह फ़र्माया कि जब यह मुक्ति में था तब कोई दूसरा विजाती बन्धन न था, और सहज ही मुक्त था। बाद में फिर पाँच तत्व पक्के अनादि विजाती उन्होंने उनके साथ खड़े कर दिये, जिनमें उल्टे वह अपने आपको फंद में लाये। असल बात यह है कि आपको ठीक-ठीक मुक्ति-स्थान की खबर न हुई; सिर्फ़ अपने अनुमान से वेदान्त के बल पर ऐसा सिद्धांत खड़ा करके सबको गुमराह किया और उसी में ख़ुद गुम हो गये। अगर जीव मुक्ति-स्थान को छोड़ कर अपने इस पक्के पंच तत्व में न आता, तो कभी पकड़ न जाता और बेशक मुक्त स्वरूप रहता। यह कच्ची-पक्की देह तो उसकी मुक्ति का बंधन हुई, अब जब तक अपने असली स्थान को वह नहीं पाता, इस बंधन से नहीं छूट सकता—

सोरठा : इन्द्री कर्म सो देह, अरसठ शून्य सो बेह है।
मरे धरे फिर देह, बन्धन मुक्ति याही ह्वै ॥

फिर जब बक़ौल आपके अनादि भाव इस जीव में विवेक,

विचार वग़ैरह सब सामान मौजूद था तब इसने क्यों नहीं उससे काम लिया, काहे को बिना समझे-बूझे और लोगों के जाल में फँस गया और मुक्ति में बाधा लगायी ? जब यह मुक्त था याने अपने सारशब्द सत्पुरुष में था, तब यह कुछ सामान इसके पास न था; यह सामान तो निरंजन ने इसकी छठी देह में बना रक्खा था ताकि यह इसमें आकर उसके फंद में आवे जिससे इसको वह निकलने न दे। वैसा ही हुआ जिसको पूरणदास साहब मुक्ति की देह बताते हैं, और पक्की से कच्ची करते हैं। आपकी समझ वहाँ तक पहुँची नहीं। इसी छठी देह तक गये, फिर लौट कर पारख पर गिर पड़े और सारशब्द जैसी अमोल वस्तु को छोड़ कर, पारख को ही मूल बना लिया। यह न समझ में आया कि पारख हमको किस वस्तु को परखने के लिए सतगुरु ने बताया है। सतगुरु ने केवल पारख पर रहने को नहीं कहा जिस पर यह हरगिज़ नहीं रह सकता, क्योंकि यह परखा के अलग हो जाती है, ठहरती नहीं।

अब मुझे थोड़ा सा आपके ग्रन्थ 'निर्णयसार' के बारे में लिखना है जिसमें पूरणदास साहब ने बहुत ज़ोर के साथ, महज़ अपना सिद्धांत क़ायम करने के वास्ते, सारशब्द का खंडन करके पारख को मूल क़रार दिया है। वेदान्त का असल सिद्धांत लेकर उन्होंने जीव को जमा माना है, व लिखा है कि सारशब्द कोई वस्तु नहीं है। देखिए 'निर्णयसार'—

चौपाई : सारशब्द निर्णय का नामा।

पूरणदास साहब को सारशब्द के अर्थ ठीक नहीं मिले और न यह बिना सतगुरु के मिल सकता है। पहिले देखिए सारशब्द सतगुरु ने किसे कहा है—

शब्द स्वरूपी साहेब, सब माँहि समाना।
केवल ज्ञान कबीर का, बिरले जन जाना।

देखिए मदन साहब का बचन—

शब्द सरूप लखो अविनाशी, बनै बात तब तेरो ।।

देखिए क़ौल हाफ़िज़ – "यार दर परदः निहा नस्तन आयद बनज़र हस्त दरसकल कि बाँगेजरसे मी आयद" यानी मालिक परदे में छिपा बैठा है, देख नहीं पड़ता, वह कैसा है जैसे घंटे में आवाज़ बजती है। देखिए कौल बूअली क़लंदर—'आँनिदा आवाज हैवानी बूअद। आनिदा आवाज़ हक़्क़ानी बूअद।' यानी यह आवाज़ जो जीव से होती है, वह हैवानी है; और वह आवाज़ जो आपसे आप होती है, वह परमात्मा की है। यानी परमात्मा शब्द रूप है और यह बात क़ुतुब हाय आसमानी भी कह रही है कि मालिक शब्द रूप है इसको किसी ने पहिचाना या जाना नहीं, इसी से यह फ़र्क़ हो गया। किसी ने किसी शब्द को माना और किसी ने किसी को। जो अक्षर ब्रह्म शब्द है इसमें सारशब्द की पहिचान व उसका लखाव व मुक़ाम बिना सतगुरु से मिले कोई नहीं पा सकता। इसलिए कहा है—

चौ० : गुरु पूरा हो सोई लखावे। जहाँ को हंस तहाँ पहुँचावे ।।
चौ० : बिन गुरु कोई भेद न पावे। धरती से आकाश लों धावे ।।

इसको सभी महात्माओं ने कहा है कि जो इसका भेदी हो और उसको सतगुरु मिलें तब उसको जाना वो माना जा सकता है। अब देखिए सारशब्द का अर्थ क्या है। सार नाम सच का है, जिसको सत्य कहते हैं और शब्द नाम आवाज़ का है। तो सार-शब्द का अर्थ है : असली सच्ची आवाज जिसकी शिनाख्त बे सत-

गुरु नहीं हो सकती, और यह वस्तु गुप्त है। इसी को अगम-अगोचर, हाज़िर-नाज़िर हर जगह मौजूद होना कहा गया है। पूरणदास साहब ने प्रबल बुद्धि से बे सतगुरु के सारशब्द का अर्थ यह निकाला कि सार नाम सत्य का और शब्द नाम वचन का है। वचन में सार-असार दोनों शामिल हैं। इसलिए सार बचन उन्होंने उसको माना है जिस बचन से निर्णय हो जावे; और इनका फ़ैसला करने वाला जीव है। इसलिए जीव ही जमा है और जो वचन उससे निकलते हैं यानी जो बातें वह करता है, वही खर्च है और सारशब्द कोई वस्तु नहीं है, और न मालिक शब्द रूप हो सकता है। शब्द जीव की कृपा है, इसलिए आपने शब्द का खंडन करके पारख ही सिद्ध किया है। उन्होंने इस सारशब्द को पारख में निर्णय सार करके मिला दिया है। देखिए उन्होंने सारशब्द का अर्थ निर्णय किया और निर्णय का अर्थ, बूझ, विचार हुआ और बूझ, विचार का अर्थ पारख हुआ तो निर्णय व पारख में फ़र्क़ क्या हुआ? कुछ नहीं। आपका मतलब तो पारख से था सो निकल आया, फ़रागत मिल गई। अब यहाँ फ़र्माइए कि निर्णय से निर्णय को लेने में क्या फल होगा? या नमक से नमक खाने में क्या स्वाद होगा? यह दोनों तो एक ही वस्तु ठहरती हैं, फिर इससे फल क्या मिलता है? कुछ नहीं। तो फिर फ़ायदा क्या हुआ? कुछ नहीं। अरे वाह जी! आपकी पारख तो अच्छी वस्तु मिली कि जिससे कुछ नफ़ा न हुआ! जैसा किसी ने कहा है कि 'न खुदा ही मिला, न विसाले सनम'। इधर के हुए न उधर के। दोनों तरफ़ से गए पांड़े, न हेलुवा न माड़े। वाह वाह भाई! सारशब्द का अर्थ आपने ख़ूब कर लिया। मनमानी उलट-पलट के पारख ही

हाथ लगी, और सतगुरु ने पुकार-पुकार कर हर जगह सारशब्द से मिलने की. हिदायत याने उपदेश किया है। मगर आप यहाँ फ़र्माते हैं कि मैं तो पारख ही लूँगा, क्योंकि सतगुरु ने फ़र्माया हैं कि—बिन परखे कोई पार न पावे, भूला यह संसारा। यह नहीं समझे कि—सारशब्द कछु शब्द है सौदा कर भाई। आप का तो यह सिद्धांत हुआ कि मुक्ति हो जाने से फिर कोई जिसमानी लज्ज़त बाकी नहीं रहती इसलिए दवामी यानी सदा रुहानी यानी जीव को झगड़े से बचाना चाहिए और रूहानी आर्ज़ा ठीक नहीं, जिस्मानी अच्छा है। जब उसको पारख की घूंटी दी गई तब तुरंत इस जिस्म को छोड़ कर वह दूसरा नया जिस्म याने देह धर लेगा, इसलिए सारशब्द से जीवों को हटाना चाहिए और पारख की लगाम चढ़ा कर रोकना चाहिए, ताकि अपने मुक्ति-स्थान को न प्राप्त हो। इससे तो यह कहना लाज़िम आया कि आपने बजाय दोस्ती के सतगुरु से दुश्मनी पैदा की। वह तो सीधी राह पर लाने की आज्ञा देते हैं, आप गुमराह याने भट-काने की फ़िक्र करते हैं। वे हर आफ़त से बचाने की फ़िक्र करते हैं, और आप बंधन में डालते हैं। सेवकाई का धर्म ख़ूब निबाहते हैं कि गुरु कहें आम तो आप कहें इमली। देखिए प्रह्लाद जी ने भी सारशब्द को छोड़ कर 'र—म' की पारख दृढ़ की थी, जिससे वह भी सत्य गति से महरूम रहे। देखिए सतगुरु बचन—

राम रतन प्रहलाद पारखी, पारख दृढ़ उन कीन्हा।
इन्द्रासन सुख आसन लीन्हा, सारशब्द नहीं चीन्हा॥

प्रह्लाद जी ने तो सारवस्तु को परखने में धोखा खाया और अक्षर शब्द को राम जान लिया जिससे मुक्ति न मिली, सिर्फ़

इन्द्रासन का भोग मिला। यहाँ पूरणदास साहब ने तो केवल पारख पर रहने को बताया है, किसी को परखने को नहीं कहा है। प्रह्लाद ने तो कुछ वस्तु परख कर इन्द्रासन का सुख पाया। केवल पारख पर रहने से तो कोई लाभ नहीं देख पड़ता, लेकिन इन महात्माओं की बदौलत यह पारख हमारे गुरुभाइयों के हृदय में ऐसी घुसी है कि किसी प्रकार से नहीं निकलती। देखिए सतगुरु वचन—

सिद्धिन में सब दुनियाँ भूली, करामात को माने।
सारशब्द जो निर्विकार है, तहाँ न सिद्ध रहाने॥
सारशब्द में एकै सिद्धी, मुक्ति करै तहँ सेवा।
सारशब्द का खेल निराला, जानै सतगुरु भेवा॥

देखा भाई! मुक्तिदाता सारशब्द है, पारख मुक्ति का दाता नहीं है। ये तमाम झगड़े मुक्ति के वास्ते हैं, जब इसकी नजात न हुई तो सब बेकार है। इसलिए तुम मुक्ति पद को खोजो। केवल पारख के भरोसे मत रहो। देखो सतगुरु ने फ़र्माया है कि—

जेहि गुरु मिलि पारख कर दीन्हों, ठीक ठौर तिन पाया।

तुम सतगुरु से पहिचान करके ठीक ठौर कर लो, यहाँ हस्ब क़ौल जनाब पूरणदास साहब तुमको रुकना पड़ गया, अब ठीक ठौर कौन करे। पारख से तुमको सारशब्द ही लेना बाक़ी रह गया था, पर तुम लौट पड़े—

क़िस्मत को देखिए कि कहाँ टूटी जा कमंद।
दो चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया॥

देखो भाइयो, निरंजन ने कैसा फंद लगाया कि अब निकलने नहीं देता। यह जीव दही के धोके कपास खा गया। करना कुछ था, हो गया कुछ और। कहीं ठौर न मिला। इसलिए मेरी सबसे

यही अर्ज़ है कि सारशब्द को खोज कर जन्म-मरण का दुःख छुड़ावें, नहीं तो निरंजन काल से छुटकारा न होगा और फिर पछताना पड़ेगा—

साखी : काल खड़ा सिर ऊपरे, तें चेत बिराने मीत।
जाको घर है गैल में, सो कस सोवै निचिन्त ॥
कल काठी कालू घुनो, यतन यतन घुन खाय।
काया मध्ये काल बसत है, मर्म न कोऊ पाय ॥

'फिर पछताने से क्या होता है, जब चिड़िया चुग गई खेत' या 'अबहीं चेत सबेरा'। मैं बार-बार आप सब साहबों से कहता हूँ कि इस पारख सिद्धांत से भागिए, और सतगुरु के सारशब्द को हासिल करके बेखटके मालिक के दर्बार में हाजिर होकर निर्भय हो जाइए, और अखंड आनंद फल भोगिए, चौरासी के श्रम से बचिए। सारशब्द ही सबका मूल है, पारख नहीं। सार-शब्द बिहंगम-मार्ग है, और पारख पिपीलिका-मार्ग है। अब इस मौक़े पर एक शब्द सतगुरु का पेश करता हूँ जिसके देखने से हमारे गुरुभाइयों को अच्छी तरह मालूम होगा कि जब यह जीव शरीर छोड़ता है तो बिना सतगुरु के सारशब्द पाए हुए चौरासी की किस योनि में जाता है—

प्रश्न गोरखनाथ—

अवधू कहो जीव को निस्तारा।
एहि काया में एक दस द्वारा, तेहि माहैं एक न्यारा।
कौन द्वारे प्रान निकसे, ताको करो बिचारा ॥
तुम तो साहब सब घट व्यापक, तुमरो सकल पसारा।
इतनी मोहिं मा थाह नहीं है, तुमहीं करहु बिचारा ॥

सतगुरु बचन—

गुदा द्वारे प्रान निकसे, नर्क खानी जाय।
तुरत देह गोजवा का पावे, नर्क में ठहराय॥
नाभि द्वारे प्राण निकसे, जल खानी पाय।
तुरत देह मछली का पावे, जल सूखे पछिताय॥
मुख द्वारे प्राण निकसे, अन्न ढेरी जाय।
तुरत देह सो घुन का पावे, अन्ने में ठहराय॥
स्वाँस द्वारे प्राण निकसे, गर्भ खानी जाय।
जहाँ देखो गर्भ सहित, तहाँ जाय समाय॥
चक्षु द्वारे प्रान निकसे, अंड खानी जाय।
तुरत देह पक्षी की पावे, स्वर्ग में मँड़राय॥
श्रवण द्वारे प्रान निकसे, भूत खानी जाय।
देह धरि वह बिदेह दरसे, रूखे में लपटाय॥
रंभ द्वारे प्रान निकसे, राज खानी जाय।
कछुक दिन तक राज भोगे, फिर पाछे पछताय॥
सुरति द्वारे प्राण निकसे, सत्यलोकहिं जाय।
शब्द निरखत जाय लोकहिं, कहैं कबीर बुझाय॥

देखिए, इस शब्द में सतगुरु ने फ़र्माया है कि सारशब्द को सत्यलोक व शब्दलोक मानना चाहिए। जो जीव सुरति-द्वार से हस्ब हिदायत सतगुरु प्राण छोड़ कर शब्द निरखता हुआ जावेगा वह सत्यलोक याने अपने मुक्ति-स्थान पर पहुँचेगा। वरना और किसी तरह नहीं जा सकता। तो फिर फ़र्माइए कि पूरणदास साहेब का शब्द का अभाव करना सही है या सतगुरु का उपदेश सत्य है? सतगुरु ने हर मौक़े पर जहाँ मुक्ति का इशारा फ़र्माया है, वहाँ

सारशब्द को ही सिद्ध किया है न कि पारख को। मुझको सतगुरु के तमाम कलाम में बजुज़ सारशब्द के पारख मुक्ति का दाता कहीं न मिला ! मालूम नहीं, पारख को मुक्ति का दाता कहाँ से सिद्ध किया गया जिसमें यह गुण ही नहीं पाया जाता। जब तक यह जीव उस सारशब्द को नहीं पाता, तब तक भौसागर ही में रहता है। जिस वक्त वह सारशब्द को पा जावेगा, संसार-सागर से निःशंक होकर अपने अमर लोक को चला जावेगा, और इसका संशय छूट जावेगा—

चौ० : शब्द लोक दीप है भाई। जिन चीन्हा ताको संशय जाई ।।

लोक नाम मुक़ाम का है, व दीप नाम मुल्क का है; लोक व दीप एक ही चीज़ का नाम है। जहाँ पर सारशब्द सतपुरुष है उस मुक़ाम को सत्यलोकादिक कहा गया है, जो तीनों लोक चौदहों भुवन से बाहर है। तीन लोक निरंजन के हैं, जिनमें सब जीव फँसकर चौरासी भोग रहे हैं और वह चौथा लोक साहब का है जिसको अमर दीपादि कहा गया है।

अब दूसरी साखी की टीका देखिए—आपने शब्द से कैसा विरोध करके सतगुरु के सिद्धांत को तोड़ा है। देखिए साखी बीजक—

शब्द हमारा तू शब्द का, सुनि मत जाव सरकि।
जो चाहो निज तत्व को, तो शब्दै लेहु परखि ।।

टीका पूरणदास साहब—"माया मुख शब्द कहिए, आवाज़ कहिए, निराकार कहिए, निरक्षर कहिए, ब्रह्म कहिए, सो ब्रह्म से जगत की उत्पति हुई। शब्द निःतत्व है, जीव तो शब्द का माया जीव को उपदेश करती है कि तू ब्रह्म अंश है। कौनी तरह

पर, सुन। परन्तु सुन के धोके में सरक मत जाना। मैं तुम्हें परखने को कहता हूँ जो तुम्हारे को पारख पद मिले, ऐसा गुरु कहते हैं गुरुमुख 'जो चाहो निज तत्व को शब्दै लेहु परख' शब्द का आकार सोहं, आवाज का आकार ओंकार, निराकार का आकार अनहद, अनहद कहिए—रा-रा, निरक्षर का आकार आकाशवत समाधि अथवा स्वाँस सो निरक्षर से अक्षर कूटस्थ आदि सब जीव पैदा हुए, ऐसा सब समर्थन और वेद का प्रमाण है। वो स्वाँसा से सोहं ऊँ रँ ये तीन शब्द पैदा भए। अक्षर रूपी यह योगियों का प्रमाण। तब आदि शब्द निरक्षर ताते शब्द अक्षर रूपी पैदा हुए तो यह निरक्षर जैसे मिट्टी का विकार मिट्टी और जल का विकार जल तद्-वत्। यह निश्चय जीव को कैसे हुआ ? सो सुनो ! प्रथमारम्भ में खड़ा भया कि मेरा कर्ता कोई दूसरा है तब अस्ति ब्रह्म अति श्रुति ऐसी बानी बोला। ताही से वेद पैदा भए और कर्ता की खोज बाहर करने लगे तब कर्म-कांड, उपासना-कांड ये दोनों कांड वेद बना; परन्तु संशय कुछ छूटी नहीं तब घट में सुरति लगाई और खोज किया तब स्वाँस में सोहं शब्द मालूम हुआ। नाभी से स्वाँस सकार लेकर उठाया और त्रिकुटी के ऊर्ध कुम्भ पास आया तब हँ शब्द मालूम हुआ सो 'सोहं सोहं' में सुरति लगी। तब 'सोहं हंसा' लोम विलोम चार अक्षर ध्यान में आए और लक्ष तीर हुआ तब स्वाँस त्रिकुटी से कंठ में आई और तेजस अभिमान तब खड़ा हुआ ताते स्वप्न अवस्था हुई। तब नाना प्रकार के पशु-पक्षी पैदा भए। हिरण्यगर्भ का अनुभव लेके स्वाँस हृदय में आई सो वहाँ से प्राज्ञ अभिमान खड़ा हुआ और तैजस लै हो गया तब स्थावर खानि अनेक प्रकार के अंकूरादि पैदा भए और

गाफिली भई व गाढ़ निद्रा लगी। अव्याकृत का अनुभव लेके आगे नाभि स्थान में स्वाँस लै भई और प्रत्यगात्मा अभिमान सहित चिन्मयवति होकर तुरिया अवस्था भई, तब अष्ट सिद्धि नव निद्धि आदि सतगुण ये ईश्वर उत्पन्न भया और मूल माया का अनुभव लेकर निरंजन अभिमान पैदा हुआ तब निर्विकल्प समाधि भई और तुरियातीत अवस्था भावातीत कलातीत भांवर गुफा में स्वाँस लै भया। सो संपूर्णानंद स्वरूप को अनुभव हुआ तब समाधि खुली, ब्रह्म निश्चय हुआ तब 'सोऽहं ब्रह्मास्मि' वाक्य सिद्ध हुआ। इस प्रकार से सोहं शब्द बनाया। फिर पाँच जगा की पाँच मात्रा लेके ऊँकार शब्द बनाया, तब श्रवण द्वारे ब्रह्मांड में लक्ष लगाया तो 'रा रा' शब्द मालूम भया। तहाँ से लय योग बनाया। इस प्रकार से तीन शब्द सोहं वोहं ररंकार निर्वान भया तब योग कांड वेद में बना कर तीनों शब्द का अर्थ बिचारने लगा। सोई ज्ञान कांड, इस प्रकार से सम्पूर्ण चारों वेद पैदा भए। सोहं का अर्थ सो कोई ब्रह्म है सो मैं हूँ, व ऊँ का अर्थ कि कोई ब्रह्म है सो मैं हूँ, ररंकार का अर्थ कि सकल प्रकाश और तेज मैं हूँ, इस प्रकार से एक अद्वैत चैतन्य ब्रह्म ऐसा जो शब्द है सोई हमारा स्वरूप है, ऐसी मानन्दी जीव को हुई; सो संसार में ईश्वर और गुरु कहलाया और दूसरे जीव को उपदेश किया कि तू ईश्वर का अंश है और शब्द तेरा मालिक है, शब्द तो ही हमारा उपदेश है और तू शब्द का चेला है, ऐसा उपदेश जगत में गुरुआ लोग करते हैं सो तू सुन के सरक मत, भर्म मत, ऐसा गुण गुरु जीव को समझाते हैं कि हे जीव, सोहं ओहं ररंकार चार वेद छवो शास्त्र संपूर्ण जीव की कल्पना ओ जेतिक मानंदी द्वैत अद्वैत निर्विकल्प सविकल्प सो

सब जीव का अनुमान अध्यास बंधन है, कुछ निज स्वरूप नहीं, तू निज स्वरूप चाहता है तो भास अध्यास कछु मत माने। शब्द तेरे ही से होता है, सो तू बंधन में मत पड़े। शब्द को परख ले जासे शब्द परखने में आवे सो तेरा निज स्वरूप यह अर्थ।"

टीका-खंडन–प्रथम यह जानना उचित है कि माया का अर्थ किस अक्षर और पद से पैदा किया गया ? दूसरे माया यहाँ पर कहाँ से प्रकट होकर जीवों को उपदेश करने लगी कि तू ब्रह्मांश है और उसके साथ गुरु भी उसके मुखालिफ़ उपदेश करने को पहुँच गए ? एक वक्त में यह दो उपदेशक एक दूसरे के विरुद्ध कैसे और कहाँ से खड़े हो गए ? जीव स्वतः शुद्ध को बहकाने लगे इसका कोई सबूत नहीं दिया गया। इसलिए यह आपका अनुमान व कल्पना मालूम होती है। इससे तो आप भी बरी न ठहरे, क्योंकि आपका क़ौल है कि प्रथमारम्भ में जीव ही था, कोई दूसरा न था, केवल यह अकेला था। तब माया व गुरु कहाँ से आ मौजूद हुए और जीव को उपदेश करने लगे ? इससे तो मालूम होता है कि जीव अकेला न था, बल्कि इसके दो उपदेशक भी पहले से इसके साथ मौजूद थे। फिर आपने फ़र्माया है कि 'जीव को गुरु समझाता है कि हे जीव, सोहं वोहं ररंकार व चारो वेद, छवो शास्त्र सम्पूर्ण तेरी कल्पना और जेतिक मानन्दी द्वैत-अद्वैत निर्विकल्प-सविकल्प सो सब जीव का अनुमान है; तू निज स्वरूप को चाहता है तो भास-अध्यास कछु मत माने।' क्या जब यह जीव प्रथमारंभ में आपही आप मौजूद था तब गुरु व माया के अलावा यह वेद वग़ैरह भी थे और उसकी मानन्दी से गुरु हटाता था कि भास-अध्यास मत

मान ? अगर यह बरात की बरात इसके साथ थी तब यह कहना कि 'जब यह अकेला था और कोई न था' ग़लत ठहरता है। उल्टे इसके साथ तो एक जमात मालूम होती है, यह अकेला नहीं ठहरता। फिर जबकि इसमें कल्पना व अनुमान दोनों स्वाभाविक थे तब वह उनको किसी के उपदेश से कैसे त्याग सकता है ? समय-समय पर यह अपनी कल्पना व अनुमान को खड़ा करता रहेगा, पारख इसको कैसे रोकेगी ? और जब इसका निज स्वरूप पारख है तब इसमें कल्पना व अनुमान कैसे हुआ ? क्योंकि यह तो निर्विकार था, इसमें विकार कैसे आये ? और जब सब सामान इसमें मौजूद था तो अब केवल पारख पर कैसे स्थिर होगा कि जो नामुमकिन है। इसलिए यह सिद्धांत-टीका नहीं है। जीव का स्वभाव जीव के साथ हमेशा रहा है और रहेगा, उसको कोई नहीं रोक सकता। जैसे दरिया के बहाव व लहर को कोई नहीं रोक सकता वैसे ही जीव की तरंग भी नहीं रुक सकती। सतगुरु ने पाँच शब्द ब्रह्म शब्द बताए हैं; आप तीन ही क़ायम करते हैं, और उनको जीव से होना ख़्याल करके जीव की कृपा बताते हैं, जो हरगिज़ जीव से नहीं होते बल्कि बक़ौल सतगुरु यह सब शब्द निरंजन व आद्या से जीव की गिरफ़्तारी याने फँसाने के हेतु बनाए गए ताकि जीव उनको अपना असली जगह का शब्द यानी मालिक जान कर फँसा रहे, निकल न सके और अपने निज स्वरूप सारशब्द में न जा सके; जिसको पूरणदास साहब भी निःतत्व फ़र्माते हैं, नहीं तो यह सब उसका करतब बेकार हो जाता। अब सबसे पहले सतगुरु की साखी को देखिए; उसके बाद अक्षर-अक्षर के अर्थ करके निरुवार कीजिए।

अगर यही अर्थ, जो आपने किया है, सिद्ध हो तो कुछ मुज़ायक़ा याने हर्ज नहीं है, और जो आपने जीवों को महज धोका देने की गर्ज से यह खयाली हलुआ पकाया है, तो इससे हर्गिज मुंह मीठा नहीं हो सकता और न कोई जौहरी इसे क़बूल करेगा, परख कर खरा खोटा अलग कर देगा। अगर किसी अक्षर से जगत की उत्पति यानी खिल्कत की पैदाइश व रचना की व्यवस्था या योग क्रिया वग़ैरह खड़ी होती हो तो बेशक आपकी टीका क़ाबिल क़बूल है; अगर ऐसा नहीं है, तो ग़लत है। देखिए साखी—

शब्द हमारा, तू शब्द का, सुनि मत जाहु सरकि।
जो चाहो निज तत्व को, शब्दै लेहु परखि॥

सतगुरु फ़र्माते हैं कि ऐ जीव शब्द रूप हम हैं याने वह सारशब्द हमारा है और तू उसी शब्द से आया है। हम तुम दोनों एक जिन्स व एक रूप व एक मुक़ाम के हैं। मुक़ाम दोनों का सारशब्द ही है, जिसके लिए उपदेश हुआ है। तू मेरे इस उपदेश को सुन कर न भाग, खड़ा होकर वहुत तवज्जह से दिल लगा कर सुन। जो तू निज स्वरूप को चाहता है तो, हस्ब हिदायत मेरे सारशब्द को परख कर ले ले और निरंजन के देश से अमर लोक चला जा; फिर तू चौरासी से छूट जावेगा। बक़ौल सतगुरु—

तेरो रोकन हारा कौन, मगन होय आव चली।
पाँच पचीस करो बस अपने, कर गहि ज्ञान छड़ी।
अगल बगल दो धक्का मारो, होइ निःशंक चली॥

परखने का गुण तुझमें मौजूद है, नहीं तो तू नष्ट हुआ व होगा, फिर पछतायेगा। अब फ़र्माइए कि परखने का हुक्म

सतगुरु ने शब्द का दिया था कि पारख के लेने का। अब देखिए सतगुरु का मतलब तो इस साखी से कुछ और था, लेकिन आपने इसका अर्थ वेदान्त व विद्या के अभिमान से कुछ का कुछ करके ग़लत सिद्धांत खड़ा कर दिया, जिससे जीव में गुमराही आ गई और वह सतगुरु के सिद्धांत के विरुद्ध हो गया। इससे साबित होता है कि आपको सतगुरु का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, नहीं तो ऐसा न बहकते कि जिससे शब्द परखते हैं सो तेरा निज स्वरूप है। तो जब यह पारख रूप खुद ही है तो फिर सतगुरु ने इसको कौन पारख दी और क्या परखने को कहा, और वे कैसे फ़र्माते हैं कि इसमें पारख न थी ? यह बात तो बाख़ूबी ज़ाहिर होती है कि पारख गुण है पारखी का। पारखी यह जीव है जो परखता है। आपके कथन से जीव पारख रूप नहीं ठहरता, हालाँकि जो औसाफ़ याने सिफ़तें जीव में हैं वह पारख में नहीं घटतीं। देखिए पारख में सिर्फ़ एक गुण परखने का है, जीव में अनेक गुण पाये जाते हैं, जैसे कि इसमें विवेक, विचार, अज्ञान और ज्ञान भी है। वह सबका साक्षी भी है और सबका जानने वाला भी है, और पारखी भी है और उसमें फ़हमी नाफ़हमी भी है। तो क्या इस पारख से यह सिद्ध होता है कि जीव केवल पारख रूप है ? जहाँ यह सब गुणों से गुणागर है वहाँ यह एक गुण पारख का भी मौजूद है। जब यह गुण है जीव का तब यह जीव अपने एक गुण पर स्थित होकर कैसे मुक्त हो सकता है, और उसका वह गुण उसको क्योंकर मुक्ति दे सकता है ? अतः ऐसा निश्चय नहीं हो सकता; यह उनकी भूल और नाफ़हमी है। इस साखी की टीका में आपने बजाय गुरुमुख के अपना सिद्धांत ठीक करने के वास्ते मायामुख

कर दिया, इसी मौके पर आपकी समझ उलट गई। बक़ौल किसी के अच्छे को बुरा, बुरा को अच्छा समझे। यानी उस शब्द रूप परमात्मा को जिसको सतगुरु ने सारशब्द कहा है, वह शब्द समझ लिया है जो जीव से होता है या जीव की कृपा से है। इन शब्दों को सतगुरु ने हर्गिज सारशब्द नहीं फ़र्माया है, बल्कि उनका खंडन सतगुरु ने खुद ही कर दिया है। तो फिर इसमें आपकी क्या बड़ाई दी जावे ? देखिए सतगुरु बचन--

चौपाई

वोहं सोहं रारंकारा। ताके आगे नाम भंडारा ॥
सार नाम गहि उतरो पारा। बार-बार मैं यही पुकारा ॥
निःअक्षर है मूल सबहि का। पावे कार्य होइ तब जीव का ॥
नहीं तो और अनेक उपावा। कर कर थाके लोक नहिं आवा ॥
यही नाम बिनु मुक्ति न पावे। जो कोई कोटि यतन करि धावैं ॥
सो है नाम हमारे पासा। पावे सत्यलोक होइ बासा ॥
बिरला हंसा पावे भाई। सो मैं तुमको दीन्ह चिन्हाई ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। सारनाम बिन हंस निराशा ॥

साखी : काया काल पसार है, सार नाम है दूर।
बिरला हंसा पावहीं, देख ज्ञान भरपूर ॥
सारशब्द है शिखर पर, मूल ठिकाना सोय।
सतगुरु बिन ना पावे, लाख कथैं जो कोय ॥

चौपाई

शब्द शब्द सब सृष्टि बखानैं। शब्द भेद कोई नहिं जानैं ॥
ज्ञानी गुणी कवीश्वर पंडित। सबहिन कीन्ह शब्द को मुंडित ॥
शब्द सुरति आवे संसारा। आपे समरथ रहे नियारा ॥

शब्द अगम गति पावे नाहीं। भूलि रहे सब भर्म माहीं॥

साखी : कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।
पांव न टिकै पिपीलका, पंडित लादे बैल॥
सुरति अति आधीन है, गहे नाम की डोरि।
शब्द स्वरूपी साहब, ज्ञान पियावें घोरि॥

जिस सारशब्द को सतगुरु ने अपना सिद्धांत बताया है उसकी खोज होनी चाहिए। वह शब्द जीव की कृपा से नहीं होता, वह तो सबसे बालातर यानी ऊँचे से ऊँचा है—

चौ० : सबके ऊपर शक्ति बिराजे। निःअक्षर ता ऊपर गाजे।
सारशब्द बिदेह सरूपा। निःअक्षर वह रूप अनूपा॥

उस अगम शब्द का गम यह जीव अब बिना सतगुरु की दया के कैसे पा सकता है? यह जीव तो उससे जुदा हो गया और जब तक उसको नहीं पाता, जुदा ही रहेगा। इसलिए सतगुरु ने सारशब्द को ग्रहण करने का उपदेश किया है कि जब तक तू अपने शब्द स्वरूप परमात्मा से न मिलेगा, मुक्ति पद को न पहुँ-चेगा। जब तू उससे मिलेगा तब मुक्ति होगी, और अपने असली स्थान पर तुरंत पहुँच जावेगा; फिर कोई अँदेशा बाक़ी न रहेगा। यह सारशब्द तो कुछ ऐसा पदार्थ है जिसको सतगुरु ने अगम, अगोचर फ़र्माया है, जिसमें किसी का गम नहीं। तो पूरणदास साहब को, बिना सतगुरु महरमी के मिले, कैसे उसका गम हो सकता था? अगम का गम्य या अलख का लखाना बिना सतगुरु के कठिन है। देखिए सतगुरु बचन—

शब्द एक है अगम अपारा, मर्म न पावे कोई हो।
रहे उर्ध अर्ध में आवे, तब जग जाहिर होई हो॥

है ज़ाहिर कोई जानत नाहीं, ताको कौन लखावे हो।
कोटि ज्ञान जप तप कर हारे, बिन गुरु कोई न पावे हो।।
कोटिक शब्द कही मुख बानी, एक शब्द हम गाई हो।
ताकर भेद काल नहिं पावे, सोइ संतन चित लाई हो।।
आठो अंश उन्हीं से कहिए, सो सबहिन से न्यारा हो।
यह अक्षर वह है निःअक्षर, सोई नाम हमारा हो।।
ताको भेद सुनो भाई संतो, अब हम कहि अर्थाई हो।
वही नाम को निशि दिन सुमिरे, ताको काल न खाई हो।।
कहैं कबीर अगम की बानी, पूरे गुरू लखाई हो।
शब्द सुरति जब एक भयो है, तब नहिं जन्म धराई हो।।

चौपाई

युग बंधा ते मरै न कोई। अवर यतन सब धोका होई।।
शब्द न मानै कथै जो ज्ञाना। ताते यम दीनों है थाना।।
जिन जिन कीन आप विश्वासा। नर्क गये तेहि नर्क बासा।।
काया जरि बरि होइगै छारा। तेहिके आगे बस्तु हमारा।।

साखी : अधर दुलैचा पीव का, अधरै दर्शन होय।
काया के बाहर लखै, हंस कहावे सोय।।
जीव को कर्त्ता कह सब कोई, यह तो अंश कहाई हो।
अंश तजो मिलो सतपुरुषहिं, तब नहिं खोज चलाई हो।।

देखो भाइयो! इन सब शब्दों में सतगुरु ने कैसी ख़ूबसूरती के साथ साफ़-साफ़ फ़र्माया है कि वह शब्द जिसका उपदेश मैं तुझको करता हूँ, अगम अपार है; उसका भेद कोई नहीं जानता कि वह कहाँ और किस तरह पर है और वह शब्द रूप परमात्मा भरपूर हर जगह हाज़िर नाज़िर, हर वक़्त मौजूद है। उसको कोई कोटि

तरह से ज्ञान करे तो भी नहीं पा सकता। जिसका भेद काल को नहीं मिला, उसको मैं संतों के हेतु कहता हूँ कि उसी के सुमिरन करने से जीव छूट जावेगा और किसी उपाय से नहीं छूट सकता। वही नाम शब्द रूप अक्षर से रहित निःअक्षर है। इस अगम शब्द का लखाव जो पूर्ण गुरु होगा, वही करा सकता है। जिस वक़्त तेरी सुरति उस सारशब्द सतपुरुष से मिलेगी, तब तू जन्म-मरण से छूट जायगा। इसलिए भाइयो,बक़ौल सतगुरु के बमौजिब "जो कहा मान तू मेरो, तो गुरु शब्द विवेकी हेरो"—वरना यह सब धोका है। यह पूरणदास साहब की पारख मुक्तिदायी नहीं हो सकती और न इसको कोई शब्द-विवेकी अंगीकार करेगा। हाँ अगर इसके लिए सतगुरु ने किसी मौक़े पर यह फ़र्माया होता कि जब सुरति और पारख एक होंगी तब तू जन्म-मरण से रहित होगा तो बेशक आपका यह सिद्धांत मान लिया जाता। जब उसके खिलाफ़ है और जन्म-मरण का दुःख यह पारख नहीं हटा सकती, तो हर्गिज़ दिल इसको नहीं कबूल करता, और न कोई ज्ञानी इसको मान सकता है, और न शब्दमार्गी संत जौहरी इसको मानेंगे। पूरणदास साहब तो शब्द-विवेकी थे नहीं। बेदांत में, मालूम होता है, उनको कुछ दखल था, और सारशब्द से मुतलक़ आगाही न थी। इस वास्ते इस तरफ़ पारख पर लौट पड़े, और इससे ज़्यादा बेचारे कर भी क्या सकते थे ? फिर देखिए कि जिन शब्दों को आपने जीव कृपा से होना बताया है, वह जीव की कृपा से नहीं बल्कि यह पारख ही जीव की कृपा है, क्योंकि जीव में पारख है,पारख में जीव नहीं है। आपने इस साखी की टीका में पहिले तो शब्द को ब्रह्म माना और निःतत्व व निःअक्षर फ़र्माया है, लेकिन जब आखिर में

अपना गुज़ारा न देखा तो माया की तरफ़ लौट पड़े और माया-मुख कहके माया का उपदेश बताने लगे। उसके बाद गुरुमुख कहके गुरु का उपदेश शब्द के विषय में ओहं सोहं ररंकार बताने लगे। असली मतलब जाता रहा, और उस शब्द की तारीफ़ यों फ़र्माया कि "नाभि से सकार लेकर त्रिकुटी में हं बनाया, स्वांसा कंठ में आया, तेजस अभिमान खड़ा हुआ, स्वप्नावस्था भई, गाढ़ निद्रा लगी, तब नाना प्रकार से पक्षी व पशु खानि पैदा भए। गाफ़िली भई, फिर श्रवण द्वारे ब्रह्मांड में लक्ष लगाया तो ररा शब्द मालूम भया।" इस कथन से यह नहीं मालूम होता कि इस पारख रूपी जीव की मुक्ति के समय में यह कान, नाक, आँख, कंठ, हृदय वग़ैरह कैसे थे और कहाँ से यह सब सामान पैदा हो गया? यह सब इन्द्रिय तो देह की मालूम होती है। मुक्ति में तो इसकी देह थी नहीं। यह निःतत्व था और उस वक़्त में यह जीव निःकर्मी था। जब निःकर्म था तो ओहं सोहं ररंकार को विदेह होकर इसने कैसे जगाया? यह तीनों शब्द तो देह के हैं। देही शब्द और विदेही शब्द पर महाराज पूरणदास साहब ने कुछ बिचार न किया और सतगुरु के महावाक्य की टीका करने बैठ गए। यह तो ख़याल कर लिया होता कि सतगुरु हमको उपदेश विदेही शब्द का करते हैं, या ओहं सोहं ररंकार आदि देही शब्द का करते हैं? जिनको यह जीव, हस्ब उपदेश आद्या वो निरंजन के विदेही शब्द समझ कर इनसे अपनी मुक्ति चाहता है इसी का सतगुरु ने खंडन करके जीव को सारशब्द या विदेही शब्द हासिल करने का उपदेश किया है, और फ़र्माया है कि विदेही शब्द और देही शब्द की यह पहिचान है कि विदेही शब्द

ज़बान पर नहीं आ सकता और देही शब्द ज़बान से होते हैं, विदेही शब्द निःअक्षर निःश्वाँसा है, और देही शब्द अक्षर शब्द जिसको क्षर कहते हैं, वह श्वाँस सहित है—

साखी : शब्द शब्द सब कोई कहै, वह तो शब्द विदेह ।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख कर लेहु ।।

चौ० : निरख परख के अक्षर बूझै । बिन अक्षर अक्षर तब सूझै ।
अक्षर कर्म धर्म संयुक्ता । निःअक्षर अक्षर से मुक्ता ।।

साखी : अक्षय होय अक्षर गहै, अक्षर है उपदेश ।
अक्षै डोर चढ़ि जाय जिव, अक्षय राज के देश ।।
अक्षर एक निःअक्षर होई, जाने भक्ता कोई ।
तीरथ-ब्रत पुस्तक में नाहीं, ऐसो कर्ता होई ।।
मानुष तैं बड़ पापिया, अक्षर गुरुहिं न जान ।
बार बार बक कुकही, गर्भ धरे अवधान ।।

चौ० : अक्षर तत्व भेद पहिचाना । निःअक्षर निःतत्व बखाना ।।
अक्षर कर्म लिप्त नहिं होई । रहित सकल ते अक्षर सोई ।।
ओहं सोहं अक्षर जाना । ज्ञानी गुणी कीन परमाना ।।
अक्षर गोरख नारद बूझा । बिन अक्षर वह पंथ न सूझा ।।
रारंकार कीन परमाना । अदली अक्षर रहा अमाना ।।
जेहि घट में अक्षर उजियारा । सो हंसन का करै उबारा ।।

अब बताइए कि पूरणदास साहेब का यह सिद्धांत सही है, या सतगुरु का उपदेश । अब तीसरी साखी को देखिए । इसमें भी आपने वही राग गाया और सतगुरु से मुख़ालिफ़त करके शब्द का नाम आते ही चौंक उठे और समझ लिया कि यह वही शब्द है जो जीव से या जीव की कृपा से होता है । यह ख़बर

नहीं कि मालिक भी शब्द रूप है जिसको सतगुरु ने सारशब्द, सत्यशब्द या मूलशब्द फ़र्माया है। इसकी फ़हम विदून दया सतगुरु के कैसे हो सकती है—

शब्द सरूपी साहिबा, सब माहिं समाना।
केवल ज्ञान कबीर का, बिरले जन जाना।।
शब्द निरंतर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कतहूँ न छूटे, ऐसी ताड़ी लागी।।

अब बीजक की अगली साखी लें —

शब्द हमारा आदि का, शब्दै पैठा जीव।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव।।

टीका पूरणदास—"टीका गुरुमुख। शब्द हमारा आदि का यह माया का उपदेश भया तब जीव सब शब्द में बैठे। किसी ने सोहं शब्द में सुरति लगाई, किसी ने अनहद शब्द में सुरति लगाई, इस प्रकार से शब्द में जीव पैठ और शब्द रूपी होके मगन भए सो शब्द के रहनि में फूल के ब्रह्म बने कोई दास बने कोई साधक कर्मी बने इस प्रकार से घोरे खाया घीव। घोरा कहिए माठा, माठा ब्रह्म, ब्रह्म कहिए शब्द, शब्द कहिए बानी, बानी कहिए कल्पना, कल्पना कहिए भर्म, भर्म कहिए अनुमान ताने जीव को खा लिया, अपने में समाय लिया। दूध कहिए जीव रूप छाछ कहिए कल्पना घीव कहिए जीव यह अर्थ।"

टीका-खंडन—देखिए इस साखी की टीका में भी पहिले गुरुमुख कहा है। फिर मायामुख कर दिया है। क्योंकि आपके खयाल में शब्द माया का उपदेश है, और शब्द माया है और जीव की कृपा से है। सच तो यों है कि सतगुरु के आदि शब्द

का भेद समझना बहुत मुश्किल है। जब तक भेदी सतगुरु न मिले, कभी उसके भेद को कोई जान नहीं सकता। तो पूरणदास साहेब बिचारे कैसे जान सकते थे, क्योंकि उनको सारशब्द का लखाव कराने वाला भेदी सतगुरु तो मिला नहीं, वरना ऐसा वे हर्गिज़ न फ़र्माते। यह उनकी भूल है। ख़ाली अपने अनुमान से जैसा समझ में आया, गढ़ लिया। जिन-जिन शब्दों को सतगुरु ने माया कहा है, उनका ख़ुद उन्होंने खंडन कर दिया है और जो शब्द अखंड स्वरूप है उसको सबसे न्यारा दिखा दिया है, जिसका समझना बहुत मुश्किल है—"शब्द एक है अगम अपारा मर्म न पावे कोई हो।" जहाँ कहीं सतगुरु ने आदि शब्द का इशारा किया है, वहाँ फ़ौरन समझना चाहिए कि आदि शब्द से मुराद सतगुरु के उसी सारशब्द सतपुरुष से है, न कि माया से है। वह तो माया से रहित है, माया उसकी दासी है। इस आदि शब्द का भेद बजुज़ सतगुरु के और कोई नहीं जान सकता कि वह क्या है, और कहाँ है? हाँ सतगुरु के लखाव करा देने से कोई-कोई शब्द-विवेकी महरमी लोग भी इसका भेद जानते हैं। इसके भेदी होने से वह भी सतगुरु कहे जाते हैं जो इस वक़्त तक सतगुरु की मिहरबानी से चला आ रहा है। आम तौर पर हर एक सारशब्द से वाक़िफ़ नहीं हो सकता, क्योंकि इसको सतगुरु ने गुप्त रक्खा है, प्रकट नहीं किया। देखिए सतगुरु बचन—

चौपाई

शब्द भेद मैं बहु बिधि भाखी। सार वस्तु निज न्यारे राखी॥

जो सतगुरु के इस पदार्थ के रखने के क़ाबिल मिला उसको तो सतगुरु ने इसका लखाव करा दिया, और यह उपदेश व

हिदायत फ़र्माया और क़स्में दिलाईं कि यह मेरा आदि शब्द बाहर न जाने पावे, यह पदार्थ उसी को दो जो उसके लायक़ हो, और वह मेरी जगह उपदेशक होगा यानी वह भी मेरा भेदी होगा और सतगुरु कहलावेगा। देखिए सतगुरु बचन—

मन बच परे लोक साहब का, तैसे उनका नामा।
सारशब्द को जपै भली बिधि, तब पावे वह धामा॥
यह तो ज्ञान गूढ़ है भाई। धर्मदास मैं तोहिं सुनाई॥
यह अति गुप्त भेद है भाई। सदा गुप्त करि राखो ताहीं॥
गुरु सेवक को देहु बताई। कपटी से तुम राखु छिपाई॥
साखी : सर्व लोक गत शब्द सत्य यह, यही निरुपन साख।
कहैं कबीर धर्मदास सुनो, मूल भेद दियो भाख॥
कोटि शपथ समरथ की, शब्द न बाहर जाय।
अरब शपथ सतगुरुन की, सदा छिपावहु ताहि॥

इस वजह से यह पदार्थ, बहुक्म सतगुरु, गुप्त रहा और रहेगा। इसके भेदी और जानने वाले बहुत थोड़े होंगे। यह पदार्थ ऐसा नहीं है कि हर शख़्स की समझ में आ जावे और गुरुवा लोग महज़ अपनी बुद्धि व चतुराई से बिना सतगुरु के गुरु पद को समझा देवें, यह ग़ैरमुमकिन है। जबकि वे इससे ख़ुद ही महरूम हैं, तो वह दूसरों को क्या देंगे? यह मुख्य-मुख्य पदार्थ जो सतगुरु के हैं, उन्हीं के पास रहेंगे और उनसे कोई-कोई बंदा भाग्यवान ही पावेगा। देखिए सतगुरु बचन—

चौ० : सार शब्द पावेगा सोई। जाको सतगुरु पूरा होई॥
शब्द : कहैं कबीर आगम की बानी, पूरे गुरू लखाई हो।
शब्द सुरति जब एक भयो है, फेरि नहिं जन्म धराई हो॥

चूँकि हमारे पूरणदास साहब को भेदी, शब्द-विवेकी, सार-शब्द का लखाव कराने वाला पूरा सतगुरु तो मिला नहीं था, वह इससे महरूम थे, इसलिए वे इस भेद से भी महरूम रहे। अपनी विद्या व वेदांत के बल पर चतुराई से सतगुरु के कलाम की टीका लिखने लगे। वे इस भेद को क्या जाने कि शब्द क्या है? ज़ाहिरा शब्द को माया व जीव की कृपा व आकाश का गुण समझ लिया और गाने लगे। जीवों को बहका कर और धोके में डाल कर निरंजन के जाल में फँसाने लगे, ताकि यह जीव चौरासी से न निकल सके। अब देखिए इस साखी से सतगुरु का असल मतलब यह है कि—

शब्द हमारा आदि का, शब्दै पैठा जीव।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव॥

सतगुरु जीव से फ़र्माते हैं कि ऐ जीव! शब्द हमारा आदि का है, यानी सबसे पहले का हमेशा वा सनातन का है जिसको सारशब्द कहा गया है, तू इसी सारशब्द में पहिले था, अब उससे जुदा होकर बिछुड़ गया है। तुझको अब उसमें पैठना चाहिए यानी मिलना चाहिए और वह सारशब्द तुझमें बैठा है यानी तू उससे जुदा नहीं है, तू उसे भूल गया, जानता नहीं। अगर उसे जान लेवेगा तो तू भी वही हो जावेगा। "फूल रहन की टोकरी घोरे खाया घीव"—घोरा नाम माठा, माठा में घीव होता है। यहाँ पर माठा नाम जीव का है और घीव नाम सारशब्द का है। सो ऐ जीव, तूने घीव को खा लिया याने सारशब्द को भुला दिया और जिस तरह माठा के साथ घीव रहता है उसी तरह जीव के साथ सार-शब्द रहता है। फूल रहन की टोकरी क्या है, याने फूल किसको

कहा व टोकरी क्या चीज़ है ? यह एक दूसरी मिसाल है। फूल नाम जीव का है टोकरी नाम सारशब्द का है। फूल रखने के लिए टोकरी का होना ज़रूरी है वरना फूल एक जगह न रहेंगे जैसा कि जीव विदून उसके चौरासी भर्म रहा है, इसलिए सतगुरु ने फ़र्माया है कि ऐ जीव, फूल रूपी अपने सारशब्द टोकरी में हो रहो यानी सारशब्द से जीते जी मिल जाओ व चौरासी से छुट्टी पा जावो। जब तक तू उस सारशब्द सत्पुरुष से न मिलेगा, चौरासी से नजात न होगी; हमेशा जन्म-मरण का दुःख तुझ पर सवार ही रहेगा और फिर तू पछतायगा। जनाब पूरणदास साहब ने अपनी ग़लतफ़हमी से इस अनमोल पदार्थ सारशब्द व आदि शब्द सतपुरुष को माया क़रार दे दिया और यह कह दिया कि कुल शब्द जीव से होते हैं। यह आपके खयाल में न आया कि जो शब्द जीव की कृपा से होगा वह अगम-अगोचर कैसे हो सकता है ? सतगुरु ने हर मौक़े पर सारशब्द की सिफ़त अगम-अगोचर की फ़र्माई है। देखिए सतगुरु बचन—

शब्द एक है अगम अपारा, मर्म न पावे कोई हो।
कोटिक शब्द कहै मुख बानी, एक शब्द हम गाई हो।
ताको भेद काल नहिं पावे, सो संतन चित लाई हो।।
शब्द कमान सतगुरु दिया, तानै कोई सूरा हो।
सुरति का तीर लगाय के, मारै कोई पूरा हो।।
शब्द सरूपी साहिबा, सब माँहि समाना हो।
केवल ज्ञान कबीर का, बिरलै जन जाना हो।।

साखी : शब्द शब्द बहु अंतरे, सार शब्द मथ लीजे।
कहैं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं, धृक जीवन सो जीजै।।

इस तरह से सतगुरु ने सारशब्द की सिफ़त हज़ारों मौक़ों पर की है, कहीं पर पारख की सिफ़त ऐसी नहीं लिखी और न पारख लेने को फ़र्माया है। देखिए झूलना में भी सतगुरु ने यही फ़र्माया है कि मेरा उपदेश शब्द के उसूल का है, न कि पारख का—

शब्द उपदेश मैं सबन ते कहत हूँ, समझ कर आपना सुख लीजै।
राग औ द्वेष मद ईर्ष्या छोड़ि कै, आपने जीव को भला कीजै॥
आय सतसंग में कुबुधि को दूर कर, शब्द संतोष मन माह धारो।
कहैं कबीर यह शब्द निर्दोष है, आपने जीव को काज सारो॥

देखिए 'विज्ञान सार' भी—

चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। सारशब्द सतपुरुष प्रकाशा॥
सोहं है ब्रह्मांड के पारा। तेहि सोहं से नाम है न्यारा॥
सोई है निज भेद हमारा। जो पावे सबहीं ते न्यारा॥
चार लोक पुरुष बिस्तारा। चार लोक ते पुरुष है न्यारा॥
पुरुष डोरि सबही के माहीं। पुरुष भेद कोई पावत नाहीं॥
चहूँ लोक में व्यापक सोई। चहूँ लोक ते न्यारा होई॥
ताकी समझ न आवे भाई। ताते हंसा जाय नसाई॥

अब जो लोग इसके ख़िलाफ़ हों, उनको समझना चाहिए कि ये सतगुरु के मुख़ालिफ़ हैं, उसके फ़र्माबरदार वे नहीं है, बल्कि उनको निरंजन का उपदेशक व दोस्त कहना चाहिए। वे लोग सतगुरु के ज्ञानी नहीं कहे जा सकते, और न उनके दर्बार में वे जा सकते हैं, और न सारशब्द सतपुरुष से मिल सकते हैं। वह हमेशा इस पदार्थ से कमनसीब व महरूम रहेंगे, और बार-बार जन्मा मरा करेंगे, मुक्ति-गति को हर्गिज़ न पहुँचेंगे। जनाब पूरण-

दास साहब ने इस टीका के करने में बहुत बड़ा धोका यह खाया है कि देही शब्द को सारशब्द समझा, और विदेही शब्द की कुछ खोज न की। इसी वजह से वह गुमराह हो गए, और उनकी टीका व सिद्धांत सब ग़लत हो गये, क्योंकि पारख को उन्होंने मूल समझ लिया और शब्द को जीव की कृपा ठहरा दिया। हालाँकि सतगुरु ने फ़र्माया है कि वह जीव की कृपा से नहीं, वह विदेह शब्द है, ज़बान पर आ नहीं सकता, वह निरख-परख कर जाना जावेगा, जो बहुत बड़े समझदार का काम है ---

साखी : शब्द-शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख कर लेहु ॥

चौपाई　देखिए बीजिक सार

निरख परख के अक्षर बूझै। बिनु अक्षर अक्षर तब सूझै॥
जीव ब्रह्म वो माया सारी, इनसे राम है न्यारा।
चित औ अचित सबहिन में व्यापक, ऐसो मेरो प्यारा ॥
चैतन्य सहित सबहि में व्यापक, हैं पुनि सबसे न्यारे।
सारशब्द में सबही पायो, कहाँ लग कहों पुकारे ॥
सिद्धिन में सब दुनिया भूली, करामात को माने।
सारशब्द जो निर्विकार है, तहाँ न सिद्धि रहाने ॥
सारशब्द में एकै सिद्धी, मुक्ति करै तहँ सेवा।
सारशब्द का खेल निराला, समझत गुरुमुख भेवा ॥
ओहं सोहं अजपा जप से, सारशब्द है न्यारा।
ओहं सोहं सारशब्द बिच, जानै गुरुमुख द्वारा ॥
मन बिच परे लोक साहब का, तैसे उनका नामा।
सारशब्द को जपै भली बिधि, तब पावे निज धामा ॥

चौ० : यह तो ज्ञान गूढ़ है भाई। सदा गुप्त कर राखो ताही ॥
गुरु सेवक को देहु बताई। कपटी से तुम राखु छिपाई ॥

साखी : कोटि शपथ समरथ की, शब्द न बाहर जाय।
अरब शपथ सतगुरुन की, सदा छिपावहु ताहि ॥

इसी वजह से यह भेद छिपा रहा, और न यह भेद सबके जानने योग्य है। इसको कोई-कोई भाग्यवान बंदा पावेगा। 'बीजक सार' को देखने से हमारे गुरुभाइयों को, और सब देखने वालों को भी, मालूम होगा कि सतगुरु ने उसूल मुक्ति के वास्ते सिर्फ़ सारशब्द को हासिल करने की हिदायत फ़र्माई है जो सबका सिर्जनहार है, न कि उसूल पारख के वास्ते । इसलिए जो लोग मुक्ति की ख़्वाहिश रखते हैं और मालिक यानी अपने परमात्मा से मिलना चाहते हैं, तो फ़ौरन सबको छोड़ कर हस्ब हिदायत सतगुरु सारशब्द को किसी महरमी सतगुरु से खोज लें और इत-मीनान से जीते जी अपनी ज़िन्दगी में जीवन-मुक्ति का फल चाखें, वरना अगर पारख के भरोसे पर रहेंगे तो यह पारख की नाव उनको बीच धारा में ले डूबेगी। फिर कोई तदबीर आगे को न चलेगी, हाथ मलमल के रहेंगे, भव सागर से उबरेंगे नहीं, इसी में डूबा उतराया करेंगे । सारशब्द सतपुरुष की सिफ़त जो सबका मालिक वो सबसे न्यारा है, इस तरह की है कि वह अखंड व अविचल, हर जगह पर भरपूर, हाज़िर-नाज़िर मौजूद है, और अकह वस्तु है। महज़ सुरति-निरति के द्वारा उसे जाना जावेगा। बशर्ते कि पूरा मुर्शिद मिले तभी इसका लखाव हो सकता है, वरना बहुत मुश्किल है। बक़ौल सतगुरु—

ना तो झूठी देह है, मरे गर्भ में जाय।
ईश्वर मिलना कठिन है, जन्म-जन्म जहँड़ाय ॥

इसलिए सारशब्द के दाता सतगुरु को खोजो, जिससे कि उसके चारो भेदों को समझ कर भवपार उतर जावो। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : समझ बूझ सतमत गहे, सोई सन्त सुजान।
भेद बिना खाली घड़ा, सो नर बैल समान ॥

प्रश्न और उत्तर—अब चन्द सवालात, मय उनके जवाबात के, अर्ज़ करता हूँ जिससे कि देखने वालों को हर तरह पर इतमीनान होगा और समझदार उसको बदिल मंज़ूर फ़र्मावेंगे और दाद देवेंगे।

प्रश्न—जबकि इस जीव को अपने मुक्ति-स्थान याने सार-शब्द से विलग होकर इधर जगत में चला आना पड़ा, तो फिर यह कैसे निश्चय हो कि यह वहाँ पहुँच कर फिर न लौट आवेगा और जीव जमा क्यों नहीं हैं ?

उत्तर—पहले जवाब इस बात का दिया जाता है कि यह जीव मुक्ति-स्थान से उतर आया और अब सतगुरु की दया से वहाँ पहुँच कर फिर इधर न आने पावेगा। देखिए, यह बात तो प्रत्यक्ष मालूम होती है कि जीव का पैदा होना और मरना तो ज़रूरी है, क्योंकि देह अनित्य है, नित्य नहीं। तब अगर यह अपनी जमा से विलग नहीं हुआ तो यह बारबार मरने जीने के अज़ाब में क्यों फँसा ? इसी से विलग होना साबित होता है। तो इसको ज़रूर उससे मिलने की भी इच्छा है, ताकि इस दवामी अज़ाब से छुट्टी पावे। जब मुक्ति होना लाज़िम है तो साबित हो गया कि यह पहिले मुक्ति स्थान पर था, फिर यहाँ पर आकर मरने-जीने के दुःख में पड़ गया। क्योंकि अगर यह मुक्ति में न होता तो इसे मुक्ति की चाह भी न होती। पस (अतः) मुक्ति होना भी

साबित है, और आना-जाना भी सिद्ध है, जिसको आवागमन कहते हैं। अब रहा यह कि इसका निश्चय कैसे हो कि यह वहाँ तक पहुँच कर फिर न लौटेगा। प्रथम जवाब यह है कि जब हम न रहेंगे तो आना-जाना कैसा ? जिस वक्त तक हम मौजूद हैं, उसमें न मिलें, तब तक आना-जाना भी मौजूद है, तब तक नजात भी नहीं। क्योंकि नजात के माने यह है कि जीव फिर आवे जावे नहीं और फ़राग़त व इतमीनान, चैन व आराम से दवामी सुख उठावे। जब हम नहीं तो कुछ नहीं और यह बात उसी वक्त हासिल हो सकती है जब कि उसका पूरा-पूरा वसीला मिले। दूसरे, जब कि जीव निरंजन व आद्या की कला से चौरासी तैर कर अपने मालिक तक न पहुँच सका तब मालिक ने सतगुरु को महज़ जीव को मुक्ताने को भेजा, कि यह जीव मुक्ति से बिछुड़ कर निरंजन काल के जाल में फँस कर गुमराह हो गया है, और मुझको भूल गया। अब यह मुझ तक आने का रास्ता नहीं पाता, तुम जाकर वह राह इसे बतला कर इसे ले आओ, मैं तुमसे इक़रार करता हूँ कि मैं उसको फिर न जाने दूँगा। तब सतगुरु साहब कबीर जगत में जीव मुक्ताने के हेतु तशरीफ़ लाये—

अब हम आदि संदेशी आए।
निर्गन सर्गुन जीव भुलाने, तब हम यह जग आए।
यम की त्रास देख जीवन पर, समरथ हुकुम सिधाए॥

और यहाँ आकर जीवों को उस सारशब्द सतपुरुष से मिलने की हिदायत की और फ़र्माया कि उससे मिल कर तू फिर भव सागर से निकल जावेगा, आवागमन से छूट जावेगा। देखिए सतगुरु बचन—

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हंसन जात बिगोई।
ले पहुँचाओ अमर लोक में, आवागवन न होई ॥

अमर लोक से काल निरंजन निकाला हुआ है और यह जीव निरंजन काल के जाल से धोके में फँस कर इस तरफ़ चला आया। अब काल के जाल से छुट्टी नहीं पाता। जब यह सतगुरु का उपदेश लेकर सतगुरु के चारों भेदों को बख़ूबी समझेगा, तब काल के चंगुल से छूट कर अपने अमर लोक को चला जावेगा; फिर काल के चंगुल में न आवेगा, क्योंकि अब वहाँ काल नहीं जाने पाता। इस वजह से अब वह वहाँ से न आवेगा और यही उपदेश सतगुरु ने फर्माया है——

सारशब्द गहि बाँचिहो मानो इतबारा।
अजर अमर एक वृक्ष है निरंजन डारा।
त्रिदेबा साखा भए, पाती संसारा ॥
विश्नु माया उत्पति किया, पहिला व्योहारा।
ब्रह्मा बेद सही किया, शिव योग पसारा।
त्रिदेवा व्याधा भए, लिए बिष का चारा ॥
कर्म की बंशी डारि के, पकड़े जग सारा ॥
ज्योति सरूपी हाकिमा, जिन अमल पसारा।
तीन लोक दशहूँ दिशा, यम रोके द्वारा ॥
अमल मिटावों तासु का, पठवों भव पारा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जो निज होय हमारा।

चुनांचे सतगुरु ने मालिक के हुक्म के मुताबिक़ सारशब्द के उसूल की हिदायत फ़र्माई, जो इस वक्त भी सतगुरु के ज़रिए हासिल हो सकता है, व होगा, तब यह जीव पहुँचेगा, वरना

हर्गिज़ हो नहीं सकता। तीसरे, देखिए इस बात का निश्चय कैसे हुआ कि यह जीव अपने मुक्ति-स्थान सारशब्द सतपुरुष को छोड़ कर इधर चौरासी में हो रहा है। सतगुरु के बचन से फिर अब मुक्त होने का निश्चय कौन दिलाता है, सतगुरु। सतगुरु सत्य का वक्ता है कि, असत्य का? वह सत्य का है, असत्य का नहीं हो सकता। इसी सबब से उसका नाम सतगुरु हुआ। अगर यह सिफ़त उसमें न होती तो वह सतगुरु न कहलाता। अच्छा तो जो वह सत्य का गुरु है और उसका हुक्म सत्य है तो फिर यह शंका क्यों पैदा की जाती है कि ऐसा न हो कि वहाँ पर पहुँच कर लौटना पड़े। जबकि तुम्हारा सतगुरु तुमको यह यक़ीन दिलाता है कि "वहाँ जाय आवे नहीं कोई, सत्य वचन सतगुरु कहै" तब तुमको हर तरह से बेख़ौफ़ रहना चाहिए। या इसकी तसदीक़ ख़ुद वहाँ जाकर कर लो कि वहाँ जाकर लौटते हो कि नहीं। मुझको जहाँ तक सतगुरु का कलाम मिला है, उससे पूरे तौर पर इतमीनान होता है कि बेशक यह जीव जब सारशब्द सतपुरुष परमात्मा से मिलेगा तो संसार में नहीं आवेगा। जब कि सतगुरु के कलाम को तुम सत्य मानते हो कि उसका वचन अडोल है, तब तुम्हारा ख्याल क्यों डाँवाडोल है, और क्यों अपने को भ्रम में डाल कर दुर्मति में पड़ते हो कि जिससे तुम्हारा ख्याल सतगुरु से गिर जाता है? सतगुरु के वचन पर निश्चय न करना और उसके कलाम में निश्चय छोड़ कर शंका पैदा करना मूर्खता है। देखिए सतगुरु बचन—

सत्य सत्य सत्य मैं भाखी।
सारशब्द निज न्यारे राखी॥

कहैं कबीर पुकार, समझ हिरदय धरो।
जुगन-जुगन करो राज, दुरमति परिहरो॥
मुक्ति की आशा छोड़ के, काल का डर नहिं मान।
आशा सब परपंच है, दुविधा आशा जान॥
निःआशा निर्भय रहै, तब जिव होय निःशंक।
सत्य बचन सतगुरु कहैं॥

इस तरह पर सतगुरु ने हर तरह से इतमीनान दिलाया है, और साफ़-साफ़ फ़र्माया है कि—"वहाँ जाय आवे नहिं कोई"। तब तो यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि यह जीव जब अपने दाता सारशब्द से मिलेगा फिर हर्गिज़ वहाँ से न लौटेगा, उसमें मिल जायगा, परमात्मा से मिल कर अब नहीं जुदा होगा, एक रूप हो जायगा। ज्यों जल में जल जाय समाना। त्यों ज्योतिहिं संग ज्योति समाना॥

जैसे सरिता सिंधु समानी, फेरि नहिं पलटी।
सुरति हरि नाम से अटकी॥

सतगुरु ने पुकार-पुकार सारशब्द सतपुरुष को मुक्ति दाता फ़र्माया है कि जिससे मिलकर जीव फिर नहीं लौट सकता—

सारशब्द में एकै सिद्धी, मुक्ति करैं तहँ सेवा।
सारशब्द का खेल निराला, जाने गुरु मुख भेवा॥
सारशब्द है मुक्ति का दाता, कहँ लग कहों पुकारे।
चैतन्य सहित सबही में व्यापक, है पुनि सबसे न्यारे॥
सिद्धिन में सब दुनियाँ भूली, करामात को माने।
सारशब्द जो निर्विकार है, तहाँ न सिद्धि रहाने॥

प्रश्न—सतगुरु और जीव में क्या भेद है, और सतगुरु मुक्ति-स्थान छोड़ कर जगत में क्यों आये? उन्हें जीव से क्या

प्रयोजन है और उन्होंने क्यों इसको हिदायत की ?

उत्तर—सतगुरु और जीव में भेद नहीं, वे एक ही रूप व मुक़ाम के हैं। जीव और सतगुरु में सिर्फ़ यह फ़र्क़ हो गया कि जीव देह धारण करने से कर्मी हुआ, इससे बंधन में पड़ गया और सत्यगुरु विदेह रूप सारशब्द विदेह स्वरूप में रह कर निःकर्मी रहे, इससे वह बंधन से रहित हैं। यह मल-मूत्र की देह लेने से नापाक हो गया और सतगुरु विदेही हालत से पंच तत्व रहित जगत में जीवों को मुक्ताने के हेतु तशरीफ़ लाये और जीव को अपना रूप और उसका असली रूप समझा कर व दिखा कर, इसको सारशब्द सतपुरुष से मिलने का उपदेश किया। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : हम तो मूल सुरति हैं, तुम हो मेरे बंश।
हम तुम पलक हजूर के, दोउ साहब के अंश॥

सतगुरु और जीव दोनों हंस रूप हैं, इसलिए सतगुरु ने जीव को हंस कहा है और अपने को भी हंस फ़र्माया है, क्योंकि हंस में नीर-क्षीर के निरुवार करने का गुण क़ुदर्ती तौर से है। वही सिफ़त जीव में भी मौजूद है कि यह सतगुरु के ज्ञान व विचार से सत्य-असत्य का निरुवार कर लेता है, और असत्य रूपी जल को छोड़ कर सत्य रूपी दूध को पी लेता है। मगर जीव अपनी उस सिफ़त को भूल गया जिसको पारख कहते हैं, क्योंकि बग़ैर पारख के सत्य-असत्य का निरुवार नहीं हो सकता। यह एक बहुत बड़ा गुण जीव में मौजूद है जिससे यह पारखी कहा जाता है। देखिए सतगुरु वचन—

नीर छीर का करै निबेरा। कहैं कबीर सोई जन मेरा॥
कहैं कबीर सो हंस न बिछुड़ै, जेहिं मैं मिलौं छुड़ावनहारा॥

हंसा हो चित चेत सबेरा। इन परपंच कोन बहुतेरा ।।

साखी : हंसा तू सुबरन बरन, क्या बरनो मैं तोहिं।
तरवर पाय पहेलिहो, तबहिं सराहौं तोहिं ।।
हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगी रंग गया, तू किया और लगवार ।।

शब्द : हंसा हंस मिले सुख होई।
जब तू प्यासा हंस नीर को, कूप नीर नहिं होई।
यह तो खेल सकल ममता को, हंस तजै जैसे चोई ।।
हंस हमारा शब्द बसेरो, शब्द अहारा होई।
लै पहुँचाओ अमर लोक में, हंसा हंस समोई ।।
यह यमराजा तीन लोक को, बाँधे अस्त्र संजोई।
ताहि जीति चले हंस हमारे, तब यमराजा रोई ।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हंस न जात बिगोई।
ले पहुँचाओ अमर लोक में, आवागमन न होई ।।

इस तरह से बहुत से मौक़ों पर सतगुरु ने जीव को हंस कहा है, और अपने को भी हंस फ़र्माया है, जैसे--"ठाढ़े देखौं हंस कबीर"। तो इससे साबित है कि सतगुरु और जीव एक रूप हैं। अगर सतगुरु व जीव एक रूप न होते तो सतगुरु जीव को काल से छुड़ाने को जगत में न आते और जीव को सारशब्द को लेने की हिदायत न करते। चूँकि देह लेने से सशक्त व कमज़ोर हो गया है और सतगुरु विदेह रहने से सर्वशक्तिमान, भरपूर रहा। सतगुरु को जीव के साथ ऐसी मुहब्बत है जैसे जीव को अपनी देह से या माता को अपने बच्चे से, क्योंकि सतगुरु हरदम जीव के साथ इसकी हिफ़ाज़त के वास्ते साया की तरह

गुप्त रहता है और हर आफ़त से बचाता है। हर ज़माने में आकर इसको हिदायत व छूटने के तरीक़े बतला कर गुप्त हो जाता है और फिर हरदम उपदेश व नेक-बद की ख़बर इसको दिया करता है। बिदून सतगुरु की दस्तगीरी के यह जीव अपने मुक्ति-स्थान पर किसी उपाय से नहीं पहुँच सकता। अतः सतगुरु व जीव एक रूप व एक ज़ात है। अब इस मौक़े पर एक बात और दिखाने योग्य है कि जब यह जीव व सतगुरु एक ज़ात व एक रूप हैं तो फिर यह जीव बंधन में क्यों पड़ा? इसका जवाब तो सतगुरु की इस साखी से खुद ज़ाहिर है--

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा तू कहाँ चला बिगोय।।

जब यह जीव निरंजन व आद्या के बहकाने से अपना मुक्ति-स्थान छोड़ कर छठी देह को चला, उसी वक्त सतगुरु ने समझाया कि तू अपना मुक्ति-स्थान छोड़ कर कहाँ ख़राब होने जाता है, फिर न आने पावेगा। मगर इसने कुछ ख़्याल न किया और छठी देह में हो रहा। देह में आते ही गिरफ़्तार हो गया और मुक्ति-स्थान से गिर गया। न छठी देह में आता न बंधन होता। वह हमेशा के लिए जन्म-मरण के दुःख सहित इस छठी देह में लालच के वश होकर धोखे में पड़ गया, फिर ज्यों-ज्यों और नीचे को उतरता गया, गिरफ़्तार ही होता गया। फिर इसको अपने मुक्ति-स्थान का होश जाता रहा और इस देह को अपना असली देह समझने लगा, और उसको ऐसा भूला कि इसी को आनंद समझने लगा। जिस रास्ते से यह जीव देह में आया और बंधन में पड़ा वह रास्ता इसके लिए बंद हो गया। न वह रास्ता

इसको मिलता है और न निरंजन व आद्या इसको उस तरफ़ जाने देते हैं, और न इसको खुद ऐसा होता है कि यह अपनी शक्ति से उस रास्ते को ढूँढ़ लेवे और निकल जावे। मगर निरंजन काल ने तो वह शक्ति इसकी पहिले ही छीन ली थी, जिससे यह खुद ही अशक्त हो रहा है। अब यह बिना सतगुरु के छुटकारा नहीं पा सकता। देखिए सतगुरु बचन गाँठी--

रतन मर्म नहिं पायो, पारख लीनी छोरी हो।
कहैं कबीर यह अवसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो॥
माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हर लीन्हा॥
बिन सतगुरु को भव पार उतारैगो।
वही जीव मझधार जासु मति हरि गयो॥

अब जब तक यह जीव पूरा-पूरा सतगुरु का ज्ञान न हासिल करेगा, कभी चौरासी के जाल से नहीं निकल सकता है। इसी वास्ते सतगुरु ने जगत में आकर जीव को मुक्ति का ज्ञान और सारशब्द के मिलने का रास्ता बतलाया है, और कुल जीवों को--क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या साधू, क्या संत, क्या कोई—सब पर एक हुक्म चलाया और जात-पाँत का बन्धन तोड़ कर केवल मालिक से मिलने का यत्न बताया जिससे सब लोग एक राय हों। अगर यह मुक्ति-स्थान को न छोड़ता, तो हर्गिज़ चौरासी के फेर में न पड़ता। देखिए सतगुरु बचन--

पाँच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नाव।
एक कला के बिछुरे, विकल भया सब ठाँव॥

जिन्होंने बिना सतगुरु के, भेष पहन के जंगल में रहना अख़्तियार किया और अपनी सारवस्तु को नहीं जाना, रिद्धि-सिद्धि

पाकर महात्मा सिद्ध कहलाए वे इसी गुमान में भूल कर चौरासी में रहे, इसी से नष्ट हो गये।

सतगुरु ने कहा है—"सारशब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेष"। देखिए, सतगुरु ने फ़र्माया है कि ऐ जीव, तू सर्वशक्तिमान, बल-युक्त, गुणागार, भरपूर था मगर तू कुसंगति में पड़ने से कुरंग हो गया, तेरा असली रंग जाता रहा। अब कुरंग होने से तूने सब शक्तियों का ख़ून कर डाला और अपने मालिक रहमान को छोड़ कर दूसरे शैतान को लगवार कर लिया, जिससे तू अब रिहाई नहीं पाता—

साखी : हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगी रंग गया, किया और लगवार॥

अगर तू अपनी असलियत को देखता, सारशब्द सतपुरुष परमात्मा से मिलता, तो कभी अपने बल से हीन न होता, न इस दुःख में पड़ता। यहाँ के सिर्फ़ निरंजन के तमाशे देख कर अपने स्थान पर, जहाँ से आया था, चला जाता। फिर देखिए दूसरी साखी में सतगुरु ने जीव की कैसी तारीफ़ की है—

साखी : हंसा तू सुबरण बरण, क्या बर्णों मैं तोहिं।
तरवर पाए फैलिहो, तबहिं सराहों तोहिं॥

फ़र्माया है कि ऐ हंस तू सुवर्ण वर्ण था, याने सोने का था, मैं तेरी क्या तारीफ़ करूँ। मैं तेरी कुछ सिफ़त नहीं कर सकता, लेकिन अब जब तक तू इस कुरंग से निकल कर अपने असली रंग में न आवेगा और सारशब्द सतपुरुष को न हासिल करेगा, तब तक मैं तुझको बड़ाई न दूँगा। जब तू काल के जाल से निकल आवेगा तब मैं कहूँगा कि तू बहादुर है—

है कोई सूरा जीव, जो ऐसी करनी करै।
ताहि मिलेंगे पीव, कहैं कबीर पुकारि के ॥

अब देखिए, जनाब पूरणदास साहब ने अपनी त्रिज्या में यह सिद्ध किया है कि पारख मूल है और जीव जमा है। इसका कर्ता दूसरा नहीं है, यह ख़ुद ही सबका कर्ता है। सिर्फ़ पारख इसमें न थी, वह इसको गुरु ने दी, इसलिए पारख मूल है। अगर इसको पारख मिल जावे तो पंच देह का दुःख छूट जावे। फिर यह भी फ़र्माते है कि जीव मुक्त था, तब भी पक्के पंच तत्व इसमें मौजूद थे, उन्हीं से इसने कच्चे तत्व की पंच देह खड़ी की। अब उस हिंडोले में बैठ कर झूल रहा है, तब गुरु ने अपनी दयालुता के स्वभाव से इसको पारख देकर पक्के-कच्चे की पारख करा दी, और हुक्म दिया कि तू पारख पर स्थिर रह कर अब पक्की-कच्ची से कुछ काम न रख; हर वक्त पारख पर रह। मगर पारख का देश नहीं बताया कि कहाँ पर है जहाँ वह जीव बैठ कर पक्की-कच्ची देखेगा। अब यह देखना चाहिए कि इसमें पारख थी या नहीं। अगर हस्बक़ौल आपके यह थोड़ी देर को मान भी लेवें कि इसको पारख न थी, तो यह अपारखी था। जब यह अपारखी था तो फिर मुक्ति में कैसे था, क्योंकि मुक्ति-स्थान तो पारखियों का है न कि अपारखियों का, जैसा कि आपके कथन से भी मालूम होता है कि बिना पारख के वह मुक्ति-स्थान में नहीं जा सकता। यह बात समझ में नहीं आती कि अपारखी होने से जो अज्ञानी रहा, उस अज्ञानी को मुक्ति कहाँ ? अज्ञानी मूर्ख कहलाता है, लेकिन जब हम इस बात पर ग़ौर करते हैं कि उसने पक्के तत्व से कच्चे तत्व की देह खड़ी की तो इसने बड़ा भारी काम किया और जब

इसकी बनाई हुई देह को देखते हैं तो इसमें ऐसी कारीगरी व क़ुदरत देख नहीं पड़ती है कि अगर कोई कल अपने इस देह की बिगड़ जावे और इन्सान चाहे कि वह इसको दुरुस्त कर लेवे, तो नामुमकिन है। तो इस देह को बनाने वाला कोई बड़ा कारीगर और महाज्ञानी व सर्वशक्तिमान पाया जाता है। यह सिफ़त जीव में नहीं पाई जाती है। तब इसने पक्की से कच्ची क्यों कर दिया,व पंच तत्व के हिंडोले में झूलने लगा ? यह फ़ौरन उस हिंडोले से कूद कर अपनी असली जगह पर क्यों न चला गया ? जब इसमें पक्के को कच्चे में बदलने की सामर्थ्य थी तो फिर कच्ची से पक्की में हो रहता। इस वजह से ऐसा निश्चय नहीं होता कि यह क़ादिर था, क्योंकि क़ादिर में यह सिफ़त होती है कि वह जो चाहे सो करे। पूरणदास साहब इसी को क़ादिर कहते हैं, जिसको मैं हर तरह पर आजिज़ व लाचार पाता हूँ, और क़ादिर कोई दूसरा पाता हूँ। मुक्ति में रहना और मुक्ति से आना तो सही है, मगर यह सही नहीं है कि इसमें पारख नहीं थी, और न यही सही है कि इसने ख़ुद पक्की से कच्ची खड़ी की। इसमें पक्के तत्व भी नहीं थे। पूरणदास साहब का यह सब कथन बिलकुल बिला सबूत या मिथ्या है। सतगुरु ने इसी साखी में कहा है कि ऐ जीव! तू सबल था, मगर कुरंग में पड़ने से तू हर तरह से अपने बल से हीन हो गया है—

साखी : हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगी रंग रहा, तू किया और लगवार ॥

क्या सबल होने का मतलब यह भी होगा कि इसमें पारख न थी तो फिर सबल यह क्यों कहा गया। पारख इसमें थी लेकिन

अपनी ज़ात से निकल कर ग़ैर ज़ात में हो रहा, याने अपने रंग को छोड़ कर कुरंग में हो रहा। इसका असली रंग, जिसकी बदौलत सबल रहा, जाता रहा। अब जब तक यह अपने असली रंग में नहीं जाता, कभी भी सबल नहीं हो सकता। न यह दूसरे शैतान लगवार को छोड़ेगा न अपने रहमान से मिल कर रहिमान होवेगा। शैतान के साथ रह कर यह भी शैतान हो गया, जैसा कि इसके कर्मों से ज़ाहिर होता है कि रहमान के मिलने से यह भागता है, याने शैतान का संग नहीं छोड़ता है; अपनी शैतानी हरकत से बाज़ नहीं आता, ख़्वाहमख़्वाह पक्की-कच्ची करता है। इसके सिवाय पारख से परखने का काम होता है याने जिससे कोई चीज़ परखी जावे, याने सत्य असत्य का निरुवार होकर खरा-खोटा मालूम हो जावे। इसी से इस जीव को सतगुरु ने हंस कहा है कि इसमें सत्य असत्य निरुवारने का गुण है, जैसा कि हंस पक्षी की चोंच में यह गुण है कि दूध पी जाता है, पानी छोड़ जाता है, इसलिए इसको पारखी कहा है। सतगुरु का बचन है "पारख रूपी जीव है, लोह रूप संसार।" तब पूरणदास साहेब का यह फ़र्माना कि इसमें पारख न थी, बिलकुल ग़लत है। ऐसा सिद्धांत क़ाबिल क़ुबूल नहीं है। इसमें हमेशा पारख रही और है। गुरु ने इसको नहीं दी, बल्कि यह एक अनादि माद्दा याने स्वभाव इसमें ख़ुद बख़ुद मौजूद है। सतगुरु ने यह काम अलबत्ता किया है कि यह अपनी वस्तु को परख के देखता न था, सो दिखा दिया, याने इसका मुक्ति स्थान, जो छूट गया था, उसका लखाव करा दिया, जिससे यह चौरासी से छूटेगा। देखिए सतगुरु बचन—

नर को नहीं प्रतीत हमारी।

झूठा बनिज किया झूठा संग, पूँजी सबन मिल हारी।
षट दर्शन मिल पंथ चलायो, तिर देवा अधिकारी।
राजा देश बड़े परपंची, रैयत रहत उजारी॥
इतते उत औ उतते इत रहु, यम की साँड़ संवारी।
ज्यों कपि डोरि बाँधि बाजीगर, अपनी खुशी परारी॥
इहै पेड़ उत्पति परलय का, विषया सबै बिकारी।
जैसे श्वान अपावन राजी, तिमि लागी संसारी॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, देखो हृदय विचारी।
अजहूँ लेहुं छुड़ाइ काल से, जो करु सुरति सम्हारी॥

अब रही यह बात कि जब यह जीव मुक्ति के स्थान पर था तब इसमें पाँच पक्के तत्व मौजूद थे, उन्हीं से कच्चे तत्व की देह इसने खड़ी की। अब पंच देह में पड़ कर अपने को भूल गया। अब जब सतगुरु से पारख पावेगा तब पक्की कच्ची से काम न रखेगा। केवल पारख पर रह कर नजात पावेगा। मुझको यह निश्चय नहीं होता कि यह अपने पक्के अनादि तत्व को क्योंकर छोड़ देगा। जब अनादि तत्व का अभाव न हुआ तब फिर यह उसी पंच तत्व के हिंडोले में बैठ कर झूलने लगेगा। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि जो अनादि या स्वाभाविक गुण जिसमें होगा वह उससे क्योंकर चला जावेग। जैसे सूर्य से धूप, आग से गर्मी नहीं दूर हो सकती, इस तरह पर अनादि माद्दा, याने स्वभाव, जो जिसके साथ है, वह उसके साथ बदस्तूर रहेगा। पारख उसको नहीं हटा सकती। इसी वजह से मुझको इतमीनान नहीं होता। जब इसके अनादि तत्व का अभाव न हुआ तो यह मुक्त क्योंकर हुआ? इसलिए यह सिद्धांत भी ठीक नहीं ठहरता।

सारशब्द जो मुक्ति स्थान है, उसमें कोई तत्व या गुण नहीं है, वह निःतत्व है--

चौ० : सारशब्द निःतत्व स्वरूपा । निःअक्षर वह रूप अनूपा ।।
तत्व प्रभाव प्रकृति नहिं देही । सारशब्द निःतत्व विदेही ।।

यह जीव तत्व व गुण के बीच में फँसा है । यह सब सामान काल के देश का है, अमर देश में यह कुछ नहीं है । एक बात यह और ग़ौर करने योग्य है कि गुरु और चेला, याने सतगुरु और जीव दोनों एक मुक़ाम मुक्ति-स्थान पर थे या नहीं । इस बात का फ़ैसला ऊपर हो चुका है कि सतगुरु और जीव दोनों एक जिन्स व एक रूप व एक मुक़ाम मुक्ति स्थान, सारशब्द, विदेह स्वरूप थे—

साखी : हम तो मूल सुरति हैं, तुम हो मेरे वंश ।
हम तुम पलक हजूर के, दोउ साहब के अंश ।।

फिर कहा है कि–"हंसा चलो अपने देश, जहाँ तेरो पीव बसै ।" देखिए सतगुरु बचन—

सूर्य न रैन दिवस तहँ, तत्व पाँचों नाहिं ।
काल अकाल परलय नहीं तहँ, संत बिरले जाहिं ।।
तहाँ के बिछुरे कल्प बीते, भूमि परो भुलाय ।
साधु संगति खोजि देखो, बहुरि उलटि समाय ।।

इससे निश्चय होता है कि दोनों एक जिन्स व एक ही स्थान के बासी हैं । अगर सतगुरु व जीव दोनों एक जिन्स न होते तो सतगुरु जीव को उपदेश भी न करते कि चलो अपने देश, और यह न फ़र्माते कि चलो सतलोक हमारे, न यह ही फ़र्माते कि "तारन तरन आप है भाई, गुरु सेवक दुइ नाम धराई ।" और न

यह कहते कि 'दोउ साहब के अंश'। इसलिए जहाँ तक सतगुरु का कलाम देखा जाता है तो यह बख़ूबी साबित होता है कि सतगुरु और जीव दोनों एक जिन्स और एक ही मुक़ाम के रहने वाले हैं, सिर्फ़ फ़र्क़ वही देह और विदेह का है। यह देह धारण करने से जीव कहलाया और वह विदेह रूप रहने से सतगुरु इसका उपदेशक हुआ। यह जीव देह में आने से अपने सारशब्द विदेह स्वरूप को भूलकर, लुटेरों के पंजे में पड़कर ग़ारत हुआ और सतगुरु अपने विदेह स्वरूप सारशब्द में रहकर और ग़ारतगरी से पाक और लूट से बचा रहा——

चौ० : ठगि-ठगि मूल सबहिं का लीन्हा। राम ठगोरी काहू न चीन्हा।।
कहैं कबीर ठग से मन माना। गई ठगौरी जब ठग पहिचाना।।
कहैं कबीर हम जात पुकारा। ज्ञानी होय सो करै विचारा।।

तो जब सतगुरु और जीव एक जिन्स ठहरे, फिर यह नहीं कहा जा सकता कि सतगुरु में पारख थी और जीव अपारख था। और न कहीं पर सतगुरु ने ऐसा कहा है कि यह अपारख था; बल्कि यह कहा है कि यह अपनी पारख से काम नहीं लेता, अगर मेरा स्थान सारशब्द किन्हीं कारणों से देखता तो यह ख़ुद ही सतगुरु होता। इस पारख से यह जीव कभी अलग नहीं रहता और न है। हाँ अगर पूरणदास साहब यों कहते कि इसकी पारख दौलत यहाँ छीन ली गई, या यह खुद इसको भूल गया, अब उसे काम में नहीं लाता तो बेशक उनका सिद्धांत सही हो जाता, और इस ग़लतफ़हमी में न पड़ते कि पारख इसमें न थी, बल्कि यह सिद्धांत होता कि पारख से यह जीव काम नहीं लेता था। सतगुरु ने उसका उद्योग बताकर सारशब्द को परखा दिया कि जिससे वह अमर

देश को चला जावेगा। इससे सतगुरु का सिद्धांत भी क़ायम रहता श्रौर उनका भी मतलब निकल श्राता। यहाँ तो कहा जाता है कि उसमें पारख मुतलक़ न थी, यह एक नई दौलत सतगुरु के हाथ से मिली, जिससे यह दौलतमंद बन गया, याने पारखी हुश्रा। श्रब मोदी बना श्रपनी पक्की-कच्ची देह परखा करेगा। परन्तु सतगुरु ने इस साखी में साफ़-साफ़ फ़र्माया है कि तुझमें पारख थी, यहाँ छीन ली गई। देखिए सतगुरु बचन—

रतन मर्म नहिं पायो, पारख लीन्हों छोरी हो।
कहैं कबीर यह श्रौसर बीते, रतन न मिलहिं बहोरी हो॥
माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हर लीन्हा॥

श्रगर यह भी मान लिया जावे कि इसके पास पारख न थी, गुरु ने यह दौलत इसको दी, मगर उन लुटेरों का बंदोबस्त तो कुछ न हुश्रा। वे फिर श्राकर इसकी गठरी छीन लेंगे तब यह क्या करेगा ? किसको पुकारेगा ? उस वक़्त इसकी कौन सहायता करेगा ? इसके सिवाय श्रगर हस्बक़ौल पूरणदास साहब जीव पारख पर भी स्थित हो तो पहिले पारख मुक्ति का दाता ठहरता नहीं, दूसरे पारख पर रहने से कच्ची-पक्की का संशय नहीं जाता कि ऐसा न हो कि पक्की से कच्ची में हो रहूँ। जब यह संशय न गया, तब निर्भय न हुश्रा तब भवसागर ही में रहा, फिर मुक्त कैसे रहा ? जब मुक्त न हुश्रा तब खाली पारख से क्या हुश्रा ? तो इससे यह सिद्ध हुश्रा कि सतगुरु का उपदेश श्रौर जीव का उसपर श्रमल सब बेकार होगा, इसलिए यह सिद्धांत भी उनका किसी तरह पर ठीक नहीं होता। फिर सतगुरु ने पारख की यह तारीफ़ कहीं नहीं की है कि यही सबका मालिक व मुक्तिदाता

व अगम, अगोचर, अविचल, अडोल, गुप्त-प्रकट, हर जगह भरपूर व अविनाशी, सर्वशक्तिमान है। जब इस पारख में यह गुण नहीं घटते तो यह पारख सब का मूल कैसे है ? जब यह अपने उन सिफ़तों से रहित है तो वह अपने रूप में ला नहीं सकती। तब इसको पक्की-कच्ची से क्योंकर छुड़ावेगी ? जहाँ तक मैं ग़ौर करता हूँ, इस पारख में परखने का गुण बेशक पाया जाता है कि जो हर एक वस्तु को परख कर उसकी सचाई-झुठाई का निश्चय कराती है, याने खरा-खोंटा बताती है। तब पूरणदास साहब का यह कहना सिद्ध नहीं होता कि पारख मूल है और इस पर स्थित होने से यह जीव मुक्ति-गति को पहुँचेगा, यानी पक्की-कच्ची से कुछ काम न रखेगा। इस तरह पर उनका यह सिद्धांत भी ग़लत ठहरता है कि पारख मूल है।

पूरणदास साहब का जमा-ख़र्च—अब मुझको यह देखना रहा कि पूरणदास साहब का यह जीव जमा का सिद्धांत भी बिलकुल ग़लत है और यह किसी तौर पर ठीक नहीं मालूम होता है। शायद यह जीव जमा का सिद्धांत उन्होंने जैनियों के मत से लिया है, क्योंकि वह लोग जीवों पर बड़ी दया रखते हैं; जीव हिंसा से अपने को बहुत बचाते हैं, और जीव को कर्ता मानते हैं—

जैनी जीव कभी नहिं मारैं। पढ़ैं गुणैं नहिं नाम उचारैं ।।
जीवहिं को थापैं कर्तारा। राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।

और वेदांत भी यही सिद्ध करता है, तो उन्होंने कौन सा बड़ा काम किया ? मेरे नज़दीक पूरणदास साहब को इसकी असली जमा का पता ही नहीं मिला, नहीं तो हर्गिज़ वे जीव को जमा न मानते। अगर यह ख़ुद ही जमा होता तो इसको अपने मालिक

से मिलने की इच्छा क्यों पैदा होती, जिसको मुक्त होना कहते हैं ? या जीव से परे जमा कोई और वस्तु है, जैसा कि देखिए हर शै की जमा अलग-अलग बाहर मौजूद है। जब हम ग़ौर करते हैं तो मालूम होता है कि हमारे साथ इस देह में थोड़ा-थोड़ा बाहरी सामान मौजूद है, जिसको अंश मात्र या एक जुज़ या एक छोटा हिस्सा कहते हैं। हर जिन्स का जुज़ हममें मौजूद है जिससे कि हमारी देह खड़ी है, और जीवात्मा उसमें रहकर आनन्द से विहार कर रहा है। जिस वक़्त यह देह छोड़ देगा, तब इसके सभी जुज़ अर्थात् पानी, पवन, मिट्टी, आकाश जो इसमें मौजूद थे, अपनी-अपनी असली जगह पर जा मिलेंगे। तो इन सबकी जमा अलग पाई जाती है। इसी विचार से पाया जाता है कि इस जीवात्मा की जमा भी अलाहिदा कहीं इससे बाहर है, जिसको परमात्मा कहते हैं और वह सबसे बालातर याने सबसे बड़ा व न्यारा कहा गया है। जिस वक़्त देह विनशेगी उस वक़्त सब विनश जावेंगे, और इसका हर एक जुज़ अपनी-अपनी बाहरी जमा में जा मिलेगा। तब यह जीवात्मा अपनी जमा परमात्मा में बिना जाने हुए कैसे मिलेगी ?

त्रिकुटी मध्ये ध्यान लगावे, अजपा जाप जपावे।
सुरति समानी अधाधुंद में, बिन जाने कहाँ जावे ।।

यह तो पूरणदास साहब के कथन से अपने को ख़ुद ही जमा जानने मानने लगा। लेकिन किसी तरह पर यह जीव जमा नहीं ठहरता, क्योंकि यह जुज़ है, और देह के बंधन में है, और यह व इसके कुल साथी याने तत्व गुण व प्रकृति के हर जिन्स बाहर निबंध मौजूद हैं जिसमें वह मिलते हैं। देखिए सतगुरु बचन—

पानी में पानी मिला, पौन में मिलिगा पौन।
मैं तोहि पूछौं पंडिता, दोइ में मरिगा कौन ॥

तब उनका यह जीव जमा का सिद्धांत बिलकुल ग़लत ठहरता है। पूरणदास साहब का जमा-ख़र्च सुनिए। उन्होंने जीव को जमा और उसकी वानी आदि को ख़र्च करार देकर यह कहा है कि "जीव जमा और सब खर्च है भाई," और यह सिद्ध किया है कि अगर जीव न होता तो निर्जीव से कुछ न होता। इसलिए जीव जमा है, इसका कर्ता कोई नहीं है। पूरणदास साहब ने इसका विचार कुछ नहीं किया कि यह जीव किसी का अंश है और अंश जमा नहीं हो सकता। अंश का अंशी कहीं बाहर ज़रूर होगा, तो इसका अंशी जमा होगा और उसका अंश ख़र्च होगा। अलबत्ता यह कहा जाता तो ठीक था कि जो जिन्स जमा होती है वही ख़र्च भी होती है। जैसे कि जमा हो रुपया, और खर्च हो कोयला या कंकर या पत्थर—ऐसा कभी नहीं हो सकता। न इसको कोई क़बूल करेगा कि जीव जमा है और उसके कर्म व बानी आदिक ख़र्च हैं। यह तो गोया बातों का जमा-ख़र्च ठहरा। असली जमा या उसकी आय वे बिलकुल उड़ा गए। उसका कुछ पता नहीं कि वह क्या हुई और कहाँ गयी। ख़ाली अपने अनुमान से उन्होंने जीव कृपा को ख़र्च ठहरा दिया। यह उनकी समझ में न आया कि जो जिन्स जमा होगी, वही तो ख़र्च होगी। इसके अलावा जो जिन्स ख़र्च में नहीं आ सकती वही जमा है। अब असली जमा-ख़र्च देखिए क्या है। जीव की जमा सारशब्द है; जिसको सतगुरु ने अविचल, अखंड, अगम, अगोचर और सर्वशक्तिमान फ़र्माया है; और वह महाचैतन्य है तो दोनों जिन्स एक ही हैं। यह चैतन्य

आत्मा उससे विलग हो गया, इस वास्ते वही खर्च में पड़ गया। अब देखना चाहिए कि जमा के अर्थ क्या हैं, और किसको जमा कहते हैं। जमा के अर्थ यह हैं कि कोई शै किसी मुक़ाम पर जमा रही हो, और वह बदस्तूर अपनी एक ही हालत पर क़ायम रहे, जिसकी सिफ़त अगम व अचल की है और जो उससे निकल आई वही खर्च में पड़ गई। दूसरे जमा के अर्थ जमाव के हैं। तीसरे जमा के अर्थ जमने के हैं। मालूम नहीं, पूरणदास साहब ने बानी को जीव के खर्च में कैसे मिला दिया और जमा-खर्च बना दिया जिसको कोई ज़रा सी अक़्ल वाला भी न क़बूल करेगा। अगर जीव जमा होता तो हमेशा मरने व पैदा होने के दुःख में न पड़ता और न चौरासी भोगता। यही इसका अपनी जमा से विलग होकर खर्च में पड़ना है। तो अब जब तक यह अपनी जमा से नहीं मिलता, चौरासी के आवागमन से नहीं छूट सकता। यहाँ पर एक बात और देखने के क़ाबिल है कि अगर यह जीव जमा स्वतः शुद्ध कर्ता पुरुष होता तो यह सजा व जज़ा का अधिकारी न होता, क्योंकि देखिए चोर चोरी करने में तो स्वतंत्र होता है मगर सज़ा व जज़ा के लेने में नहीं होता याने चोर या कोई और बुरा काम यह जीव अपनी मरज़ी से तो करता है, मगर उसके एवज़ में सज़ा अपनी ख़ुशी से नहीं लेता। जब सज़ा व जज़ा का देने वाला कोई और दूसरा हाकिम है जो इससे ज़बरदस्त सिद्ध होता है, तब यह जीव जमा कैसे कहा जा सकता है? और जब इस पर कोई दूसरा हाकिम सजा देने वाला पाया जाता है, तब इसका कर्ता भी वही ठहरता है; क्योंकि वह कर्म करने में स्वतंत्र है, मगर उसके फल लेने में स्वतंत्र नहीं है। वह उसको अवश्य

भोगना पड़ता है। ऐसी सूरत में न जीव स्वतः शुद्ध कर्ता ठहरता है और न जमा माना जा सकता है। जमा इसकी वही सारशब्द सतपुरुष है जिसको सतगुरु कबीर साहब ने पुकार-पुकार कर कहा है कि जीव जब तक अपने उस जमा से नहीं मिलेगा, जिससे विलग हुआ है, तब तक चौरासी से नहीं छूटेगा। चौरासी के अन्दर इसका आना यही ख़र्च है। इसके सिवाय किसी ने जीवात्मा को परमात्मा नहीं कहा, बजुज़ अंश के। यों अलबत्ता कहा गया है कि जीवात्मा उस परमात्मा का अंश है, यह उससे मिलकर भजन व बंदगी करके परमात्मा हो सकता है। इसलिए यह आबिद और वह माबूद कहलाया, तो आबिद ख़र्च ठहरा। जब यह अपने जमा में मिल गया, तब ख़र्च से निकल गया याने नज़ात हो गई, जिसको मुक्ति कहते हैं। तब परमात्मा से मिलकर परमात्मा होगा। खाली अपने को जमा समझने से जमा नहीं हो सकता। जिस तरह समुद्र से एक घड़ा जल ले लो और उसको समुद्र कहो और समुद्र के बराबर ताक़तवर मानो तो वह एक घड़ा जल उसके बराबर नहीं हो सकता। वह जल अपने असली जमा समुद्र में मिल जावेगा तब फिर उसी रूप में मिलकर बदस्तूर तद्रूप हो जावेगा। इसी तरह पर यह जीव भी अपने समुद्र रूपी परमात्मा से जब मिलेगा तो परमात्मा होगा, बीच में नहीं होगा। उससे विलग होना यही ख़र्च है। अगर यह जीवात्मा ख़ुदही जमा होता तो सर्वशक्तिमान भी ज़रूर होता, क्योंकि इसकी जमा याने परमात्मा को सर्वशक्तिमान कहा व माना जा सकता है। तब यह नित्य मरने व जीने के फेर में पड़कर आवागमन के अज़ाब में न पड़ता और न चौरासी का दुःख सहता। इससे भी

इसी का खर्च होना साबित होता है। फिर देखिए, परमात्मा जो इसकी जमा है, निर्बंध है, और यह जीवात्मा बंधन में है। तब भी इसको जमा मानना व कहना दुरुस्त नहीं है। पूरणदास साहब ने यह विचार न किया कि जो जिन्स जमा होगी वही तो खर्च होगी या खाली बातों का जमा-खर्च होगा। जब यह अच्छी तरह साबित हो गया कि यह जीव चैतन्य आत्मा उस महा चैतन्य सारशब्द परमात्मा का अंश हैं और एक जिन्स है, तब यह कहना उचित नहीं कि इसका कर्ता कोई दूसरा नहीं। चैतन्य और महा-चैतन्य यह दोनों एक ही वस्तु व एकरूप हैं फिर यह अपने महाचैतन्य से गिर कर सिर्फ़ चैतन्य रह गया, इसी से कमज़ोर व अशक्त हो गया। इसका उससे विलग होना यही इसका खर्च में आना है। यह अल्पज्ञ हुआ, वह सर्वज्ञ रहा। अब यह फिर जब अपनी जमा सारशब्द से मिलेगा तब यह भी वैसा ही हो जावेगा। जब इसका खर्च होना बंद हो जावेगा, याने चौरासी में आना फिर न होगा, तब आवागमन से छूटेगा। फिर देखिए, अगर यह ख़ुद ही जमा स्वतः शुद्ध होता तो फिर इसको सतगुरु के उपदेश की कौन ज़रूरत थी, और पारख लेने की क्या हाजत थी, और क्यों यह पारख पर ठहरता ? जहाँ तक देखा जाता है, यह जीव स्वतः शुद्ध नहीं पाया जाता है; यह हर तरह पर मुहताज व अशक्त है, इसलिए पूरणदास साहब का यह सिद्धांत भी ग़लत है। उनका जमा-खर्च किसी तरह पर माना नहीं जा सकता। मालूम नहीं, पूरणदास साहब उसकी दर्गाह में यह जमा-खर्च लेकर कैसे घुसने पाये होंगे ? वह तो अपना पूरा-पूरा हिसाब रत्ती-रत्ती का लेगा। वहाँ पर बातों का जमा-खर्च नहीं चलेगा।

हाय, यह जमा कैसी अकारथ हुई ! इसलिए ऐ भाइयो, पूरणदास साहब के इस अंधेरखाते में मत पड़ो। अपनी जमा, सारशब्द, की खोज करो। जब तक उससे न मिलो, अपने को ख़र्च में समझो। जो तुम ख़ुद ही जमा होते तो चौरासी में आवागमन के चक्र में न होते। यह जीव जमा का सिद्धांत पूरणदास साहब ने शायद जैनियों के मत से ज़रूर लिया है, क्योंकि वह भी जीव को कर्ता मानकर जीवों पर बड़ी दया रखते हैं; और वेदान्त ने भी यही सिद्ध किया है कि आत्मा ही परमात्मा है। उनको भी परमात्मा की ख़बर न हुई कि वह क्या है, कहाँ है, कैसा है। इसलिए इन्होंने भी सतगुरु के विरुद्ध अपनी भूल से जीव को जमा ठहराया है, और सबको अपनी जमा, सारशब्द, से मिलने को रोक दिया। इस धोखे में पड़कर यह अपने को जमा जान कर, अपनी असली जमा की खोज न करे कि जिससे बिलग होकर यह अब उससे न मिले, हमेशा चौरासी में रहे, और ख़ुद बख़ुद भी सतगुरु के ज्ञान पदार्थ से रहित रहकर निरंजनी ज्ञान में रहे, कि जिसकी बदौलत यह नमालूम चौरासी की किस योनि में भ्रमता होगा। जो कोई अपनी जमा की खोज न करेगा उसकी यही गति होगी। देखिए सतगुरु बचन—

कहैं कबीर सुनो टकसारा। सारशब्द हम प्रकट पुकारा।।
जो नहिं मानै कहा हमारा। राम रहे उनहूँ ते न्यारा।।
बाजीगर की सुरत बिसर गई, बाजी देख भुलाना।।
भूले वे अहमक नादाना, जिन हरदम रामहिं न जाना।।

पूरणदास साहब ने फ़र्माया कि "तू भास अध्यास कछु मानौ मत, जेतीक मानंदी द्वैत अद्वैत निर्विकल्प संकल्प यह सब अनुमान

और कल्पना है; जो कछु है सो तू है, तेरे ऊपर कोई दूसरा नहीं।" यहाँ यारों ने भी समझ लिया कि अगर तू है तो क्या ग़म है, अब तो हमको थोड़े ही से परिश्रम में बादशाही मिली, सब के कर्ता व हाकिम हो गए। वाह वाह भाई, इस ज्ञान से मालिक से मिलना तो दूर हो गया, अपने को भी भूल गया, "जहँ जहँ गयो, अपनपौ खोयो, ठीक ठौर नहिं पायो।" धन्य हैं पूरणदास साहब जो जीवों को जमादारी देकर चल बसे—

बिन देखे वह देश की, बात करै सो कूर।
अपुना खारी खात है, बेचत फिरै कपूर॥

हिकायत—एक गड़ेरिये ने जंगल से एक सिंह का बच्चा ला कर अपनी भेड़ों के साथ पाला। कुछ दिनों बाद जब वह सयाना हुआ, भेड़ों की संगत से ऐसा गुण उसमें पैदा हो गया कि वह अपने को भी भेड़ समझने लगा और उनके साथ रह कर उनकी जुदाई से बेचैन हो जाता। किसी वक़्त उनका साथ नहीं छोड़ता था। इसी तरह भेड़ें भी उसके बिछुड़ने से दुःखी होती थीं। एक दिन जंगल से एक सिंह उनके हार में जा पहुँचा, जहाँ वह सब चरते थे। वह अपने भाई सिंह के बच्चे को भेड़ों के साथ देख कर संकोच में पड़ गया, और अपने दिल में विचारने लगा कि मेरा यह कैसा भाई है जो इनके साथ घास चरता फिरता है? शायद यह अपने को भूला है। ऐसा विचार करके वह उसके पास गया और कहा, "तू तो हमारा भाई सिंह है; यहाँ इनके साथ क्यों घास चरता फिरता है, यह सब भेड़ें तो तेरे आहार के लिए हैं?" वह सिंह का बच्चा उसकी बातों पर ध्यान न करके अपनी भेड़ों के गोल में चलता हुआ। उस सिंह ने देखा कि यह बिलकुल भूला हुआ

है और उसने उसी वक़्त भेड़ों में कूद कर एक को पकड़ लिया, और चीर-फाड़ कर खा गया। बाक़ी सब भेड़ें भाग गईं। यह सिंह का बच्चा सहम कर खड़ा हो गया, तमाशा देखने लगा। तब उस सिंह ने उससे कहा कि "देख, हम तुम भाई-भाई सिंह रूप एक जात हैं। तू इन भेड़ों के साथ भेड़ हो गया है। यह तो सब तेरे आहार हैं; तू इनमें क्यों मर रहा है ?" जब उसे अपनी हालत मालूम हुई कि मैं सिंह का बच्चा हूँ, भेड़ नहीं हूँ; मैं इनकी संगत में क्योंकर आया ? यह विचार करके अपने भाई सिंह के साथ जंगल को चला गया। सी तरह पर सतगुरु कबीर साहब ने सिंह रूप होकर अपने बच्चे को, जो यहाँ भेड़ हो रहा है, अपने और इसके रूप की एकता सिद्ध कर और अपना भेद समझा कर निरंजन काल गड़रिया के जाल से निकाला है। अब बिना सतगुरु के इसकी भूल मिट नहीं सकती है और न यह अपने सिंह के देश को ही जा सकता है। देखिए सतगुरु बचन—

बिन सतगुरु नर फिरत भुलाना।
केहरि सुत एक लाय गड़रिया, पाल पोष तेहि कीन्ह सयाना।
करत अनंद फिरत अजयन संग, आपन मर्म उन नहिं जाना।।
एक केहरि जंगल से आयो, ताको देखि बहुत खिसियाना।
पकड़ तुरंत भेद समुझायो, आपन रूप देख मुस्काना।।
ज्यों कुरंग बिच बसै बासना, सो मूरख ढूढ़े चौगाना।
करि उसवास चहूँ दिशि देखे, यह सुगंध कहाँ से आना।।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, उलटी चाल सहज हम जाना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, छके रूप नहिं जाय बखाना।।

इसी तरह पर समझो कि सतगुरु और जीवात्मा व परमात्मा यह सब शब्दस्वरूपी एक जिन्स हैं। यह जीवात्मा माया से मिल कर संसार में भेड़ रूपी चौरासी भोग रहा है। अब, जब तक यह जीवात्मा अपने सिंह रूप सतगुरु से मिल कर उसका रूप और अपना रूप एक न देखेगा तब तक यह भेड़ गति से न छूटेगा, और जब तक सतगुरु के चारों भेदों का भेदी न होगा, हर्गिज़ इसको सतगुरु के स्वरूप और अपने स्वरूप की पहिचान न होगी और न माया, काल, आत्मा व परमात्मा दयाल का परिचय होगा। इसलिए इसको बहुत बड़ी ज़रूरत है कि यह सबसे पहिले सतगुरु के चारों भेदों को किसी सतगुरु के भेदी महात्मा से मिलकर बख़ूबी समझे, और उसका भेदी होकर ऐसे सतगुरु की शरण में आकर पनाह लेवे। तब काल व दयाल का परिचय करके इस भेड़ रूपी संसार से निकल कर, सिंह रूप होकर अपने अजर अमर देश को चला जावेगा, नहीं तो भेड़ों की तरह से नित्य गला कटाता रहेगा और इसकी नज़ात न होगी। देखिए सतगुरु बचन—

चौ० : चार भेद भेदी जो होई। कहैं कबीर गुरू है सोई॥
चार भेद का मर्म न जाना। सो गुरु यम के हाथ बिकाना॥
दुइ अक्षर को भेद बतावे। एक छुड़ावे एक मिलावे॥
तब निःशंक निज घर पहुँचावे। सो गुरु बन्दीछोर कहावे॥

अब देखिए, सिर्फ़ पारख पर रहने से, और जीव जमा समझने से और पाँच तत्व पक्के अनादि मानने से इसकी बन्दी नहीं कटती; बल्कि इससे तो यह दिन-ब-दिन बँधता जाता है, कुछ सुलझता नहीं। बक़ौल सतगुरु—

दिन-दिन अरुझ सुरझ नहिं भाई। बँधत बँधै छोरी ना जाई॥

ऐसा नहीं हो सकता। देखिए पूरणदास साहब के कथन से छूटने का कोई यत्न नहीं दिखाई देता, बजुज़ फँसने के। तब उनका यह ज्ञान, जो सतगुरु के विरुद्ध है, कैसे अंगीकार हो ? इस वास्ते उनकी यह सारी टीका ग़लत है और हर्गिज़ मानने योग्य नहीं है। इससे हमारी निजात नहीं होगी।

देह-विदेह का वर्णन--अब रहा देह-विदेह का झगड़ा कि जब सतगुरु और जीव एक रूप व एक जिन्स थे, तब जीव देह में कैसे आया और सतगुरु विदेह क्यों रहा ?

निर्णय--सबसे पहिले मैं देह का झगड़ा तोड़ता हूँ। देखिए सतगुरु ने अपने पवित्र बीजक में फ़र्माया है कि —

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहँ चला बिगोय॥

जब यह सतगुरु से बिछोह करके निरंजन काल के बहकाने से छठी देह को चला था, उसी वक़्त सतगुरु ने रोका, और मना किया था, मगर इसने सतगुरु के वचन का कुछ ध्यान न किया, और झम्म से छठी देह हो रहा; और फिर पंच देह में पड़ कर भूल गया, और चौरासी भोगने लगा। इसको छुड़ाने को सतगुरु कबीर साहब जगत में अमरलोक से आये, और छवों शरीरों का हाल, जिनमें यह फँसा है, अपने षट् शरीर के व्याख्यान में अलग-अलग छः शब्दों में ब्योरा समेत कहा है, जो कि देखने योग्य है। वह शब्द इस वास्ते इस ग्रन्थ के आदि में लिखे गये हैं जिससे हमारे भाइयों को बहुत कठिनाई न हो, उनको देख कर समझ लेंगे। उसी छठी देह को पूरणदास साहब ने मुक्ति-स्थान ठहरा कर पक्का तत्व खड़ा किया और पाँच तत्व की देह कच्ची बताई, जो बिलकुल

ग़लत है। इस मुक्ति-स्थान का उनको आप ही पता नहीं लगा, जहाँ से देह खड़ी हुई है। वहीं से उन्होंने अपने अनुमान से ऐसी व्यवस्था खड़ी करके सतगुरु के कलाम की टीका लिखी है। उनकी समझ में यह बात तो आई नहीं कि छठी देह ही तो इसके बंधन का मूल है, वह इसका मुक्ति-स्थान कैसे हो सकता है? देखिए शब्द सं० ६—

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, केवल पुनि विज्ञाना।
भयो नष्ट यह हेर फेर में, कतहुँ नहीं कल्याना॥
कहैं कबीर सुनो हो संतो, खोज करो गुरु ऐसा।
जेंहि ते आप अपन पौ चीन्हों, मेटो खटका रैसा॥

इसकी चैतन्यता इसी हंस देह से जाती रही और अपने पौ में आप भूल गया—

कहैं कबीर सुनो भाई साधो ओरे से बिगड़ी॥
आपन पौ आपहि से बिसरो।
जैसे स्वान काँच मंदिर में, भ्रमते भूकि मरो॥

जब से छठी देह में आ पड़ा तब से अब तक निरंजन काल के जाल से निकलने नहीं पाया और न अब बग़ैर दस्तगीरी सतगुरु के कोई इससे बच सकता है और न अपने मुक्ति-स्थान पर पहुँच सकता है। वह छवों देह ये हैं (१) **स्थूल**, (२) **सूक्ष्म**, (३) **कारण**, (४) **महा कारण**, (५) **केवल** (६) **हंस**। अब छः देह की व्यवस्था थोड़ी-सी कहता हूँ, सुनिए। पहले स्थूल देह में जीवात्मा को जाग्रत अवस्था प्राप्त होकर अपने को सबका साक्षी ज्ञाता जानने लगा। दूसरे सूक्ष्म देह में आकर स्वप्न अवस्था को प्राप्त हुआ, और बुद्धि चित्त का प्रकाश हुआ। जब तीसरे कारण देह में आया तब सुषुप्ति

अवस्था हुई और तमोगुण का प्रकाश हुआ। चौथे महाकारण देह में आकर तुरीयावस्था प्राप्त हुई और विदेह स्वरूप अपने को माना। पाँचवे केवल देह में आकर बोध अवस्था को प्राप्त हुआ और कालातीत व कला-सम्पूर्ण हो गया। जब हंस के छठे देह में आया तब अपने प्रकाश में आप प्रकाशित होकर बहुत ख़ुश हुआ, अपने उपजने व विनशने का ज्ञान जाता रहा, विज्ञानस्वरूप बना, आगे-पीछे किसी को न देखकर फिर नीचे को लौट पड़ा; याने हंस देह से केवल में, फिर महाकारण में, फिर कारण में, फिर स्थूल में जाकर टेंक लिया। यहाँ से फिर चला। जाते-जाते छठे हंस देह तक पहुँचा। इसी उतार चढ़ाव में मिस्ल हिंडोले के इन छवों देहों में रहता है। न आगे को रास्ता मिलता है, न रहबरी होती है। यही इसके आवागमन का जाल है। इसी के कर्माकर्म करके चौरासी में कर्मों के अनुसार पाप-पुण्य भोगता है। जब तक यह विदेही सतगुरु की शरण में आकर उसके हुक्म पर न खड़ा होगा, और उसके बचन पर तन मन से ध्यान न देगा तब तक हर्गिज़ अपने सत्य लोक मुक्ति-स्थान में जाकर सारशब्द सत-पुरुष से नहीं मिलेगा। इसका लखाव शब्द-विवेकी सतपुरुष से होगा, जो शब्दरूप सतगुरु के भेदी व जानने वाले हैं। देखिए शब्द

हंस देह विज्ञान भाव यह, सकल वासना त्यागी।
नहिं आगे नहिं पाछे कोई, निज प्रकाश में पागी ॥
निज प्रकाश में आप आपन पौ, भूलि भए विज्ञानी।
उन मतवाल पिशाच मूक जड़, दशा पाँच यह लानी ॥
खोए आप अपन पौ सर्वस-निज स्वरूप नहिं जानी।
फिर केवल कारण महाकारण, सूक्ष्म स्थूल समानी ॥

स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण, केवल पुनि विज्ञाना ।
भयो नष्ट यह हेर फेर में, कतहुँ नहीं कल्याना ।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, खोजहु सतगुरु ऐसा ।
जाते आप अपन पौ चीन्हो, मेटो खटका रैसा ।।

यहाँ तो यह देह में आकर ऐसा मगन हुआ कि अपने को भूल गया । इस देह में अद्‌भुत चरित्र देख कर निरंजन की बाज़ीगरी में मस्त हो गया; अपने विदेह हंस रूप का होश ही जाता रहा और बेहोश हो गया । बक़ौल सतगुरु—

बाजीगर की सुरति बिसर गई, बाजी देख भुलाना ।
यह बाजी सुर नर मुनि जहड़े, कोइ नहीं लाग ठेकाना ।।

तब यह पूरणदास साहब के कथन से कैसे ठिकाने लगेगा, जो हंस देह को मुक्ति-स्थान बताते हैं । यह हंस देह ही तो विकार-कल्पना का वृक्ष है । जब तक यह इसको न छोड़ेगा, क्योंकर अपने मुक्ति-स्थान पर पहुँचेगा । न छठे देह में आता न इस आफ़त में पड़ता । हमारे गुरुभाई लोगों को यह भी मालूम रहे कि सतगुरु ने एक मुक़ाम विदेह होने का चौथे शरीर में भी बताया है जिसकी साधना करके जनक जी विदेह कहलाये । इस विदेह से विदेही नहीं हो सकता है, यह तो देह का विदेह है । छठे देह में विज्ञान को प्राप्त होता है, परन्तु वह विज्ञान विज्ञान नहीं, यह देह का विज्ञान है जिसकी बदौलत इसे नीचे लौटना पड़ा । यह धोखा निरंजन ने इस आत्मा को दिया है, ताकि उसके चंगुल से वह न निकल सके । इसलिए सतगुरु ने कहा है कि तू धोके में गोता न खा; बहुत होशियारी से काम ले; यह निरंजन के फंदे हैं, इस तरह पर यह चेतन आत्मा देह में आकर फँसा । अब बिना रहबरी याने उपदेश व सतगुरु के

अपने विदेह स्वरूप में नहीं मिल सकता। पूरणदास साहब ने पहिली साखी के अर्थ में जीव को सर्वशक्तिमान होना भी कहा है और शायद इसीसे सबका कर्ता स्वतः शुद्ध ठहराया है, मगर हालत मौजूदा जो देख पड़ती है, ऐसी नहीं पाई जाती। हाँ किसी वक़्त में ऐसा रहा होगा। देखिए बीजक साखी—

हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगी रंग गया, तैं किया और लगवार॥

जीव सबल था लेकिन कुरंग में पड़ने से, विदेह रूप सार-शब्द को छोड़ने से, इसकी सर्व शक्तियाँ जाती रहीं। न विदेह से देह में आता, न अपने बल से हीन होता। इस साखी से मालूम होता है कि इस पर सतगुरु ने दो गुनाह लगाये हैं—एक तो यह कि विदेह रूप को छोड़ कर इसने देह धर ली, और सब शक्तियों का हनन कर डाला; दूसरे यह कि सारशब्द सतपुरुष को छोड़कर इसने निरंजन को लगवार बनाया और उसके हुक्म पर चलकर फँस गया। फिर जहाँ से आया था उसे भूल गया। अब देखिए कि देह में आने से इसकी कौन सी शक्ति बाक़ी है। मेरी समझ में इसकी कोई शक्ति बाक़ी नहीं है। हर काम में यह निर्बल साबित होता है, जैसे यह चाहे कि मैं बादशाह हो जाऊँ, या आरोग्य रहूँ या मरूँ नहीं तो इन बातों में यह हर तरह से लाचार है। देह लेकर कोई काम इसकी शक्ति का नहीं देखा जा सकता। इसलिए पूरणदास साहब का कहना कि जीव सर्वशक्तिमान है, अवश्य झूठ है। जब तक यह अपने उस महाचैतन्य सारशब्द सतपुरुष से मिलकर उसके रूप में नहीं समाता, इस पदवी को नहीं पहुँच सकता। यह क़ुदरत बिचारे जीव में नहीं होती, यह सिफ़त क़ादिर की है। जो क़ुदरत

में फँसा है, वह क़ादिर नहीं। ऐसा कहना दोष है। फिर जब यह जीव छोटे-छोटे कामों को पूरा नहीं कर सकता, उसकी दया चाहता है, तो बड़े-बड़े काम कैसे करेगा ? जैसे यह चाहे कि मैं अपनी सृष्टि अलग दिखाऊँ या धरती या आकाश, चाँद, सूर्य आदिक छोड़ कर और किसी दूसरे स्थान पर जा रहूँ, या अलग अपनी रचना दिखाऊँ, तो नहीं हो सकता। अपने अपराधों के बदले जो दण्ड उसको भोगने होते हैं, उसे वह हटा नहीं सकता, निरंजन पकड़ कर उससे भुगता ही लेता है, कान-पूँछ हिलाते नहीं बनता। वही पूरणदास साहब के कथन से मिथ्या सर्वशक्तिमान बन बैठा और सबका कर्ता हो गया ! पहले अपने कर्ता को खोजो और उससे मिलो तब ठीक होगा। यह मलमूत्र का देह छोड़ो तो शायद ऐसा हो जाय, नहीं तो मुश्किल है। उनके कहने से हम हर्गिज़ ऐसा नहीं हो सकते। पूरणदास साहब ने कौन सी शक्ति दिखाई, सिवाय इसके कि सतगुरु के कलाम की टीका करके जीवों को धोके में डाल कर राह भुलाई। विद्या के अभिमान से सतगुरु के सिद्धांत सारशब्द का खंडन करके उन्होंने पारख मूल और जीव को जमा बताया जिससे जीव उलझ गया और देही बंधन से न छूटा।

विदेही का वर्णन—देह का झगड़ा चुका कर अब मैं विदेह मुकाम को दिखाता हूँ, ध्यान देकर पढ़िए। विदेह उसे क़हते हैं, जिसके देह न हो, पाँच तत्व से रहित हो। जहाँ तक तत्व का प्रकाश है, वहाँ तक देह है। तब यह खुली बात है कि विदेह निःतत्व होगा। अब विदेही लक्षण सुनिए। अजर-अमर होना और अविचल व अखंड व अगम-अगोचर होना यह सब तारीफ़ विदेही की है।

वह सब सारशब्द सतपुरुष कबीर साहब में पाये जाते हैं जो संसार में विदेह होकर शब्द रूप रहे, और अब भी उसी तरह मौजूद हैं। अगर निश्चय न हो तो उनकी बानी से समझिए, और खुले नेत्रों से देखिए सतगुरु के बचन—

सब वजूद के अंदरे, हैं मौजूद कबीर।
मोहि सुलभ कर देखिए, सबही में हौं पीर॥
रहा विदेह देह धरि आया, काया कबीर कहाया।
युगन-युगन के भूले हंसा, रामानंद चेताया॥
लोहू हाड़ चाम ना मोरे, मैं तो आगम बासी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हम हैं पुरुष अविनाशी॥

अब इसकी पहचान यों करके देखिए कि जब देही शब्द का कोई आकार नहीं दिखाई पड़ता तो अखंड शब्द, जो निरंकार है, उसका आकार कैसे होगा ? इसलिए जिसका आकार नहीं, वही विदेह है और अखंड शब्द सारशब्द है जिसको सतगुरु ने अक्षर से रहित निःअक्षर निःतत्व बताया है। देखिए सतगुरु बचन—

निःअक्षर वह रूप अनूपा। सारशब्द निःतत्व स्वरूपा॥
साखी : वहाँ जाहुगे जबहिं तुम, तब सुधि रहै न देह।
पाँच तत्व गुन तीन नहिं, ऐसा शब्द विदेह॥
अक्षर में है बास हमारा। जो बूझै सो उतरै पारा॥
जैसे बसत फूल पर बासा। आदि अक्षर संग शब्द निवासा॥

सतगुरु कबीर साहब ने इस सारशब्द सतपुरुष विदेह स्वरूप अखंड मूर्ति से मिलने को बताया है। बिना इसके और किसी उपाय से जीव अपने अमरलोक को नहीं जा सकता। देखिए सतगुरु बचन—

पक्षी का खोज मीन का मारग, कहैं कबीर दोउ भारी।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, मूरति की बलिहारी ॥
साखी : शब्द - शब्द बहु अंतरे, सारशब्द मथ लीजै।
कहैं कबीर जहँ सारशब्द नहिं, धृक जीवन सो जीजै ॥

पूरणदास साहब महाराज कृपानिधान ने सारशब्द का अभाव करके निर्णय का नाम बताया है। क्या कोई निर्णय को जानता था कि कौन वस्तु है ? ऐ भाइयो, यदि निर्णय भी कोई वस्तु हो, और वह अविचल, अखंड तथा विदेह और सब का कर्ता, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक भी हो तो बेशक उसे माना जाय। लेकिन ऐसा है नहीं। सारशब्द ही वह वस्तु है जिसको खोजना चाहिए। पूरणदास साहब के कथन पर चलने से जीव सत्यगति को नहीं पहुँच सकता है। उनका ज्ञान निरंजन का ज्ञान है, जिससे बचना चाहिए।

टकसार—टकसार उसे कहते हैं जहाँ से वस्तु पैदा होती है इस तरह पर सतगुरु ने चार टकसारें बताई हैं, प्रथम सारशब्द टकसार, दूसरी जीव टकसार, तीसरी पारख टकसार, चौथी सोहं टकसार—यह चार टकसारें हैं।

(१) सोहं टकसार से पवन का भाव होता है जिससे नौ सोहं प्रकट होकर जीव को फँसाते हैं। जीव इसका आधार लेकर अपने विदेह रूप को छोड़ कर देही बंधन में पड़ता है—

साखी : नव सोहं के परे है, दशवाँ सोहं सार।
सो समरथ का बैठका, धर्मनि करो बिचार ॥
सोहं संग जीव आवे जाय। सोहं काल सबहिन को खाय ॥

(२) पारख टकसार से परखने का भाव होता है जिससे हर

एक वस्तु का परिचय होता है, इसी से जीव को कहा है—परख भया टकसार।

(३) जीव टकसार से ज्ञान का भाव होता है, इसलिए कहा है—पारख रूपी जीव है, लोह रूप संसार।

(४) सारशब्द टकसार से विज्ञान का भाव है जिससे मुक्ति होती है—सारशब्द टकसार है, हृदया माँहि विवेक।

अब देखना चाहिए कि किस टकसार से किसका मेल है। सोहं से पौन का मेल, पारख से जीव का मेल, जीव से सारशब्द का मेल हुआ, जिससे जीव का पक्ष हुआ। जब तक वह अपनी टकसार में नहीं मिलता, उसकी मुक्ति नहीं होती। इसलिए उसको अपनी टकसार सारशब्द को खोजना चाहिए कि वह कहाँ है और किस तरह मिलेगा।

अपनायत व परायत—सतगुरु के वचन दो प्रकार के हैं—(१) अपनायत, (२) परायत। अपनायत क्या है, और परायत क्या है? अपनायत उसे कहते हैं जिससे अपना कुछ कार्य हो, परायत वह है जिससे कार्य न हो, अर्थात् हानि हो। जहाँ तक सतगुरु का उपदेश सारशब्द से मिलने का हुआ है, उसे अपनायत जानो और जहाँ तक जगत का व्यवहार और त्रिलोकी व त्रिलोकीनाथ के देश का वर्णन हुआ है उसको परायत समझो, क्योंकि तुम इसी त्रिलोकी में फँसे हो और सतगुरु उससे निकालता है। जब तक इस अपनायत व परायत वचन को न समझोगे, तब तक तुम्हारा छुटकारा न होगा। परायत पराई तरफ़, और अपनायत अपनी तरफ़ ले जाती है।

क्षर, अक्षर, निःअक्षर—देखना चाहिए कि क्षर, अक्षरादि किसे

कहते हैं। क्षर माया है, अक्षर जीव और निः अक्षर मालिक है, जिस को सारशब्द कहते हैं। निःअक्षर पुरुष से जीवात्मा हुई और अक्षर आत्मा से क्षर माया हुई, जिसमें जीव उलझा है। क्षर माया ने अक्षरात्मा को पकड़ लिया, और अक्षरात्मा अपने क्षर के साथ भूल गयी, उसके फंद में ऐसी बँध गयी कि छुट्टी नहीं पाती––

शब्द : आपन पौ आपहिं से बिसरो।
जैसे श्वान काँच मंदिर में भ्रम ते भूंकि मरो ॥

इस तरह पौ पद का निरवार करके आत्मा सत्य-गति को पावेगी।

नीर क्षीर का करै निबेरा। कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥

जब क्षर माया अक्षर आत्मा में लय हो जावे और अक्षरात्मा अपने सारशब्द निःअक्षर परमात्मा में समा जाय तब छुट्टी मिल जाय। जब तक यह सामान नहीं होता, कभी मुक्ति नहीं होती। यह सब सामान सतगुरु की शरण में जाने से प्राप्त होते हैं––

गुरु पूरा होय सोई लखावे। बांह पकड़ लोक पहुँचावे।

इस तरह पर तीन अक्षर हैं––कूट अक्षर माया को, गूढ़ अक्षर आत्मा को, और निःअक्षर परमात्मा को कहा गया है। देखिए 'अक्षरखण्ड चौपाई'––

अक्षर तत्व भेद पहिचाना। निःअक्षर निःतत्व बखाना ॥
अक्षर आवे अक्षर जाय। अक्षर काल सबहीं को खाय ॥
अक्षर एक सकल घट होई। बिनु सतगुरु पावे नहिं कोई ॥
अक्षर माहिं सो अक्षर होई। बिनु सतगुरु बूझै नहिं कोई ॥
अक्षर सुनि जो ध्वनि लौ लावे। स्थिर होय अक्षर मिल जावे ॥
ज्ञानी होय सो अक्षर जाना। अक्षर माहिं खसम पहिचाना ॥
अक्षर में है बास हमारा। जो बूझै सो उतरै पारा ॥

अक्षर की पावे सहिदानी। कहैं कबीर छूटै सो प्रानी ।।
एक अक्षर का नाम जो पावे। योनी संकट बहुरि न आवे ।।
साखी : शब्द सुरति अक्षर मिले, रूप वरण हो एक।
कहैं कबीर भवसागर तरै, निःअक्षर की टेक ।।
अक्षर पारस आदि है, जो लखि पावे कोय।
कहैं कबीर सो अक्षर मिलै, हंस हिरंबर होय ।।
कहैं कबीर एक प्रेम बिन, सब दुनिया है अंध ।।
अक्षर बूझे प्रेम तें, तब छूटै जम फंद ।।

अब निरंजन के क्षर, अक्षर का निरवार देखिए जिसमें बड़े-बड़े जीव बँध गये, कोई उबर न सका । निरंजन काल ने इस आत्मा को फँसाने के हेतु अपने क्षर, अक्षर और निःअक्षर अलग बनाये हैं, जिससे जीवात्मा उसके चंगुल से निकल न सके। देखिए सतगुरु बचन—

क्षर मकार को कहत हैं, अक्षर है आकार।
रं निःअक्षर ब्रह्म है, राम निःअक्षर पार ।।

मकार शब्द क्षर हुआ, अकार अक्षर है, रकार निःअक्षर है। रकार ओंकार निरंजन का रूप है व मकार आद्या का रूप है। ओंकार से वेद, वेद से शास्त्र और शास्त्र से पुराण हुआ, जिसमें जीवात्मा बाँधा गया। बड़े-बड़े ऋषीश्वर बेचारे व पीर औलिया इसमें भूल रहे हैं। वह निरंजन काल के क्षरादि देह में त्रिकुटी स्थान से लेकर दशवें द्वार तक हैं और सतगुरु का निःअक्षर काया से बाहर है—

साखी : डोरी एक अनूप है, अधरे दर्शन होय।
काया से बाहर लखै, हंस कहावे सोय ।।

कोई-कोई महात्मा सोऽहं को भी निःअक्षर कह गये हैं। वह निःअक्षर पद बिना सतगुरु की शरण गये प्राप्त नहीं हो सकता। इस पद का लखाव तभी हो सकता है जब भेदी सतगुरु मिलें और दया करें। देखिए भेदसार—

चौपाई : सारशब्द पावेगा सोई। जाको सतगुरु पूरा होई॥

साखी : धरती अकाश के बाहिरे, योजन आठ प्रमान।
तहाँ सुरति को तानिए, हंस करै विश्राम॥

जब निरंजन, आद्या के फंद से यह जीव न निकल सका तब सतगुरु विदेही ने आकर अपने ज्ञान का प्रकाश किया, और जो फंद निरंजन ने लगाये हैं, उन्हें बता कर उनसे निकलने का उपदेश किया। इस हेतु सतगुरु ने कहा है—

साखी : समुझि बूझि सतमत गहै; सोई संत सुजान।
बिना भेद खाली घड़ा, सो नर बैल समान॥
कोटि जाप संसार में, तासे मुक्ति न होय।
गुप्त जाप सत्यपुरुष का, जानै बिरला कोय॥

अफ़सोस की बात है कि सतगुरु कबीर साहब के इस सच्चे मत को कोई नहीं समझता। बिना समझे निरंजन के ज्ञान में पड़ कर लोग सतगुरु से विरोध करते हैं और उसके भेदियों व ज्ञानियों को निन्दक समझ कर बुरा-भला कहते हैं—

आँधरि गुष्टि सृष्टि भै बौरी। तीन लोक में परी ठगौरी॥

यह संसारी बिचारे क्या करें, निरंजन ने वेद-शास्त्र बना कर ऐसा ज्ञान ही दे रक्खा है कि वह आत्मा के रोम-रोम में भिद गया है। अब सतगुरु का ज्ञान कहाँ समाये? वह धन तो बड़े भाग्यवान को ही प्राप्त होता है, जो सतगुरु के ज्ञान-ध्यान की तरफ़ चलते

हैं, सबको नहीं। शैतान ने जीव को बहकाया कि लौट कर उसी का दम भरने लगा, सतगुरु के ज्ञान से मुँह मोड़ा, उसके सिद्धांत को उलटने लगा, जैसा कि पूरणदास साहब ने बीजक की टीका में किया, जिसे देखकर सब जीव गुमराह होते हैं। इससे सतगुरु का कुछ नहीं बिगड़ा, वह आपही चौरासी के चौरासी में रहे। सतगुरु ने कहा है कि--कहा हमार मानै नहीं, क्यों छूटै यमजाल। सतगुरु के दरबार में उसने म्लेच्छ का काम किया जिससे म्लेच्छ होकर चौरासी में भ्रमण करने लगा। पहले भी इसने नहीं माना और मुक्ति-स्थान छोड़ कर छठी को चला आया। अब न मानेगा तो फिर चौरासी भोगेगा। जो सतगुरु को बेधड़क तन-मन देगा, वह बड़ाई पावेगा और दयाल पुरुष से मिलेगा, नहीं तो--कोटि यतन कर थाकै, बहुरि काल घर जाय।

पूरणदास साहब की टीका का खंडन अनेक प्रकार से हो गया। अब दो बीजक सतगुरु के दिखाता हूँ जिनमें अपने वाक्यों की बहुत थोड़ी टीका करके सब भेद खोला गया है। इनमें से एक है **बीजक मत** और दूसरा है **बीजक सार** जिनमें सारशब्द सिद्धांत ही दिखाया गया है, पारख व जीव जमा नहीं ठहराया गया है। पहले 'बीजक मत' ग्रन्थ देखिए--

शब्द : संतो बीजक मत परमाना।

कइ एक खोजि खोजि के थाके, बिरला जन पहिचाना।।
चारों युग औ निगम चतुर्भुज, गावें ग्रंथ अपारा।
विष्णु बिरंचि रुद्र ऋषि गावैं, शेष न पावे पारा।।
कोइ निर्गुन सर्गुण ठहरावे, कोई जोति में जोति समावे।
नाम धनी को सब ठहरावे, सत्य रूप को कोई न लखावे।।

कोइ सूक्षम स्थूल बतावे, कोइ अक्षर निज साँचा।
सतगुरु कहँ बिरले पहिचाने, भूले फिरे असाँचा॥
वह कर्ता वहु कर्ता की नहीं, पुरुष निरंजन माया।
मरे न जिए न गगन धरनि नहिं, न कहुँ गया न आया॥
लोभ की भक्ति सरै नहिं कामा, साहब परम सयाना।
अगम अगोचर नाम धनी को, सो कोऊ नाम न जाना॥
देख न पंथ मिले नहिं पंथी, ढूढ़त ठौर ठिकाना।
कोई ठहरावै शून्य के कीन्हें, ज्योति एक परमाना॥
कोइ कह रूपरेख नहिं वाके, धरत कौन को ध्याना।
अबहूँ ताहि बनावत निज कर, सुनिए संत सुजाना॥
मूल शब्द कहि धर्मदास ते, तेहि दीन्हों लख आना।
जहँ तहँ कछु बीजक में भाखे, सतगुरु बिन नहिं जाना॥
संत भेद मैं बहु विधि भाषे, सार वस्तु अलग छिपाना।
ऊँचे नीचे मध्य बगल नहिं, गुप्त प्रकट नहिं जाना॥
रोम रोम में प्रगटा कर्ता, काहे भर्म भुलाना।
अजर अमर हैं साहब हमरे, राम नाम सोई जाना॥
निर्गुन सर्गुन तिनके भीतर, कोटि विराट बखाना॥
लोका लोक कछू नहिं तिनके, नाना रूप अरु नामा।
लखै आप में करै उलटि जप, तब पावे निज धामा॥
ज्यों लकड़ी में अग्नि बिराजे, ढूढ़त ठौर ठिकाना।
ता लकड़ी को नशै अग्नि जब, मंथन ते रहि जाना॥
ह्वै गई राख दारु कै जबहीं, रूप औ रेख छिपाना।
यही लखो तुम लौट नाम को, सूक्षम देह निशाना॥
आवागवन कौन को संतो, जहँ को तहाँ समाना।

ग्रौर उपाय नहीं तरबे को, कोटि क्रिया कर ध्याना ॥
नहिं रहनी नहिं करनी जग की, साहब करनी न्यारी।
भोग में योग कर्मों में अकरम, जीतैं माया नारी ॥
एक बार जो भग को भोगे, पावे नर्क अपारी।
यह साहब को खेल निराला, खेले चतुर खिलारी ॥
ताते भेद भक्ति बहु दुर्लभ, समझो समझ बिचारी।
ऐसा खेल संत जन खेलैं, लेवैं मुक्ति पुकारी ॥
अविगत सविगत हाथ जोरि तहँ, ऐसा संत खेलारी।
माया भोगे आनंद लेवे, फेरि लातन से मारी ॥
दै डंका निज रूप समाना, काल कर्म खिसियाना।
ज्यों गूँगे को सक्कर जानो, कहिके कौन बखाना ॥
पक्षापक्ष सबहिं पचि हारे, कर्ता कोइ न बिचारा।
कौन रूप है सच्चा साहब, नहिं कोई निस्तारा ॥
बहु परिचै परतीत दृढ़ावे, साँचे को बिसरावे।
कल्पत कोटि जन्म युग बीते, दर्शन कतहुँ न पावे ॥
परम दयाल पुरुष पुरुषोत्तम, ताहि चीन्ह नर कोई।
तत्पर हाल निहाल करत हैं, रीझत हैं पुनि सोई ॥
विविध कर्म की भक्ति दृढ़ावे, नाना मत के ज्ञानी।
बीजक मत कोई बिरला जाने, भूले फिरैं अभिमानी ॥
कहें कबीर कर्ता में सबही, कर्ता सकल समाना।
भेद बिना सब भरम पड़े हैं, कोई समुझै संत सुजाना ॥

यह 'बीजक मत' ग्रन्थ सतगुरु ने बीजक मत वालों को दिया है जो सिवाय बीजक के और किसी ग्रन्थ व बानी व सतगुरु के वाक्य को नहीं मानते। अपने अनुमान व कल्पना से उसके

वाक्यों में शंका खड़ी करके जीव को जमा व पारख को मूल बताते हैं और कोई-कोई साहब अजपा का ध्यान करते कराते हैं। इस तरह भूलकर अपने सतगुरु के मत से गिर गये हैं, उनके लिए सतगुरु ने कहा है और अपनी कही हुई बानी की ऐसी अच्छी टीका जो भूल में पड़े हैं और उस सारशब्द को नहीं समझते, उनके हेतु कहा है, जिसमें जीव भूल में न पड़े, सारशब्द का परिचय करके चौरासी से छूट जावे, किसी मत से इसका काम न रहे, आँखें खुल जायँ। अब दूसरा ग्रन्थ 'बीजक सार' देखिए जिसमें सतगुरु ने कैसी अच्छाई से हर एक जगह व हर एक शब्दलोक का हाल कह कर, पीछे सारशब्द सिद्धांत मुक्ति के हेतु बताया है। देखिए ग्रन्थ 'बीजकसार'—

धर्मदास कर जोरि के, धरि गुरु चरणन माथ।
सारशब्द निज लोक का, भेद बतावो नाथ॥

चौ० : धर्मदास की देखी प्रीती। कहत कबीर नाम की रीती॥
कहों निजलोक सुनो धर्मदासा। शब्द भेद करों प्रकाशा॥
भूलोक नासूत कहाई। जुलमत वास तासु में भाई॥
भवत शून्य से महाशून्या। महरलोक मलकूत सुगुन्या॥
तहाँ फिरिस्ते रूह रहाई। नाटक चेटक यह तक आई॥
नाना तिल्समात तहँ धावे। नाना रूप रंग धरि आवे॥
सब देवन के रूप धरे तहाँ। औ तारादिक आप बने जहाँ॥
फिर जन लोक जानिए भाई। वही लोक जबरूत कहाई॥
नूर जलाल तहाँ पहिचानो। मुन्नद मुन्नद सुन्नद मानो॥
तेहि के ऊपर लख तप लोका। यह लाहूत जानिए धोका॥
यह तो भँवर गुफा स्थाना। यह तो सोहं पुरुष को थाना॥
तेहिके ऊपर सत्यलोक लखु। द्वितीया नाम हाहूत सो रखु॥

सत्य हक्क जहँ पुरुष बिराजे । तहाँ बीन नाना बिध बाजै ॥
शक्ति लोक फिर ऊपर देखो । वह बाहूत बका को लेखो ॥
तेहि ऊपर शिवलोक बखानो । शिवपुर ताके मध्य पिछानो ॥
वह साहूत सुद्वितिया नामा । तहाँ मुर्शिद बार के धामा ॥
अलख लोक है तीजा नामा । अकह पुरुष वह मुर्शिद धामा ॥
शिवपुर ऊपर सिद्धि सिला लक । तहाँ मुक्ति अरहंताचक ॥
तत्वाँ लोक ऊपर येहाँ । द्वितीया नाम आहूत से जेहाँ ॥
त्रितिया नाम अगम सो लोका । सहस्त्र शीर्षा पुरुष अशोका ॥
अगम पुरुष सो कह निज नामा । यही वेद को है परधामा ॥
सत्यलोक तेहि ऊपर जानो । द्वीतिया नाम याहूत बखानो ॥
तहाँ परम गुरु अविगत स्वामी । वही पुरुष है अकह अनामी ॥
फिर तेहि ऊपर स्वयं प्रकाशा । मकर तार तहँ ते गह दासा ॥
तेहि ऊपर गोलोक बखाना । तेहि के मध्य साकेत पिछाना ॥
वहि जाहूत वही साकेता । अलह राम का वही निकेता ॥
साकेत अयोध्या औ सतलोका । औरहु नाम समुझ का धोका ॥
बहुत नाम साकेत के भाई । तेहि पुर की शोभा अधिकाई ॥
पूर्व द्वार जनकपुर जानो । दक्षिण चित्रकूट पहिचानो ॥
उत्तर में आनंद बन भाई । वृन्दावन सो पश्चिम सोहाई ॥
राम सिया के तन से जाई । यह वन राधा कृष्ण कहाई ॥
भूलोकै लीला विस्तारा । नारायण रघुपति अवतारा ॥
पुनि साकेत के सुनो प्रसंगा । याते होवे बुधि अब चंगा ॥
मध्य साकेत बिराजे नाथा । कोटि बासुदेव जोरे हाथा ॥
कोटिन कृष्ण देवकीनन्दन । करत राम को सदा जु बंदन ॥
कोटिन माधव कोटि गोबिंदा । कोटिन ईश्वर धर चरणारविन्दा ॥

कोटिन ब्रह्मा कोटिन विष्णू । शिव शक्ती जहँ कोटिन मिश्नू ।।
कोटिन दुर्गा रवि शशि कोटी । कर कर स्तुति रामहि ओटी ।।
चर्तुवंश कोटिन अवतारा । हाथि जोरि तहँ बारंबारा ।।
तेहि ऊपर अखंड बैकुण्ठा । तहाँ राम एक रूप अकुंठा ।।
और एक बैकुण्ठ बिष्णु का लोका । सो नीचे रहि गयो झरोका ।।
फिर अखंड बैकुण्ठ के ऊपर । फिर गोलोक अखंड तेहि ऊपर ।।
फिर अखंड बृन्दाबन जानो । राम अखंड तहाँ पहिचानो ।।
परम धाम तेहि ऊपर राजे । सूर्य चन्द्र पुनि तहँ न बिराजे ।।
पिंड ब्रह्माण्ड तहाँ नहिं होई । तहाँ जाय आवै नहिं कोई ।।
तहाँ राम हैं सिया न ताहीं । परम धाम परात्पर आहीं ।।
तेहि ऊपर अखंड साकेता । तहाँ राम नहिं खुदा निकेता ।।
वह साहब को लोक निराला । तहाँ न बंधन कोऊ न जाला ।।
जो वै साहब राम रूप धर । आये परम धाम लीला कर ।।
द्वीतिया साकेत नीचे जो है । युगल रूप धर आपहि सोहै ।।

साखी : आपै साहब सियाराम बिन, करता न्याव निबेरा ।
तहँ औतार करत हैं सेवा, लावैं हुक्म न देरा ।।
कृष्ण आदि तहँ जोरे हाथा, प्रथमैं कथ दे भाई ।
शब्द लोक सब तोसों भाषों, धर्मदास सुन मन चित लाई ।।
येते लोक कहा मैं तुमसे, ये सब सारशब्द के बीचा ।
ज्ञान ब्रह्म के बल अद्वैता, नाम बीच लखि रीचा ।।
षटहु देह निज रूप आपनो, सार शब्द के माहीं ।
सारशब्द निज साहब कहिए, सब रचना रच आहीं ।।
ज्योति निरंजन आदि सब रचना, चारि अवस्था औ चतुबानी ।
ये सब सारशब्द के भीतर, यह लखु अकथ कहानी ।।

पंद्रह त्रिपुटी औ सब देवा, षटहु चक्र अठकुंजा।
ये सब सारशब्द के भीतर, औरों रचना पुंजा॥
पिंड ब्रह्मांड और हू न्यारा, सारशब्द के माहीं।
सतगुरु मिले जबै यह देखे, बिन गुरु नाहिं लखाहीं॥
सारशब्द को जप के कोई, सूक्ष्म दृष्टि सो देखैं।
नाना रचना ताके भीतर, अंत से अगम अलेखैं॥

चौ० : मेहनत कर कहुँ लोक में जाई। तहाँ ते पहुँच रूह अटकाई॥
काहू लोक में रहै जो कोई। तहईं बंधन जानो सोई॥
स्थूल देह तजि लोकहि जावा। ताही बंधन जानो तावा॥

साखी : सारशब्द को ऐसा भावा, लखैं संत मति धीरा।
स्थूल देह तजि लोक लोकगत, बिचरैं निर्भय बीरा॥
सब लोकन में आवे जावे, अब्याहत गति होई।
सूक्ष्म स्थूल नहीं है कोई, एकै शक्ति समोई॥
ताहि शक्ति से लेवैं काम, इच्छा करैं सो होवैं।
तासों विकल्प रूप चतुर्वंशी, तहँते मुक्तानन्द जो होवैं॥
छ शरीर में जगत भुलाना, ब्रह्म ज्ञान को माना।
ब्रह्म सों केवल भयो वे ज्ञानी, सारशब्द नहिं जाना॥
ब्रह्म ज्ञान को पकड़ पकड़ के, फिरु आवे फिर जाहीं।
बना रहट घट घरिआ जैसे, कहुँ ऊपर कहुँ नीचे आहीं॥
सदा काल को दास राम को, गयो माल के भुलाई।
बह्म ज्ञान को भेद है न्यारा, समष्टि रूप में जाई॥
समष्टि रूप है दास राम को, ताको नहिं पहिचाना।
पढ़ि पढ़ि पोथी बहुत कंठ करि, बनिगे नास्तिक अभिमाना॥
कहैं महीं निरंजन महीं कबीरा, महीं राम सब लोका।

मेरी गति कोई नहिं जानै, मैं न मोको धोका ॥
ऐसे कहिके बचन उचारै, ब्रह्मज्ञान जे ठानै ।
सारशब्द ते परिचय नाहीं, ताते भर्म भुलाने ॥
जीव ब्रह्म श्रौर माया सारी, इनते राम हैं न्यारा ।
चित श्रौ श्रचित सबहिन में ब्यापक, ऐसा मोर पियारा ॥
चेतन सहित सबहिन में ब्यापक, पुन सबहिन ते न्यारे ।
सारशब्द में सबही पायो, कहँ लगि कहों पुकारे ॥
सिद्धिन में सब दुनियाँ भूली, करामात को माने ।
सारशब्द जो निर्विकार है, तहाँ न सिद्धि रहाने ॥
सारशब्द में एकै सिद्धी, मुक्ति करै तहँ सेवा ।
सारशब्द का खेल निराला, समझत गुरुमुख भेवा ॥
श्रोहं सोहं श्रजपा जप तें, सारशब्द है न्यारा ।
श्रोहं सोहं सारशब्द बिच, जाने गुरुमुख द्वारा ॥
मन बच परे लोक साहब का, तैसे उनका नामा ।
सारशब्द को जपै भली बिधि, तब पावे वह धामा ॥

चौ० : यह तो ज्ञान गूढ़ है भाई । धर्मदास मैं तोहिं सुनाई ॥
यह तो गुप्त भेद है भाई । सदा गुप्त कर राखो ताही ॥
गुरु सेवक को देव बताई । कपटी से तुम राखु छिपाई ॥

साखी : सर्व लोक गति शब्द सत्य यह, यही निरूपन साखि ।
कहैं कबीर धर्मदास सुन, मूल भेद को भाषि ॥
कोटि शपथ समरथ की, शब्द न बाहर जाय ।
श्ररब शपथ सतगुरुन की, सदा छिपावो ताहिं ॥

देखो भाइयो, सतगुरु ने इस 'बीजक सार' ग्रन्थ से कैसा साफ़-साफ़ सारशब्द सतपुरुष को सबका कर्ता श्रौर सबसे ऊँचा दिखाया

है, पारख को नहीं; और न उसके देखने से जीव जमा पाया जाता है। इसकी जमा तो हर तरह पर सारशब्द ही ठहरता है । तब पूरणदास साहब का जीव-जमा और पारख-मूल का सिद्धांत कैसे ठीक कहा जा सकता है ? तो मुक्ति के वास्ते जीव का सारशब्द सिद्धांत ही सतगुरु ने ठीक किया जो उन्हीं के द्वारा मिल सकता है और किसी उपाय से वह नहीं प्राप्त हो सकता—

साखी : सारशब्द है शिखर पर, मूल ठिकाना सोय।
सतगुरु बिना न पावई, लाख कथैं जो कोय ॥

इस वास्ते पूरणदास साहब की यह टीका तो किसी प्रकार स्वीकार नहीं हो सकती, कारण यह कि उन्होंने सारशब्द का खंडन कर पारख मूल सिद्ध किया और जीव को जमा ठहराया है। जहाँ तक उनका सिद्धांत व कथन देखा गया तो यह मालूम हुआ कि उनको सच्चा सतगुरु नहीं मिला। केवल अपनी उक्ति और युक्ति पर टीका की है जिससे मनमती ज्ञान हो गया। सार-शब्द से उनको परिचय न हुआ, बेचारे निरंजन के जाल में फँस गये। हाँ, वे विद्वान व वेदान्ती जरूर थे, मगर इससे सतगुरु के ज्ञानी नहीं हो सकते। यह सतगुरु-भेद न्यारी वस्तु है और विद्या अलग वस्तु है, इससे भेदी ताले नहीं खुल सकते——

चौ० : पढ़े भरथरी चारो वेदा। बिन सतगुरु नहिं पायो भेदा ॥

जब विद्या का मूल वेद नेति-नेति कहता है, तब समझना चाहिए कि इससे हम सफलीभूत न होंगे । यह विद्या सतगुरुओं की दया से मिलती चली आ रही है। जिस जीव को सारशब्द के जानने वाले भेदी सतगुरु मिलेंगे, उसका कार्य सिद्ध हो जायगा। इस वास्ते मैं हाथ जोड़ कर आप सब भाइयों से विनय करता हूँ

कि पूरणदास साहब की इस टीका पर भूल कर भी भरोसा न करें। अगर अपनी सच्ची मुक्ति चाहते हों तो शब्दविवेकी सतगुरु खोजिए और अपने सारशब्द सतपुरुष से मिल कर जीवन-मुक्ति का फल प्राप्त करिए, नहीं तो अंत समय पछताना होगा। देखिए सतगुरु बचन—

सा० : समुझ बूझ सत मत गहे, सोई सन्त सुजान।
बिना भेद खाली घड़ा, सो नर बैल समान॥

नोट—पूरणदास साहब की टीका के मानने वाले लोग बहुधा ऐसा प्रश्न करते हैं कि शब्द बड़ा कि शब्दी। उनसे पूछना चाहिए कि बचने वाला बड़ा है कि बचाने वाला? तो फिर वह लोग यही कहेंगे कि बचाने वाला बड़ा है। तो "सारशब्द गहि बाँचिए, मानो इतबारा।" इससे यही साबित हुआ कि सारशब्द सबसे बड़ा है।

पूरणदास साहब की टीका का खण्डन समाप्त

●

टीका-खंडन महाराज रीवाँ

अब मैं बीजक की दूसरी टीका पर विचार करता हूँ जिसे महाराज विश्वनाथ सिंह साहब, रईस, रीवाँ ने लिखा है। उन्होंने अपनी भूल से नाम बड़ाई के लिए सतगुरु के कलाम की टीका लिखी है और सारशब्द सिद्धांत की जगह पर रकार शब्द को सारशब्द बताया है। उन्होंने पूरी तरह से जीव को निरंजन काल के हवाले कर दिया। यह रकार व मकार तो विशेष करके निरंजन व आद्या के हैं। यह चौरासी के दाता हैं, मुक्ति के दाता नहीं हैं। इन्हीं की वजह से तो यह जीवात्मा अपनी जमा सारशब्द से विमुख हो रहा है और आवागमन के फंद में पड़ा हुआ है, उससे छुटकारा नहीं पाता। इसी काल व माया से छुड़ाने को तो सतगुरु कबीर साहब शब्दरूप जगत में आये और उपदेश किया और अगणित ग्रन्थ, शब्द व साखी आदि केवल जीव को चेताने के वास्ते कहा है। उन्होंने उनमें रकार व मकार का खंडन करके काल के देश से निकलने की राह दिखलाई और अमरलोक बता कर जीव को चेताया और समझाया है। जिनको सतगुरु भेदी मिल गए, उनका तो पूरा-पूरा मतलब हुआ और होगा, और जिनको सतगुरु भेदी नहीं मिले वे इसी तरह धोके में रहे और रहेंगे, जैसे कि महाराज साहब भी उसी राह चल खड़े हुए, सत्यगुरु के ज्ञानी न हुए, और न सारशब्द से उनका परिचय हुआ। वे चौरासी के चौरासी में रहे, सतगुरु कबीर साहब के बीजक की टीका करके जीवों को धोके में डाल गये। आपकी टीका केवल इस साखी व चौपाई के बल पर हुई है—

साखी : रंग रंग बोलैं राम जी, रोम रोम राकार।
सहजै धुनि लागी रहे, सोई सुमरन सार।।
ओठ कंठ लागे नहीं, जिह्वा नहीं उचार।
गुप्त वस्तु को जो लखै, सोई हंस हमार।।
चौ० : रा अक्षर घट रम्यो कबीरा। निज घर मेरो साधु शरीरा।।

आपका यह मतलब है कि बीजक में राम नाम की प्राप्ति से मुक्ति बतलाई गई है, अन्य साधन से नहीं। ग्रन्थ में सर्वप्रथम लिखा है कि "मुझको बीजक की टीका लिखने की सामर्थ्य न थी। साहब के हुक्म से कबीर जी ने आकर मुझसे कहा कि तुम बीजक का अर्थ बनाओ। साहब का हुक्म है कि जीव बिचारे बिगड़ गये हैं, साहब के लोक को नहीं जाते, सो मैं अर्थ तुमको बताऊँगा। उनके हुक्म से मैंने बीजक का अर्थ बनाया है।" वाह जी वाह, कैसा अच्छा कहा! क्या आप सोते से जग पड़े, या प्रत्यक्ष आपको कबीर साहब मिले ? अगर प्रत्यक्ष मिलते तो ऐसा आप न बहकते। जान पड़ता है कि आप सोते थे, और सोते ही समय बीजक का अर्थ करने लगे। समरथ के कलाम का अर्थ करना क्या दिल्लगी है ? उनके बचन को समझना ही कठिन है। इन लोगों ने अर्थ करके दूसरों को समझाना सहज समझा और तमाम बीजक में अंट-संट बक गए। यह न समझा कि तुक बैठ गया कि नहीं। अगर इन्हीं रामचन्द्र जी से मिलने का उपदेश सतगुरु का होता तो सतगुरु सारशब्द का उपदेश क्यों करते ? रामचन्द्र के उपदेशक तो जगत में बहुत थे। जितने वैष्णव बैरागी हुए हैं, वह सब रामानन्दी ही तो थे और वह सब रामचन्द्र के उपासक थे। तीर्थ, पीतर, पाथर पूजते-फिरते थे जिसका कबीर साहब ने हर तरह पुकार-पुकार कर खंडन किया है, कहीं मंडन नहीं किया। अब उसको सतगुरु ने बहुत दिन पीछे

महाराज विश्वनाथ सिंह के द्वारा मंडन कराया है। भला आपकी इस बात को जो मूर्ख होगा, वह भी कभी मानेगा? जिसका सतगुरु खंडन कर चुके हैं, उसका मंडन कैसे हो सकता है?

टीका-खण्डन——पहले तो यह देखना चाहिए यह साखी व चौपाई जिस पर आपका अमल हुआ है, बीजक की नहीं हैं; और न ऐसा सिद्धांत सतगुरु का है। मुक्ति के लिए सतगुरु का सिद्धांत सारशब्द का है, रकार व मकार शब्द का नहीं। रकार व मकार के जाल में जीव फँसा है, इसी को खंडन करके सतगुरु ने सारशब्द के द्वारा जीव को उबारा है। तब ऐसा कहना उचित नहीं है कि रकार शब्द या राम नाम से मुक्तिगति मिलेगी। मुक्ति केवल सारशब्द की प्राप्ति से मिलेगी और किसी उपाय से यह पदार्थ नहीं मिल सकता। पूरणदास साहब के टीका-खंडन में यह अच्छी प्रकार से दिखलाया गया है कि सारशब्द की प्राप्ति के बिना जीव मुक्ति पद को नहीं पहुँच सकता। हाँ, जिसको वह निःअक्षर व निःतत्व ऐसा नाम, जिसको सारशब्द कहते हैं, मिलेगा तब वह अवश्य मुक्ति को प्राप्त होगा, उसी की प्राप्ति से जीवनमुक्ति होती है। सत्यगुरु ने यह रकार सिद्धांत भूले हुए जीवों को बताया है। जीव इसमें पड़ कर जरा-मरा करते हैं, यह रकार चौरासी का दाता है, कुछ मुक्ति का दाता नहीं है। शास्त्रों में रकार, मकार को मुक्ति का दाता सिद्ध किया है, जिसका सतगुरु कबीर साहब ने खंडन किया है। अब उसके विरुद्ध उसका मंडन महाराज साहब के कथन से कैसे होगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती; क्योंकि सबसे पहले जब जगत की रचना निरंजन ने की तब आद्या ने शिव व विष्णु इन दोनों को अक्षर शब्दों का

लखाव कराया और ब्रह्मा को नहीं बताया। उस समय से यह दोनों अक्षर शब्द जगत में प्रकट होकर राम नाम कहलाये, और योग क्रिया से सभी ने जाना व माना है। यह धोका जीवों को निरंजन व आद्या ने दिया है, और अपना स्वरूप दिखाकर चौरासी में डाला। अब देखिए सतगुरु का बचन दो प्रकार का है—एक अपनायत और दूसरा परायत। अपनायत व परायत का वर्णन ऊपर हो चुका है, मगर महाराज साहब ने परायत बचन को अपनायत समझा है, इस वास्ते दुबारा कहना पड़ा। इस अपनायत व परायत का बहुत अच्छी तरह से विचार करना चाहिए। अपनायत उसे कहते हैं जो अपनी ओर लाता है, और परायत उसको कहते हैं जो ग़ैर की तरफ़ अर्थात् दूसरी तरफ़ ले जावे, याने मुक्ति को अपनायत व जगत को परायत कहते हैं। यहाँ इस साखी व चौपाई में अगर महाराज साहब अपनायत और परायत पर विचार कर लेते तो इस भूल में न पड़ते और धोके में न आते।

साखी : रंग रंग बोले राम जी, रोम रोम राकार।
सहजे धुनि लागी रहे, सोई सुमिरन सार॥
ओठ कंठ लागे नहीं, जिह्वा नहीं उचार।
गुप्त वस्तु को जो लखै, सोई हंस हमार॥

यह पहली साखी रंग-रंग के परायत मुख में सतगुरु ने कही है जिसको सतगुरु बताते हैं कि सब जीवों के रोम-रोम में रंग शब्द बेध रहा है और यह जीव इसी के रंग में रँगा है। अपने सारशब्द सत्यपुरुष को छोड़ कर चौरासी भर्म रहा है, अपने असली रंग को नहीं देख सकता, नकली रंग में पड़ आप ही भूल गया। सतगुरु से मिलकर जो जीव अपने असली रंग सारशब्द में नहीं रमे हैं उनके

निस्बत सत्यगुरु ने कहा है कि–'राम रमै सो कुकुरी का पूता ।' इसी में फँस कर जीव सब भूले हैं। देखिए सतगुरु बचन रमैनी (बीजक)

बिन अक्षर का कौन बंधाना । अनहद शब्द ज्योति प्रमाना ।।
अक्षर पढ़ गुन राह चलाई । सनक सनन्दन के मन भाई ।।

निरंजन ने चाहा कि ऐसा न हो कि जीव अपने अमरलोक को चला जावे, जिससे सब खेल उसका बिगड़ जाय । इस रचना के बाद जब जीव रकार मकार में फँस कर अमरलोक न गये, तब सतगुरु जगत में आये ।

सतगुरु ने कहा है–'तेहि पाछे हम आइया सत्य शब्द के हेत'। इससे मालूम होता है कि सत्य शब्द रकार, मकार अक्षर शब्द से कोई न्यारा है। जो रकार मकार सारशब्द होता तो सतगुरु उसका खंडन करके शब्दसार का उपदेश करने न आते, उन्होंने इसी सार-शब्द को राम नाम कहा है न कि रकार मकार को। जिन्होंने रकार मकार को राम नाम मान कर अपने को रंगा है, वह कभी इस रंग से नहीं छूट सकते । इससे छूटना ही मुक्त होना है। जहाँ तक जीव का फँसाव है वहाँ तक छुटकारा न समझो, और जिसमें छुटकारा है उसे अपनायत जानो । यह रकार शब्द दशवें दरवाजा में निरंजन के मुँह से हो रहा है, जिसका ध्यान शिव जी ने आद्या के सिखाने से योग करके पाया है, और उसीसे उन्होंने योगशास्त्र कहा, जिस वजह से जगत में योग फैला और गोरख आदि योगेश्वर हुए। हर एक को उनके सिद्धांत को देख कर लालच बढ़ी। कोई ओहं में, कोई सोहं में, कोई ररंकार में जा घुसा। अपने सारशब्द को छोड़ कर पराये रंग में रंग उठा। अब बिना सतगुरु यह रंग कैसे छूटे ? न सतगुरु भेदी से यह मिलता है, न उसका यह रंग

जाता है, न मोक्ष पदवी को पहुँच सकता है । देखिए सतगुरु ने अपने इस शब्द में निरंजन का सारा पसारा, उसमें जीवात्मा का फँसाव और साथ ही अमर लोक की विशेषता का भी हाल बताया है—

शब्द : अवधू निरंजन खेल पसारा ।

स्वर्ग पताल रच्यो महि मंडल, तीन लोक बिस्तारा ।।
ठाँव ठाँव तीरथ ब्रत थापा, ठगबे को संसारा ।
अमर लोक जहँ पुरुष विदेही, तेहिं के मूंदे द्वारा ।।
लख चौरासी जीव प्रगट भए, तिनको करत अहारा ।
जारि भूँजि छारा करि डारो, फिर दीन्हों औतारा ।।
भौंरी दै दै जीव भुलाया, का करै जीव बिचारा ।
नारि पुरुष से गाँठ जोरावे, बहु बिधि फंद सँवारा ।।
माया मोह सकल जग फाँसी, आप भए कर्तारा ।
जिनके सिरजे भये निरंजन, सो साहब है न्यारा ।।
काल बली से बाँचा चाहो, गहो शब्द टकसारा ।
कहैं कबीर अमर करि राखों, जो निज होय हमारा ।।

यह रंग शब्द जिसको ररंकार कहते हैं, और रा अक्षर कहते हैं, यही निरंजन काल है । इसको महाराजा साहब जीव का सार बताते हैं, लेकिन यह जीव का सार नहीं है । जीव का सार सार-शब्द है । यह रकार देह का सार अलबत्ता है जिससे शरीर बना और जीवात्मा आकर ऐसा फँस गया कि इससे छुटकारा नहीं पाता। सारशब्द जीव का सार है, जिससे जीव व निरंजन व आद्या व तत्व व गुण सब प्रगट हुए । तो जो सब सारों का सार हो उसको ग्रहण करना चाहिए, उसी की प्राप्ति से मुक्ति होगी, और उपाय

से नहीं होगी। इसलिए मुक्ति का सिद्धांत सारशब्द सतगुरु ने बताया है जो सबसे परे और न्यारा है। रकार शब्द देह में दशवें द्वारे पर त्रिकुटी के भीतर है, और सारशब्द काया से बाहर है। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : डोरी एक अनूप है, अधरे दर्शन होय।
काया से बाहर लखै, हंस कहावे सोय॥
सारशब्द है शिखर पर, मूल ठिकाना सोय।
सतगुरु बिना न पावे, लाख कथै जो कोय॥

चौ० : सारशब्द पावेगा सोई। जाको सतगुरु पूरा होई॥

यहाँ महाराजा साहब कहते हैं कि कबीरजी हमारे पास आए और बोले कि तुम हमारे बीजक का अर्थ करके जो जीव बिगड़े हैं उनको निकारो। भला यह कैसे निश्चय होता है कि महाराजा साहब को सत्यगुरु कबीर साहब मिले? सत्यगुरु की अगर परछाईं भी किसी जीव पर पड़ गई तो वह चौरासी तोड़ने को तैयार हो जाता है। जिसको साक्षात् सतगुरु मिलें वह क्यों अज्ञान में पड़ कर निरंजन की ओर होकर और जीवों को चौरासी में फँसावेगा, क्यों कि उन्होंने तो कोई काम सतगुरु का न किया, बल्कि निरंजन का काम किया है। इससे मुझको एक क्षण मात्र को निश्चय नहीं आता कि उनको सत्यगुरु स्वप्न में भी मिले हों। यह कहना उनका अवश्य झूठ है। कबीर साहब उनको नहीं मिले। जिन-जिन को कबीर साहब दया करके मिले उनको अपने अंग लगा कर अपना रूप दिया और हर तरह पर अपना लिया, यह उन लोगों की बानी, बचन से खुल जाता है। जैसे धर्मदास जी साहब को देखिए कि उनके बचन से सुगंध सत्यगुरु की आ रही है। उनके पीछे सत्यगुरु

मदन साहब जिनको अब ज़माना हाल में सत्यगुरु कबीर साहब मिले उनके बचन को देखिए। उसमें ऐसी सुगन्ध आ रही है कि उसके देखने सुनने से जीव को आनन्द उपजता है, और अपनी सच्ची मुक्ति की चाह करके सारशब्द को ढूढ़ने की फ़िक्र करता है और टीका व अर्थ करने वालों के वचन सुनकर जीव को आनन्द की जगह परम दुःख उपजता है । इसलिए मैं कहूँगा कि भेदी पुरुष इनकी इस बात को कभी न मानेंगे कि उन्हें सतगुरु कबीर साहब स्वप्न में भी मिले हों। जिन्हें अपनायत व परायत की तमीज़ न हुई वे लोग सतगुरु के बीजक की टीका व अर्थ करने बैठ गए। अब दूसरी साखी देखकर बिचार करिए—

साखी : ओठ कंठ लागै नहीं, जिह्वा नहीं उचार।
गुप्त बस्तु को जो लखै, सोई हंस हमार॥

देखो सतगुरु इस साखी से बतलाते हैं कि मेरा हंस वह है जो गुप्त वस्तु को लखे ।

वह कौन है जिसको लख कर हंस गति को प्राप्त होता है ? वह गुप्त वस्तु सारशब्द है, जिसे बिना सतगुरु मिले कोई नहीं लख पाता । देखिए सतगुरु बचन—

गुरु पूरा होय सोई लखावे । बाँह पकड़ि लोक पहुँचावे ॥

जब सारशब्द का लखाव हुआ तब जीव काग से हंस बना । उसको सतगुरु कहते हैं कि उस सारशब्द में ओठ, कंठ, जिह्वा आदि नहीं लगती, क्योंकि सारशब्द निःअक्षर, निःतत्व है और अन्य सब शब्द अक्षर शब्द हैं, जो काया में हो रहे हैं । जब तक कि काया है, तभी तक ये सब शब्द भी हैं, काया छूटने पर यह सब देही शब्द विनश जावेंगे, और वह सारशब्द ज्यों का त्यों हमेशा बना

रहता है। उस सारशब्द के प्राप्त हो जाने से यह जीव काया छोड़ कर उसी अखंड शब्द में समा रहेगा, अर्थात् जहाँ से बिछुड़ा था उसी में मिल रहेगा। इसी का नाम मुक्त होना है। इसी का लखाव जीते जी करना चाहिए, तब जीव की मुक्ति होगी। जब तक अपने जीते जी सारशब्द से परिचय करके जीव आत्मा उससे नहीं मिल रहेगा, और अपना बोध जीते जी नहीं कर लेगा, तब तक धोके में रहना समझो। इसलिए सतगुरु शब्द-विवेकी खोजो, नहीं तो पछताओगे। इन टीकाकारों के फेर में मत पड़ो। देही शब्द और विदेही शब्द की पहिचान होनी चाहिए, कारण यह कि देही शब्द और विदेही शब्द में अन्तर है। देही शब्द सब अक्षर शब्द हैं, और विदेही निःअक्षर शब्द है, जिसको सारशब्द कहते हैं। देही शब्द की साधना से देह मिलेगी, और विदेही शब्द की साधना से मुक्ति होगी। इस विदेही शब्द में कंठ, ओठ व जिह्वा का कुछ काम नहीं है, वह केवल सतगुरु के द्वारा सैन बैन से जाना जाता है। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : शब्द शब्द सब कोई कहै, वह तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख कर लेहु॥

"सारशब्द कछु वस्तु है, सौदा कर भाई।" इसी से देखिए सतगुरु ने कहा है कि 'सारशब्द गहि बाँचिहो मानो इतबारा।' अब जो चौपाई बाक़ी रही उसको देखिए—

चौ० : रा अक्षर घट रम्यो कबीरा। निज घर मेरो साधु शरीरा॥

सतगुरु कहते हैं कि ऐ जीव, तू रा अक्षर में रम रहा, और अपने निज घर की साधना शरीर में करता है; तेरा घर तो शरीर से बाहर है, जहाँ सारशब्द है। वह तेरा घर है, तू उसमें कहाँ

भूला हुआ है। अपने निज घर को देख कर देही बन्धन तोड़ कर, चला जा। सारशब्द से मिल रहो, मुक्ति प्राप्त हो जाय, नहीं तो भटक-भटक इसी में जन्मा-मरा करेगा। सतगुरु का यह बचन भी परायत मुख है, और अपनायत का ज्ञान दिलाता है। इसलिए सतगुरु ने देही शब्दों का खंडन और विदेही शब्द का मंडन कराया है। इसलिए महाराजा साहब का कुल विचार ग़लत हो गया। फिर इसी चौपाई से साफ़ मालूम पड़ता है कि कबीरा नाम भूले हुए जीवों का है, जैसा कि महाराजा साहब ने अर्थ किया है, जो जीव रा अक्षर में रमे हुए हैं वे सतगुरु के नहीं हैं। सत्यगुरु तो सारशब्द या सत्यशब्द का उपदेश करते हैं, कि यह निज घर है, यानी कि तू उसी की साधना से अपने निज घर को जावेगा, इस रकार शब्द को सार मान कर जीव भूले हैं। देखिए सतगुरु बचन—

कबीरा तेरो घर कदला में, यह जग रहत भुलाना ॥

सतगुरु कबीर साहब यह उपदेश कबीरा याने भूले हुए जीव से कह रहे हैं। अब एक बात मुझको और कहनी है। महाराज साहब ने भी अपनी इस टीका में तीन चीज़ों का अनादि होना लिखा है, एक जीव, दूसरे जगत, तीसरे गुरु का। यही सिद्धांत पूरणदास साहब का भी था, क्योंकि वह भी वेदान्ती थे, जिसका खंडन उनकी टीका की समीक्षा में कर दिया गया है; मगर यहाँ पर भी मुझको लिखना पड़ा, कारण यह कि इन्होंने भी वही सिद्धांत दिखाया है। यह सिद्धांत वेदान्त से खड़ा हुआ, जिसको ईसाई व मुसलमान और दयानन्द के मत के लोगों ने सिद्ध कर लिया है, क्योंकि यह बात उनकी समझ में भी न आई, कारण यह

कि यह लोग तो सतगुरु के भेदी थे ही नहीं, इस बात को क्योंकर समझते ? इसको तो सतगुरु का भेदी खूब समझता है । वेदान्ती ईश्वर, जीव और जगत को अनादि कहता है, आर्य्यसमाजी ईश्वर, जीव, प्रकृति को अनादि मानते हैं; मुसलमान ख़ुदा व रसूल व रूह को अनादि कहते हैं; ईसाई ख़ुदा व ख़ुदा के बेटे व रूहउलकुदस को अनादि बताते हैं । इस तरह पर इन सब लोगों ने तीन को अनादि होना समझा व कहा है । यह विचार किसी ने नहीं किया कि अनादि की तारीफ़ क्या है; अनादि किसको कहना चाहिए । बे समझे-बूझे 'अनादि अनादि' पुकार उठे । देखो, अनादि उसे कहते हैं जो किसी से पैदा न हो, उस पर दूसरा हाकिम न हो, वह किसी के अधीन न हो, वह किसी काम में आजिज़ न हो, सर्वशक्तिमान हो, सबका कर्ता हो, अविचल व अखंड हो; वह देख व अदेख दोनों जगह पर पूर्ण हो—जो इन सब सिफ़तों से सम्पूर्ण हो । अगर न हो तो उसको कभी अनादि न कहना चाहिए । यह लोग तो सतगुरु के विरोधी रहे, इस वास्ते इस भेद से आगाह नहीं हुए, किसी को कुछ पता नहीं । अपने-अपने अनुमान से सबको अनादि मान लिया और सब उनकी देखा-देखी ख़ून लगा कर शहीदों में दाखिल हो गये । कुछ विचार न किया कि यह अनादि की सिफ़त में आते भी हैं या नहीं । जीव गुरु के अधीन है और जगत जीव के अधीन है किन्तु ईश्वर किसी के अधीन नहीं है, सब उसके अधीन हैं । दूसरे जगत व जीव सर्वशक्तिमान नहीं पाये जाते । तीसरे हर जगह भर-पूर, हाज़िर वो नाज़िर, व अविचल वो अखंड नहीं देख पड़ते, तो कैसे इनको अनादि कहा जाय ? जब इन सबको अनादि कहा गया तो एक ख़ुदाई में तीन-तीन ख़ुदा कहे व माने जायँगे, क्योंकि

अनादि कहने से इन सबकी एक हालत हो गई। तो कौन आबिद होगा और कौन माबूद होगा, और कौन ख़ुदा होगा और कौन बंदा; कौन गुरु होगा, कौन चेला होगा ? यह सब एक दर्जा और एक रुत्बा के हो गए जो किसी हालत में नहीं हो सकते। इसलिए ऐसा कहना व मानना उचित नहीं है। ख़ुदा या परमेश्वर या गुरु का दूसरा रूप खड़ा करना अधर्म है, और अपनी भूल है। जीव या जगत का रचने वाला एक ईश्वर या गुरु, या ख़ुदा कहो, वही पाया जाता है, क्योंकि यह सामर्थ्य इन सब में नहीं है। देखो, यों हुआ कि कारण से कार्य हुआ; कार्य को देखकर कारण व कारणी जाना जाता है, जैसे कि मकान बना खड़ा है, तो मकान को देख कर उसके बनाने वाले की खबर मालूम होती है कि कोई इसका बनाने वाला है। वैसे ही इसको भी समझो कि जीव व जगत का कोई रचने वाला है, जैसे मकान के रहने वाले हैं और मकान को देखकर हम मकान के बनाने वाले को भी समझ लेते हैं, कि बग़ैर किसी के बनाये मकान नहीं बन सकता है। इससे साबित होता है कि यह सब अनादि के काम हैं, और अनादि इन सबसे अलग है, वह जब चाहे फिर बना लेवे मगर इनमें किसी में यह सिफ़त नहीं है, तब ये अनादि नहीं कहे जा सकते। इनको अनादि कहना मूर्खता है। परमात्मा से आत्मा, आत्मा से जगत खड़ा है। जब आत्मा परमात्मा में जा मिलेगा, जगत भी ग़ायब हो जावेगा। इसमें ज़्यादा हुज्जत करना अच्छा नहीं मालूम होता। महरमी सज्जन इसको खूब जानते हैं। मुझको बहुत बड़ी ज़रूरत यह मालूम होती है कि जिन महात्माओं ने बीजक की टीका कर जीवों को गुमराह कर दिया है, और उनको अपने गुरु पद से हटा दिया है, जिससे

सब सतगुरु से विमुख हुए जाते हैं, उनको रोकना व बचाना चाहिए, जिसमें कि अब जीव गुमराह न हों। सतगुरु के उपदेश के मुवाफ़िक सारशब्द की खोज करलें और मुक्ति पद को हासिल करें, नहीं तो यह पदार्थ किसी तरह पर किसी उपाय से नहीं मिलेगा। अब थोड़े से बचन सतगुरु के दिखाता हूँ जिनमें महाराजा साहब के सिद्धांत रकार शब्द या रंग शब्द या रा अक्षर को सतगुरु ने खंडन करके अपने सिद्धांत सारशब्द का मंडन किया है जो सबसे न्यारा व परे है। देखिए सतगुरु का ग्रन्थ 'भेदसार'—

साखी : निःअक्षर निज गुप्त है, कहों भेद तोहि सार।
जो पावे सो बाँचिहै, नहिं सब काल पसार॥

चौ० : शब्द शब्द सब कोइ बखानै। शब्द भेद कोई नहिं जानै॥
ज्ञानी गुनी, कवीश्वर, पंडित। सबहिन कहैं शब्द के मंडित॥
शब्द सुरति आवे संसारा। आपुहि समरथ रहै निनारा॥
शब्द अगम गति पावत नाहीं। भूल रहे सब भर्म माहीं॥
पाँच शब्द पुरुष उच्चारा। मूल भेद है सबसे न्यारा॥
पाँच शब्द पुरुष से भयऊ। जासों भये सो खोज न लयऊ॥
प्रथम शब्द जो सोहं कीन्हा। सब घट माहिं पोत कर चीन्हा॥
ररंकार एक शब्द उचारी ब्रह्मा विष्णु जपैं त्रिपुरारी॥
ओ ओंकार शब्द जब भयऊ। तिन सबहिन रसना करि लयऊ॥
शब्द स्वरूप निरंजन जाना। जिन यह रचा सकल बंधाना॥
शब्द स्वरूप शक्ति सो बोलै। पुरुष अडोल कतहुँ नहिं डोलै॥
पाँच शब्द शक्ति उपजाया। सारशब्द का मर्म न पाया॥
पाँच शब्द ब्रह्म को रूपा। इनके आगे नाम अनूपा॥
पाँच शब्द अटके सब चूरी। कैसे पावे नाम हजूरी॥

ओहं सोहं जपै बड़ ज्ञानी । निःअक्षर की खबर न जानी ॥
निःअक्षर नाम अहै निज सारा । सो सबहिन ते अगम अपारा ॥
ताका भेद न जाने कोई । बड़े बड़े सब गये बिगोई ॥
पाँच ब्रह्म का कहों ठेकाना । सो साधू कोइ बिरले जाना ॥
यही पाँच काया में जाना । ताके आगे पद निर्बाना ॥
सबके ऊपर शक्ति बिराजे । निःअक्षर ता ऊपर गाजे ॥
भौंर गुफा में सोहं सारा । ररंकार है दसवाँ द्वारा ॥
ओंकार त्रिकुटी के भूपा । नैनन मांहि निरंजन रूपा ॥
इनके आगे भेद हमारा । ताको कोई लहै न पारा ॥
अब मैं भेद तोहिं निज दीन्हा । तासे साथ साथ कर चीन्हा ॥
यह ब्रह्मांड का खेल अपारा । सार नाम ताहू से न्यारा ॥
अनंत कोटि जहाँ बाजा बाजै । सहज सिंहासन पुरुष बिराजै ॥
पाँच शब्द जहँ चौकी देवैं । एक ध्यान पुरुष को सेवैं ॥
अगम ज्ञान है भेद अभेदा । जाकी जुक्ति न पावे वेदा ॥
सहज सहज सब कहत हैं भाई । सहज अगम गम काहु न पाई ॥
महाशून्य के पार प्रकाशा । तहाँ है सत्यपुरुष को बासा ॥
आठ पहर लौ लागी रहेऊ । सहज नाम मैं तासों कहेऊँ ॥
ओहं सोहं रारंकारा । ताके आगे नाम भंडारा ॥
वही नाम सो शक्ति समाधी । ऋषी मुनी योगेश्वर साधी ॥
ताहि शक्ति सुनिबे की बानी । तीन लोक पृथ्वी में जानी ॥
तेहि बानी अटके संसारा । नाम भेद है अगम अपारा ॥
संस्कृत प्राकृत ए दुइ बानी । जामें अटक रहे सब ज्ञानी ॥
कहाँ लों कहों पार नहिं काई । जो आये ते गये बिगोई ॥
कोई कहैं सतलोक को गयऊ । सतगुरु भेद सो निज पद लहेऊ ॥

सतगुरु सतगुरु जगत बखानै । सतगुरु भेद न कोई जानै ॥
सतगुरु सोई ज्ञान प्रकाशा । तासों मिटैं काल की त्रासा ॥
सत्यगुरु सोई सतगुरु दाता । जाकी गति नहिं लख्यो विधाता ॥
सत्य जगत के गुरू कहावें । त्रिदेवा से भेंद न पावें ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । दृढ़ प्रतीत करो विश्वासा ॥
निःअक्षर है मूल सबहीं का । पावे तो कारज होय जीका ॥
नहिं तो और अनेक उपावा । करि करि थके लोक नहिं आवा ॥
यही नाम बिन मुक्ति न पावे । जो कोई कोटि यतन करि धावै ॥
सो है नाम हमारे पासा । पावे सत्यलोक होय वासा ॥
बिरला हंसा पावे भाई । सो मैं तुमको दीन्ह चिन्हाई ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । सार नाम बिन हंस निराशा ॥

साखी : कहैं कबीर धर्मदास सो, लै हो नाम हमार ।
नाम बिना छुटै नहीं, बड़ा काल बरियार ॥
काया काल पसार है, सार नाम है दूर ।
बिरला हंसा पावहीं, देखि ज्ञान भरपूर ॥

देखो भाई, सतगुरु ने ग्रन्थ 'भेदसार' में सार नाम सारशब्द को कहा है, जो निःअक्षर है, रकार व मकार, हंकार व ऊंकार को सार नहीं कहा है, और न मुक्ति का दाता कहा है । यह सब तो जीवात्मा को फँसाने वाले हैं । सतगुरु ने मुक्ति का दाता केवल सारशब्द को ही बताया है जिसकी साधना से जीव निरंजन काल के जाल से छूट कर सतगुरु के देश सारशब्द या अमरलोक, में पहुँचते हैं । रकार शब्द व मकार शब्द व सकार व हकार व ऊंकार इन सबकी साधना से बारम्बार देह मिलती है, जिससे चौरासी भोगना पड़ता है । इनसे छुट्टी नहीं मिलती, तब यह पाँचों

शब्द सारशब्द कैसे हो सकते हैं ? सतगुरु ने इन सबका खंडन करके जीवात्मा को सारशब्द का लखाव कराके छुड़ाया है, क्योंकि यह जीवात्मा उस सारशब्द सतपुरुष परमात्मा का अंश हैं और अपने इस आत्मा को सतगुरु साहब ने हर युग में आ-आ कर काल के जाल से छूटने का उपदेश किया। जिस-जिस ने सतगुरु के उपदेश पर खड़ा होकर सारशब्द गह लिया, वह अपने अमरलोक को चलता हुआ, नहीं तो रह गया। देखिए सतगुरु बचन—

युगन युगन हम आय चेतावा, कोइ कोइ हंस हमारा हो।
कहैं कबीर ताहि पहुँचावों, सत्य पुरुष दर्बारा हो॥

फिर देखिए, सतगुरु ने 'भेदसार' में फ़र्माया है कि जब तक आत्मा को मूलनाम अर्थात् सारशब्द नहीं मिलेगा, यह कभी काल के फंदे से नहीं निकल सकता—

चौ० : अजर नाम अमृत निज नामा। गगन मंडल है ताको धामा।
अमर नाम पारस भौ पारा। बिरला जन कोई लखनेहारा॥
याही नाम विहंगम नीका। पावै कार्य होइहैं जीव का॥
साखी : मूल शब्द निज सार है, सबहीं सार को सार।
जो कोई पावे नाम को, सोई हंस हमार॥
चौ० : सत्यनाम सबहिन मुख भाखा। मूलनाम गुप्त कर राखा॥
मूल नाम और मूल ठेकाना। पहुँचेगा कोई संत सुजाना।
साखी : बारम्बार पुकारिया, मूल नाम निज लेह।
जो कोई हंसा पावहीं, होय हिरंबर देह॥
मूल नाम निजसार है, कहो पुकार पुकार।
जो पावे सो बाँचिहैं, नहीं तो काल पसार॥

फिर देखिए 'विज्ञान सार' में भी सतगुरु ने यही फर्माया है।

चौ० : नगर नपैद पुरुष एक, रहेऊ । ताकर भेद न काहू लहेऊ ॥
निर्गुण सर्गुण सब ठहरावें । ताके आगे भेद न पावे ॥
धर्मदास तोहिं कहों बुझाई । निर्गुण ररंकार है भाई ॥
निर्गुण नाम निरंजन होई । पुरुष भेद पावै नहिं कोई ॥
निर्गुण कहिए सोहंकारा । पुरुष भेद ताहू सो न्यारा ॥
निर्गुण कहिए ओं ॐकारा । पुरुष भेद है अगम अपारा ॥
निर्गुण कहिए मन को रूपा । परम पुरुष है अगम अनूपा ॥
निर्गुण कहिए शक्ति अपारा । पुरुष भेद ताहू ते न्यारा ॥
पवन काल निर्गुण है भाई । पुरुष परम पद काहु न पाई ॥
नज़र न आवे निर्गुण सोई । दृष्टि पड़ै सोई सर्गुण होई ॥
निर्गुण सर्गुण दोनों से न्यारा । जानैगा कोई जाननहारा ॥

फिर देखिए, इस शब्द में भी यही बात कही गई है—

शब्द

भरोसे अनभो के भूले ।
दो दो साखी जोरि के, फीके ज्ञान में भूले ॥
कर्ता काल नहीं पहिचाना, जिन ज़ेर किया जग सबहिन ।
अंत काल कोई काम न आवे, पछतैहो तब सबहिन ॥
त्रिकुटी ध्यान धरैं योगी जन, उनमुन ताड़ी लावें ।
अजपा जपैं शून्य मन राखैं, मूल भेद नहिं पावैं ॥
ओहं सोहं महाकाल है, रारा तेज है सोई ।
निस दिन नाम निरंजन सुमिरै, सो जिव मुक्त न होई ॥
आगे खोज करो भाई साधो, बानी बूझ लख मेरी ।
याही काल महा दुखदाई, अंतकाल लेइ घेरी ॥
कहैं कबीर काहि कहि भाखों, जिह्वा कहा न जाई ।

अपरंपार पार के पारा, सबसे न्यार रहाई ।।

फिर इस शब्द में देखिए, सतगुरु ने हर एक मतान्तर वालों का सिद्धांत दिखाकर फ़र्माया है कि इन लोगों को राम नाम नहीं मिला । सारशब्द ही राम नाम है, जो सबसे न्यारा है । जो इसको पावेगा वह मुक्त होगा, फिर संसार में नहीं आवेगा । देखिए—

शब्द

संतो राम नाम जो पावै, तो बहुरि न भौजल आवै ।।
जंगम तो सिद्धी को धावै, निस बासर शिव ध्यान लगावै ।
शिव शिव करत गए शिव द्वारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
पंडित चारों वेद बखानैं, पढ़ै गुनै कछु भेद न आनैं ।
संध्या तर्पण नेम अचारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
सिद्धि एक जो दूध अहारा, काम क्रोध नहिं तेज हंकारा ।
खोजत फिरैं राज को द्वारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
बैरागी बहु भेष बनावै, कर्म धर्म की युक्ति लखावै ।
घंट बजाय करैं झंकारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
जैनी जीव कबहुँ नहिं मारै, पढ़ै गुनै नहिं नाम उचारै ।
जीवहिं को थापे कर्तारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
योगी एक योग चित धरहीं, उलटे पवन साधना करहीं ।
योग युक्ति ले चित में धारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
यती एक बहु युक्ति बनावै, पेट कारणे जटा बढ़ावै ।
निस बासर जो करै हंकारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
तपसी एक जो तन को दहहीं, बरती त्याग जंगल में रहहीं ।
कंद मूल फल करैं अहारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ।।
मौनी एक जो मौन रहावै, और गाँव में धूनी लावै ।

दूध पूत दे चले लबारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ॥
फक्कड़ ले जिव जबह कराहीं, मुख ते बरतर खुदा कहाहीं ।
लै कुतका कहैं दम्म दारा, राम रहे उनहूं ते न्यारा ॥
कहैं कबीर सुनो टकसारा, सारशब्द हम प्रकट पुकारा ।
जो नहिं मानै कहा हमारा, राम रहे उनहूँ ते न्यारा ॥

देखो भाई, इन शब्दों में कहीं पर सतगुरु ने रकार व मकार को सार कहा है ? सारशब्द को ही सबका सार बताया है । इस आखिरी शब्द में हर एक पंथ वालों का सिद्धांत खोल दिया और साफ़-साफ़ कह दिया कि राम नाम किसी को नहीं मिला । सभी ने पाखंड रच-रच कर मिथ्या उमर गँवाई और चौरासी की धार में बह गए, बिना राम नाम जाने किनारे न लगे । अब महाराजा विश्वनाथ सिंह साहब की टीका को खंडन करके यह कहता हूँ कि महाराजा साहब ने पहले से ही इस क़दर झूठा प्रबंध बाँधा कि साहब ने कबीर को हमारे पास बीजक का अर्थ कराने को भेजा । तब उन्होंने आकर मुझसे अर्थ करने को कहा, तब मैंने बीजक का अर्थ लिखा है, नहीं तो मुझमें सामर्थ्य अर्थ करने की न थी कि मैं बीजक का अर्थ करता । वाह! तिस पर भी यथापूर्वक अर्थ न हो सका, इनसे करोड़हा दरजा अच्छी टीका पूरणदास साहब ने की है कि पारख से सारशब्द ही लेने को रह जाता है। इन्होंने तो और भी नष्ट किया है कि राम जी को, जिन्होंने राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया, राम मान कर टीका लिखी है और सबका सार रंग शब्द कहा है, जो असत्य है । यह टीका तो और भी डुबाने के योग्य है: जिसके आदि में झूठ और अंत में भी झूठ है। यह झूठा कथन आपने आदि ग्रन्थ में जीवों को निश्चय दिलाने के वास्ते

लिख दिया है कि हमारे पास खुद कबीर जी अर्थ कराने को आए। वाह ! छोटा मुँह बड़ी बात ! सतगुरु इनसे अर्थ कराने आया, यह खूब निश्चय कराया। सतगुरु के नाम में बजाय साहब कहने के 'जी' का लफ़्ज़ लिखा है जिससे आपकी भूल दिखाई देती है। सतगुरु बन्दीछोर की शान यानी विषय में जो अपने आचार्य और सबके हादी यानी उपदेशक मालिक हैं, उनको 'जी' कहना बेअदबी है। जब उनको यह तमीज़ न पैदा हुई तब उनकी टीका कैसे सिद्ध हो ? राज्य मद में माते हैं, अपनी शान में तो महाराजा कहलाते हैं और सतगुरु को 'जी' कहते हैं, जो किसी तरह उचित नहीं। और ज़्यादा क्या कहूँ ?

साखी : तेहि पाछे हम आइया, सत्य शब्द के हेतु।

महाराज विश्वनाथ सिंह जी की टीका का खंडन समाप्त

●

दयानंद मत-खंडन

अब मैं थोड़ा सा व्याख्यान आर्य मत के विषय में करता हूँ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कबीर साहब की निस्बत अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ में जो लिखा है सो देखिए। स्वामी दयानन्द कहते हैं कि कबीर साहब के सिद्धांत में कबीरपन्थी लोग कान, नाक, आँख में अँगुली दबा कर शब्द सुनते हैं और यह कि कबीर विद्वान न थे, क्योंकि बिना विद्या के ज्ञान हो नहीं सकता। और परमात्मा शब्द रूप नहीं है, क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। इन तीनों बातों का जवाब अलग-अलग दिया जाता है।

उत्तर १—स्वामी जी को कबीर साहब के सिद्धांत और साधना की कुछ खबर न थी, सिर्फ़ सुनी-सुनाई गाते हैं। कबीर साहब ने आँख, कान, नाक बन्द करके शब्द सुनने का हुक्म नहीं दिया, इसका तो सतगुरु ने खंडन किया है। देखिए सतगुरु बचन—

शब्द

संतो सहज समाधि भली है।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली है॥
जहँ जहँ डोलों सो पैकरमा, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखों, भाव मिटावों दूजा॥
आँख न मूँदों, कान न रूधों, तनिक कष्ट नहिं धारों।
खुले नयन पहिचानों हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारों॥
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कतहुँ न छूटे, ऐसी ताड़ी लागी॥
कहत कबीर सहज अति रहनी, सो प्रकट करि गाई।
दुख सुख ते कोई परे परमपद, सो पद है सुखदाई॥

इस शब्द में सतगुरु कबीर साहब ने साफ़-साफ़ फ़र्माया है कि मेरा सिद्धांत सारशब्द का है। वह निरंतर शब्द है। वह कान, नाक व किसी इन्द्रिय के बन्द करने से नहीं मिल सकता—

साखी : अधर दुलैंचा पीव का, अधरै दर्शन होय।
काया के बाहर लखै, हंस कहावै सोय ॥

सारशब्द की सिफ़त अगम, अगोचर, अविचल, अविगत व अखंड है। वह देही शब्दों की नहीं है। यह तो सतगुरु भेदी के लखाने से मिलता है। स्वामी जी का यह कहना ग़लत है कि कबीर साहब के पंथ में इन्द्रियाँ बन्द करके अनहद शब्द सुनते हैं। देखिए सतगुरु बचन—

चौ० : अनहद बाजा यम को थाना। पाँचो तत्व करैं घमसाना ॥
साखी : जाप मरै, अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय।
सुरति समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥
शब्द न बिनसै, बिनसै देही। कहँ कबीर हम शब्द सनेही ॥

जो लोग कान, नाक बन्द करके शब्द सुनते हैं वे निरंजन काल के उपासक हैं, सारशब्द सतपुरुष के उपासक नहीं हैं। निरंजन काल की उपासना वालों को नजात नहीं मिलती है। सारशब्द के उपासकों को मुक्ति मिलती है।

२—दूसरी बात का जवाब यह है कि कबीर साहब कुछ पढ़े न थे, विद्या से हीन थे—यह कथन स्वामी जी का ठीक नहीं, ग़लत है। कबीर साहब शब्द रूप, विदेह स्वरूप सतगुरु होकर जगत में जीवों को निरंजन काल के जाल से छुड़ाने को और सतपुरुष की भक्ति दृढ़ाने को आये थे, जिससे जीव मुक्ति-गति को पहुँचता है। सत्यगुरु को पढ़ने-लिखने की ज़रूरत न थी। पढ़ना-लिखना जीवों

का धर्म है। वह तो विदेह पुरुष थे। देखिए सतगुरु बचन—

सबकी कहै कबीर कहावै। जेहि लख पड़े सो मों मन भावै॥
देह नहीं औ दरशै देही। कहैं कबीर हम शब्द सनेही॥

वे सब विद्याओं से पूर्ण थे, और सर्वदेशी थे, सब ज़बानों में निपुण थे और हर तरह का ज्ञान रखते थे। वे ज्ञानमय विज्ञानी थे। देखिए सतगुरु बचन—

मसि कागज छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ।
चारों युग की वारता कबीर, मुखहिं जनायो बात॥
आदि अक्षर का मर्म न पावै। पढ़ि पढ़ि अक्षर जीव नसावै॥

परमात्मा ज्ञानी के वास्ते पढ़ने-लिखने की ज़रूरत नहीं है। यह एक दूसरी विद्या है जो सब विद्याओं का मूल है, जिसका प्रकाश सतगुरु कबीर साहब से हुआ। इस विद्या का प्रकाश करने वाला कोई दूसरा नहीं हुआ। उन्हीं से सबों ने इसे पाया है। देखिए सतगुरु बचन—

जो पावा सो महो लखावा। बाँह पकड़ि लोक पहुँचावा॥

तब उसको पढ़ाने वाला कौन है? वह तो शुद्ध चेतन पुरुष थे। पढ़ना-लिखना जड़ जीव या अज्ञानी के लिए है, शुद्ध चैतन्य विदेही पुरुष के लिए नहीं। देखिए सतगुरु बचन—

सबकी कहै कबीर कहावै। जेहि लखि परै सो मो मन भावै॥
मैं तो सबही की कही, मोंको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग जुग होउँ न आन॥

जो सबका कहने वाला है, वही विद्या से हीन कैसे होगा? जो जीवों को फँसाने के वास्ते मुक्ति का झूठा डंका काल पुरुष की तरफ़ से बजा गए, ऐसे सब विद्वानों के वचन

का खण्डन कर उन्होंने सबकी झुठाई व सचाई दिखाया है। ऐसे सतगुरु को विद्या से हीन कहना अनुपयुक्त है। सतगुरु कबीर साहब की महिमा संसार में विदित है। सूर्य को चिराग़ से नहीं देखा जाता। स्वामी जी ने सतगुरु कबीर साहब की महिमा को नहीं जाना, नहीं तो वे विद्वान होकर ऐसा न कहते । विद्वानों का धर्म है कि हर एक महात्मा की लियाक़त का अन्दाज़ा करके याने बहुत समझ-बूझ करके उचित कहें। इसके ख़िलाफ़ कहना अधर्म व विवेक-हीनता है। 'महिमा सतगुरु अपार, बिरले जन जाना'। देखिए, कबीर साहब की महिमा इन महात्माओं ने कैसी की है—

नाभाजी की साखी

पानी से पैदा नहीं, श्वाँसा नहीं शरीर।
कछु अहार करता नहीं, ताका नाम कबीर ॥
बाणी अर्बों खर्ब है, ग्रंथन कोटि हज़ार।
कर्ता पुरुष कबीर हैं, नाभा कियो बिचार ॥

मदन साहब की साखी

शब्दस्वरूपी, ज्ञानमय, दयासिंधु, मतिधीर।
मदन सकल घटपूर है, कर्ता सत्य कबीर ॥

गरीबदास साहब की साखी

गरीब साहब पुरुष कबीर हैं, देह धरी नहि कोय।
शब्दस्वरूपी रूप हैं, घट घट बोलैं सोय ॥

नानक साहब का अर्जनामा

यक अर्ज़ गुफ़तम पेश तो, दरगोश क़ुन करतार।
हक्क़ा करीम कबीर तू, बे-ऐब परवरदिगार ॥

अब मैं यह कहूँगा कि वेद को ब्रह्मवाक्य कहते हैं जो जगत

में ऋषीश्वरों के द्वारा फैला। तो फिर आदि में उनको वेद पढ़ाने वाला कौन गुरु था जिससे वेद को पढ़ कर उसका अर्थ उन्होंने किया, क्योंकि उस समय न कोई विद्या थी और न कोई विद्वान था। विद्या तो वेद के बाद पैदा हुई। जिनसे वेद का प्रकाश हुआ वे तो विद्या से हीन थे, तब उनको कैसे ज्ञान हुआ? क्योंकि स्वामी जी का कथन है कि बिना विद्या के ज्ञान नहीं होता। अगर यह कहें कि उन ऋषीश्वरों में ब्रह्मवाक्य के समझने का ज्ञान था और वे पवित्र आत्मा थे, तो यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बिना पढ़े-लिखे ईश्वर का ज्ञान हो जाए, क्योंकि स्वामी जी ने ऐसी बातों को नहीं माना है। अब अगर यह बात सच्ची है कि उन ऋषीश्वरों को आपसे आप ज्ञान था, वे पढ़ने के मुहताज न थे, तो सतगुरु कबीर साहब की निस्बत यह कहना कि वे पढ़े न थे, बिलकुल अनुचित है। सत्य कबीर साहब तो शुद्ध चैतन्य, भरपूर सब जगह मौजूद हैं। देखिए सतगुरु बचन—

एकै ब्रह्म और नहिं कोई। सर्वत्र रमा कबीर है सोई॥

आदि गुरू का ज्ञान ले, कीन पुकार कबीर।
नाम कहै सो मूल है, ज्ञान लखै सो थीर॥

सत्यगुरु कबीर साहब विदेही पुरुष थे, नुमाइशी देह धारण कर जीवों को काल पुरुष के फंद से निकलने का उपदेश किया। देखिए सतगुरु बचन—

अब हम अविगत से चलि आए।
मेरो मर्म विधिहुँ नहिं पाए॥
ना हम लीन्हा गर्भ बसेरा, बालक होय दिखलाए।
काशी मध्य सरोवर भीतर, तहाँ जोलाहा पाए॥

रहे विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये।
बंस बेलि जीवन के कारण, हंस उबारन आए॥

यह सिफ़त उन महर्षियों में नहीं पाई जाती कि वे सर्वव्यापक व ज्ञानमय विज्ञानी और विदेही कहे जा सकें। कबीर साहब का हर एक युग में जीवों को मुक्ताने के हेतु, जगत में आना हमेशा पाया जाता है। कहीं पर इन वेद प्रकाशकों का इस तरह से आना-जाना पाया नहीं जाता। इससे साबित होता है कि वे शुद्ध चेतन-आत्मा न थे, बल्कि जीवात्मा थे। इन सबका गुरु ब्रह्मा है जैसा कि सतगुरु ने कहा है—

ब्रह्मा वेद सही किया, शिव जोग पसारा।
कर्म की वंशी डार के, पकड़ा जग सारा॥

स्वामी जी ने औरों के आश्चर्य-कर्म को तो नहीं माना, मगर वेद प्रकाशकों में महावाक्य के समझने का ज्ञान बिना किसी के बताए माना है। तो क्या यह आश्चर्य-कर्म की बात नहीं है? अगर है तो सब आचार्यों में आश्चर्य-कर्म मानना उचित है, क्योंकि देखिए चार वेदों के वक्ता जो ऋषीश्वर हुए जिनको परसम्वेद कहते हैं, उन सबको तो आपसे आपही ईश्वर का ज्ञान था, तो स्वसम्वेद के वक्ता को पढ़ने की कौन ज़रूरत थी? वह तो सबका जानने वाला और सबका साक्षी व ज्ञानी था, जो कहता है—

आदि गुरू का ज्ञान ले, कीन पुकार कबीर।
नाम कहै सो मूल है, ज्ञान लखै सो थीर॥

अपने मतलब के लिए अपने आचार्य में आश्चर्य-कर्म माना जाय और दूसरों में नहीं, यह बहुत ही अधर्म है। इसलिए उनका यह कथन ग़लत है।

३—तीसरे, यह कि शब्दरूप परमात्मा है कि नहीं। मैं कहूँगा कि परमात्मा शब्द रूप के सिवाय और कुछ नहीं ठहर सकता है, वह शब्द ही हर जगह भरपूर ठहरेगा, जैसा कि सतगुरु कबीर साहब ने कहा है—

शब्दस्वरूपी साहेबा, सब माँहि समाना।
केवल ज्ञान कबीर का, बिरले जन जाना।।
शब्द धरती शब्द अकाश। शब्दै शब्द भया प्रकाश।
जिन जाना यह शब्द का भेवा। सोई कर्ता सोई देवा।।
शब्दै चारों वेद बखानैं, शब्दै सब ठहरावैं।
कहैं कबीर जहँ शब्द होत हैं, तौन भेद नहिं पावैं।।

अक्सर लोग शब्द को अकाश का गुण बताते हैं, जैसा कि स्वामी जी ने कहा है। मैं पूछता हूँ कि शब्दरूप परमात्मा तो नहीं माना जाता तो कैसे माना जायगा कि वेद ईश्वर-वाक्य है? अगर यह ईश्वर-वाक्य है, तो ईश्वर को भी शब्द स्वरूप मानना पड़ेगा। क्योंकि वेद से और परमात्मा से कार्य व कारण का भाव माना गया है, जैसा कि काशी जी में विशुद्धानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा है कि ईश्वर से और वेद से कार्य-कारण का संबंध है, और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के सफ़ा १२ में स्वामी जी ने कहा है कि वेद शब्दरूप है। इसके सिवाय चाँदापुर की बहस में भी स्वामी जी ने कहा है कि कार्य को देख कर कारण का ख्याल करना चाहिए। जैसा जिसका कार्य है वैसा ही उसका कारण है। तो जब वेद उसका शब्दरूपी कार्य है तो ईश्वर अवश्य उसका शब्दरूपी कारण है, जिससे अब इनकार नहीं हो सकता। तब शब्दरूप परमात्मा के

मानने में कौन दोष है ? जब वेद तीन अक्षर शब्द अ-उ-म को, जिसे ॐ कहते हैं, ईश्वर रूप बताता है, तब निः अक्षर शब्द रूप के बताने वाले को बताया या ठीक-ठीक असली परमात्मा सारशब्द को शब्दरूप परमात्मा बताया, तो कौन बेजा हुआ ? यह बड़ी भूल की बात है कि वेद शब्द को हम परमात्मा के वाक्य मानें और उसके कर्ता को शब्दरूप न मानें। अगर शब्द आकाश का गुण है तो वेद शब्द भी आकाश का गुण ठहरेगा। अगर यह कहिए कि वेद शब्द परमात्मा का ज्ञान है तो वह भी शब्दरूप ठहरा। सिवाय शब्दरूप के परमात्मा और कुछ साबित नहीं हो सकता। देखिए स्वामी सगुनचंद साहब ने अपने ग्रन्थ 'साधारण धर्म' (१२ मार्च, सन् १८६८ ई०) के पृष्ठ ११३ पर सतगुरु कबीर साहब की महिमा इस प्रकार से लिखी है कि रामानन्द जी के बाद कबीर साहब काशी में कबीरचौरा पर योगाभ्यास के प्रताप से माक़ूल पसन्दी व हर दिल अज़ीज़ी याने यथार्थ मानिन्द और सबके प्यारे हुए; गृहस्थों व साधुओं की बहुत बड़ी तादाद उनकी तरफ़ रुजू हुई याने उनके मत में शामिल हुई। हाँ, मूर्ति पूजने का अवश्य उन्होंने ज़ोरदार खंडन किया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के मत की कमज़ोरियाँ दिखाईं, निडर होकर हमले किये, याने उनके मत-मतान्तर को तोड़ हिन्दू और मुसलमानों को भी अपने मत में शामिल किया। स्वामी सगुनचन्द, जो दयानन्द के मत के थे, के कथन से भी साबित होता है कि कबीर साहब बहुत बड़े विद्वान थे जिन्होंने दोनों दीन को परास्त किया था—

साखी : गगन मंडल से उतरे, सतगुरु पुरुष कबीर।
जलज माहिं पौढ़न कियो, सब पीरन को पीर ॥

अज्ञानियों का मत-खंडन

अब कुछ अज्ञानियों के वृत्तान्त में अपने उन गुरुभाइयों की नासमझी और मूर्खता का कुछ वर्णन करूँगा जिन्होंने पहले योग क्रिया में उमर गँवाई और फिर उनको सतगुरु बन्दीछोर मिले। उनके सतसंग से योग-खंडन कराने सत्यगुरु की शरण में आये और फिर अपने पिछले अज्ञान के कारण कुछ बूझ-विचार सतगुरु से न करके फिर लौट कर उसी योग-मार्ग में हो रहे, जिसको सतगुरु ने खंडन किया था। श्वाँस में कबीर-परिचय बताने लगे, और सतगुरु के ज्ञानी बन बैठें। योग-क्रिया में तो पूर्ण थे ही, उस पर सतगुरु का कुछ संक्षिप्त ज्ञान पाया, जिससे बहुधा लोग निश्चय मानने लगे और अपनी अज्ञता से कबीर-परिचय की काररवाई सोहं और ज्योति के द्वारा कराने लगे। इस प्रकार जीवों को सारशब्द की प्राप्ति से हटा दिया, यानी बहँका दिया। आप खुद तो गुमराह थे ही, औरों को भी गुमराह किया, और सिद्ध किया कि सारशब्द गृही को न बताना चाहिए, यह पदार्थ त्यागियों के लिए है। सतगुरु के ज्ञान में गृही और त्यागी दोनों बराबर हैं। केवल त्याग पद गृही के चिताने व उपदेश के लिए रख दिया है, और सब गृही उनकी सेवा व बंदगी के लिए हैं। मैंने जहाँ तक देखा है, कोई हुक्म सतगुरु का ऐसा नहीं है जहाँ कि यह विचार किया गया हो। सतगुरु का उपदेश व ज्ञान सब जीवों पर एक-सा है, और सारशब्द से मिलने को उन्होंने सभी से कहा है। सतगुरु ने यहाँ तक फ़र्माया है कि जो सारशब्द से विमुख होगा, वह यमपुरी में रहेगा, मुक्ति पद नहीं पावेगा। तब उनका यह

कथन कि गृही को सारशब्द न बताना चाहिए, कहाँ तक ठीक है। यह तो सतगुरु के हुक्म के विरुद्ध हुआ । इससे तो मालूम होता है कि वह ख़ुद इस पदार्थ से महरूम रहे । मैंने उनके उपदेशक त्यागी को भी देखा है कि वे सारशब्द सोहं को बताते हैं और गृही लोग तो हर तरह पर बेचारे नाक़ाबिल कर दिए गए हैं, उनका क्या ज़िक्र किया जाय । मैंने उन महात्मा साहब का भी दर्शन किया है और उनसे इस बात को पूछा कि आपका यह सिद्धांत सतगुरु के हुक्म के खिलाफ़ कैसे क़ायम हो गया तो यह फ़र्माया कि गृही केवल सेवा करने के वास्ते हैं, उनसे इसकी साधना नहीं हो सकती । इसलिए उनको सारशब्द देना वाजिब नहीं है, यह साधु के वास्ते है । जब सतगुरु की वाणी व वचन से रोका गया, तब चुप हो रहे, कुछ जवाब न आया । यह साहब इस तरह पर कबीर-परिचय कराते फिरते हैं । सतगुरु ने एक जगह पर कहा है कि—**मथै शब्द तब आतम जागै** । तो सतगुरु शब्द मथने को कहते हैं न कि श्वाँस, और आप श्वाँस मथाते हैं । शब्द का मथना तो आप जानते नहीं, श्वाँस मथाने लगे । उसे शब्द मथना जान लिया, और सब श्वाँस मथने लगे । इसी को कबीर-परिचय ठहरा दिया । कबीर-परिचय तो अपने आपको हुआ नहीं । अगर कबीर परिचय होता तो ऐसा न कहते । श्वाँस कबीर नहीं है, श्वाँस तो वायु है, और वायु एक तत्व है, और तत्व जड़ हैं । इसके विपरीत सतगुरु चेतन शब्द रूप, सबका उपदेशक, मुक्तिदाता है। तब उसको वायुरूप कह कर जड़ का परिचय करने से सत्यगुरु का परिचय कैसे होगा ? यह तो साफ़-साफ़ अज्ञानियों को धोका देना है, इसको कबीर-परिचय नहीं कहते । कबीर नाम चैतन्य आत्मा

का है, जिसका परिचय सतगुरु की दया के बिना जीवात्मा को नहीं हो सकता। हाँ, अगर सत्यगुरु की आज्ञानुसार शब्द का मंथन करे तो परिचय अवश्य हो सकता है, तब सबमें वह चैतन्य पूर्ण आत्मा देख पड़ेगा जैसा कि सतगुरु मदन साहब ने 'नाम प्रकाश' के तीजा भेद में कहा है। देखिए 'नाम प्रकाश'—

तीजा भेद मैं कहों गम्भीर। जाहि भेद से मिले कबीर।।
गुरु कबीर का सब घट वासा। गुप्त प्रकट कछु अजब तमाशा।
जहाँ संत तहँ प्रकट भयऊ। जहाँ असंत गुप्त तहँ रहेऊ।।
गुप्त प्रकट कहु कैसे बूझै। बिन गुरु ज्ञान आँख नहि सूझै।।
सब की कहै कबीर कहावै। जेहि लखि परै सो मो मन भावै।।

साखी : आदि कहा अब कहत हैं, अन्त कहेगा सोय।
सो वक्ता जेहि लखि परै, तेहि गुरु परिचय होय।।

चौ० : आप कहै आप निरवारै। आपै तरै आप को तारै।।
तारन तरन आप है भाई। गुरु सेवक दुइ नाम धराई।।

साखी : आदि गुरु को ज्ञान लेइ, कीन पुकार कबीर।
नाम कहै सो मूल है, ज्ञान लखै सो थीर।।
देत लखाई आपनो, आप कबीरा साखि।
मदन सोई जन बूझही, जाके दिल की आँखि।।

झूलना : तुम जानते हो हम कौन हैं जी, तुम खूब हमें पहिचानते हो।
हमें बिना तुम्हें कौन कहै, इस भेद को क्यों तुम जानते हो।।
हम नहीं खैर तुम ही सही, हमें काहे को बीच में सानते हो।
कबीर कहैं तुम हमीं में आयके, पैठ के ज्ञान बिचारते हो।।

चौ० : कासे कहों कहा नहि जाई। मेरी गति कोई जानै नहि भाई।।
हमी दास दासन के दासा। अगम अगोचर हमरे पासा।।

इहाँ उहाँ पाहीं दुइ ठाऊँ। सत्य कबीर कलि में मोर नाऊँ ।।
जो लेता हमहीं पुनि सोई। नाम धरे भूला सब कोई ।।

साखी : मैं तो सबही की कही, मोको काहु न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, युग युग होउँ न आन ।।
मसि कागज छूवों नहीं, कलम गहों नहिं हाथ।
चारों युग की महातम कबीर, मुखहिं जनाई बात ।।
बिन गुरु ज्ञान दुन्द भौ, खसम कही मिलि बात।
युग युग सो कहवइया, काहू न मानी बात ।।
पूरो पूरण प्राण, प्राण ते और न कोई ।
काया वीर कबीर, परम गुरु निश्चय सोई ।।

चौ० : गुरु कबीर सत्य साखी दिया। जो नहिं मानै ताको छिया ।।

साखी : समझ बूझ सतमत गहै, सोई संत सुजान।
भेद बिना खाली घड़ा, सो नर बैल समान ।।

अब देखिए भाइयो ! सतगुरु ने इस 'तीजा भेद' में कहीं पर श्वाँस मथ कर कबीर-परिचय होना कहा है ? उन्होंने सबमें पूर्ण आत्मा का लखाव कराके अपने को और जीवात्मा को एक रूप दिखाया है कि हम तुम एक रूप, एक जात, एक वस्तु हैं, अर्थात् मुझमें और तुझमें कुछ भेद नहीं है। मैं विदेह होकर सब घट में व्यापक हूँ। तू देह धर कर बन्धन में पड़ा है । तू अपने रूप से मेरे रूप को मिला कर देख ले और जो तू है सो मैं हूँ--जो मैं हूँ सो तू है। जब इसी तरह पर इसकी आँखें खुलें और देखें, तब कबीर-परिचय होगा । कबीर-परिचय होना दिल्लगीबाज़ी नहीं है, जैसा सतगुरु ने कहा है—

देत लखाई आपनो, आप कबीरा साखि।
मदन सोई जन बूझिहैं, जाके दिल की आँखि॥

गुरु-परिचय को कबीर-परिचय कहते हैं, श्वाँस-परिचय से कबीर-परिचय नहीं हो सकता। दूसरे एक और महात्मा हैं, जो उनके हमपल्ला हैं। वह कंठ में कबीर-परिचय होना बताते हैं, क्योंकि सतगुरु ने सूक्ष्म शरीर के बयान में फ़र्माया है कि 'श्वेत वर्ण ॐकार मात्रा सतोगुण विष्णु देवा।' कंठ कमल में जो श्वेत रूप है वह रूप सत्यगुरु कबीर का है, सो ग़लत है। वह श्वेत रूप कभी नहीं है। सतगुरु शब्द रूप होकर हर घट में व्यापक हैं जिस-को कोई-कोई भेदी जानते हैं। यह इन लोगों ने जगत में मान-बड़ाई के लिए जीवों को बहकाने के लिए अपने-अपने अनुमान से बे-समझे बूझे ऐसा ठीक कर लिया है, कुछ सतगुरु के भेद से नहीं कहते। और न इन लोगों ने अपने सतगुरु से कुछ इसका बूझ-विचार किया, अपने मनमतज्ञान से ऐसा ढोंग फैला रहे हैं। उन का यह कथन कभी ठीक नहीं है, केवल धोका देने के लिए है। सतगुरु का बारम्बार हुक्म युग-युग से यह चला आ रहा है कि सत्य शब्द का परिचय करो और कराओ। यह हुक्म नहीं है कि कंठ में कबीर-परिचय करो या श्वाँस मथ के करो या कराओ और न यह हुक्म है कि गृही जो चैतन्य है उनको सारशब्द न बताओ। सिर्फ़ यह हुक्म अलबत्ता है कि 'गुरु सेवक को देउ बताई, कपटी से तुम राखु छिपाई।' इसमें क्या गृही हो, क्या त्यागी, जो सतगुरु से कपट रखता हो उसको मत दो, इस वास्ते कि वह गुरु का सेवक नहीं है। इसी कारण से जान पड़ता है कि यह लोग इस पदार्थ से महरूम रखे गए हैं। क्योंकि इनके दिल में बहुत ज़्यादा

कपट भरा है। उनका ज्ञान प्रकट होने से जाना गया है कि यह लोग पूरे तौर से जैसा चाहिए अपने सतगुरु के बचन पर खड़े नहीं हैं, और न सतगुरु के कलाम पर सिर दिया है। यह बात बहुत मुश्किल है, जैसा कि कहा है—"सरबरी बे सिर दिए किसको मिली"—

सतगुरु के दर्बार सीस दे खेल लो, कहै कबीर सुख होय परपद मेल लो

और जो इन लोगों ने यह क़ाबिलियत पैदा की होती तो आज वह भी सतगुरु के दरबार में बड़ाई पाते। उससे विमुख होने का फल तो उनको मिला और मिलेगा, देखिए सतगुरु बचन 'बड़ा सुरति शब्द सम्वाद' में जो द्वापर में सतगुरु ने कहा है, और उस समय में सतगुरु कबीर साहब ने अपना नाम करुणामय कृपाल रखा है—

चौ० : सत्य शब्द का परिचय करई। निःस्वाँसा निःआशा रहई ॥
सूझ बूझ और समझ करेहा। जागृत अलख औ ध्यान विदेहा ॥

साखी : सुरति अति आधीन होय, गहै नाम की डोर।
शब्द स्वरूपी साहेबा, ज्ञान पिआवैं घोरि ॥
सेवक सुरति समानिया, शब्द गुरू पहिचान।
शब्द सुरति जब एक भयो, तब खुल्यो ज्ञान की खानि ॥
जागृत रूपी जीव को, जगत ब्रह्म को भास।
निःअक्षर निःतत्व को, मध्य आप प्रकाश ॥
ज्ञान पदारथ तब मिले, जब गुरु होंहि दयाल।
अदरश दरश साहेब को, करुणामयी कृपाल ॥
शब्द परे वह शब्द जो, सो गुरु कहो बुझाय।
ज्ञान भानु प्रकाश करि, जाते पड़े लखाय ॥

साधू संत बिलासिक, जाहि हृदय मत सार।
ताहि हेत से निर्भयो, सुरति शब्द उपचार॥

सत्यगुरु का उपदेश व हुक्म हर युग में सारशब्द या सत्य-शब्द का रहा। जिसको सारशब्द मिला उसको कबीर-परिचय हुआ और होगा। देखिए सतगुरु बचन —

शब्द कमान सतगुरु दिया, तानै कोई सूरा।
सुरति का तीर लगाय के, मारै कोई पूरा॥

इसके खिलाफ़ जो कोई होगा, वह सत्यगुरु का सेवक नहीं कहा जा सकता। वह निरंजन काल का सेवक होगा, जो हमेशा उसकी यमपुरी में रहेगा। सत्यगुरु के ज्ञान बिना वह सतगुरु के देश को नहीं जा सकता। इसलिए सत्यगुरु ने फ़र्माया है कि "अलग भटकना भर्म है, परदा भीतर पेख।"

साखी : आगे खोजै गिर पड़ै, पाछे खोज भुलाय।
सारशब्द से आगे खोजें, बाँधा यमपुर जाय॥

इसलिए ऐ भाइयो ! ऐसे गुरुआ लोगों से बहुत होशियार रहना चाहिए। उनके फंदे में न पड़ना, नहीं तो हमेशा यमपुरी में रहना होगा। फिर पछताओगे। सारशब्द के दाता सतगुरु को खोजो, जिनसे सत्य मुक्ति गति मिले, झूठी मुक्ति में इनके बहकाने में मत पड़ो।

कुछ थोड़े से सिद्धान्त जो जगत में मुक्ति के लिए निरंजन आद्या की ओर से देह में मौजूद हैं, उनके बारे में सुनिए।

निरंजन व आद्या ने जीवात्मा को फँसाने के वास्ते पाँच अक्षर शब्द देह में बनाये हैं और असल में यह सब अक्षर शब्द निरंजन व आद्या के रूप हैं। इनमें निःअक्षर शब्द कोई नहीं है।

देखिए रकार, मकार, सकार, हंकार व ऊँकार यह पाँच शब्द ब्रह्मांड में त्रिकुटी से लेकर दसवें दरवाज़े तक हैं जिनके कारण यह जीव देह में फँसा है। यह हर समय आत्मा के संग रहते हैं, कभी आत्मा को छोड़ते नहीं। जब सतगुरु भेदी मिल जाय तो उसकी दया से निःअक्षर शब्द को लख कर अलबत्ता जीव निकल सकता है। यह शब्द देह में कर्ता हैं, इनसे देह बनती व बिगड़ती है। इस निरंजन काल ने अपना एक क़ायदा जीवों को फँसाने के लिए भक्ति-मार्ग में बनाया है। इसमें कहीं-कहीं अक्षर शब्दों के मिलने की राह बतायी है और बिल्कुल झूठी मुक्ति रखी गई है। पहिले चार वेद और छः शास्त्र व अठारह पुराण हैं और फिर क़ुरान व अंजील वग़ैरह-वग़ैरह जिसको अज्ञानी जीव आसमानी किताब कहते हैं और ब्रह्मवाक्य समझ कर उस पर अमल करते हैं और उसके बल पर सत्यगुरु के ज्ञान से टक्कर लगाने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन आख़िर में ख़ुद टक्कर खाकर मुँह के बल गिरते हैं और सारी उमर रोते हैं।

जो-जो इस निरंजनी ज्ञान में महात्मा हो गए, उन सभी ने वेद-किताब के ज़रिये से गुरु कर-करके अपनी-अपनी देह में अक्षर शब्द की खोज की। कोई सोहं में गया, कोई अनहद में गया, कोई रकार में, कोई ज्योति में जाकर जर मरा और उसको नूर-इलाही समझा या ज्योतिस्वरूप निरंजन कहा। इनसे ऋद्धि-सिद्धि लेकर जगत में पीर, औलिया, ऋषि, मुनि कहलाये और देह छूटने पर चौरासी का रास्ता लिए, घाट के पार न लगे। तब सत्यगुरु कबीर साहब जगत में जीवों को मुक्ताने के वास्ते ख़ुद अमरलोक से तशरीफ़ लाये और निःअक्षर शब्द का लखाव कराके

निरंजन काल से उसको छुड़ाया। अब जो कोई सत्यगुरु के बचन पर खड़ा हुआ वह तो भौसागर से पार लगा; नहीं तो वैसा ही जैसा का तैसा निरंजन के जाल में आवागमन के फेर में रहकर चौरासी का नर्क-स्वर्ग भोगता रहा। सत्यगुरु के ज्ञान में विदेही शब्द का ध्यान है, निरंजन के ज्ञान में देही शब्द का ध्यान है। देही शब्द में ध्यान से अक्षर शब्द मिलता है, जिससे बारंबार देह मिलती है। विदेही शब्द के ध्यान से निःअक्षर शब्द मिलेगा, जिसको सारशब्द कहते हैं। उससे देही-बंधन छूट कर मुक्ति मिलेगी। सार-शब्द या निःअक्षर शब्द मुक्ति का दाता है और अक्षर शब्द देही जगत के दाता हैं। देही शब्द के ध्यान से जीव देह में रहेगा, विदेही शब्द के ध्यान से नजात पावेगा।

अमरलोक व मृत्युलोक का वर्णन

सत्यगुरु ने चार लोक दिखाए हैं, जिसमें से एक लोक सत्य-गुरु का है। जहाँ सारशब्द सत्यपुरुष का वास है, उसको अमर-लोक कहते हैं। वह गुप्त है, जिसका लखाव बिना सत्यगुरु के नहीं हो सकता। वही जीवों का मुक्ति-स्थान है। उसी जगह पर पहुँ-चने का उपदेश सत्यगुरु का है। वहाँ पर पहुँचने से जीव काल के देश से निकल कर मुक्त होता है। इसके नीचे तीन लोक निरं-जन काल के होते हैं जिनमें एक आकाश, एक पाताल, एक मृत्यु-लोक है। इन तीनों लोकों के मालिक निरंजन काल हैं। इनमें इन्हीं की दोहाई फिर रही है—

कहैं कबीर काल हैं राजा। जो कुछ करैं उन्हें सब छाजा॥

देखिए सतगुरु बचन—

साखी : मैं सिरजौं मैं पालहूँ, मैं जारौं मैं खाउँ।
अलख पुरुष मैं यहाँ विदेही, मोर निरंजन नाउँ ।।

इन तीनों लोकों में चौदह भुवन भी बनाए हैं और हर एक भुवन में चौदह यम रखवारी के लिए मुक़र्रर हैं कि जीवात्मा निकल न सके। इस तरह पर यह तीनों लोक जीव के वास्ते बतौर जेल-खाना के हैं, जिनके भीतर यह जीवात्मा अपने कर्मानुसार दुःख-सुख का दंड भोगता है, कभी रिहाई नहीं पाता। चार खान, चौरासी लक्ष योनि बनाकर जीवात्मा को उसमें बाँधा गया है। अंडज-पिंडज, ऊष्मज, स्थावर—इन चार खानों की चौरासी में यह चैतन्य आत्मा निरंजन आद्या की कला से तत्व, प्रकृति व गुण के अधीन होकर क़ैद है। बिना सतगुरु के रिहाई नहीं मिल सकती है। सारशब्द सतपुरुष से निरंजन आद्या हुई, इनसे त्रिदेव हुए। त्रिदेव से जगत रचा गया। जगत में चैतन्य आत्मा को अमरलोक से लाकर निरंजन आद्या ने क़ैद किया है जिसमें किसी तरह से वह अमरलोक को न जा सके। आप हाकिम होकर इसको महकूम बनाया और अपना अदल चलाया। तीर्थ, व्रत, जप, तप व पूजा-पाठ, दान-पुण्य इसके उपकार के लिए क़ायम करके इसको फँसाया और धोखा देने के लिए झूठी मुक्ति बताई। रकार, मकार व सोहं, ज्योति का उपदेश किया। यह सब रूप निरंजन आद्या के हैं जिनकी साधना से जीवात्मा अपने अमरलोक को नहीं पहुँचता। लौटकर फिर चौरासी में यह सब डालते हैं, इनसे उबरने नहीं पाता। यह सब धोका है और काल का पसारा है। वेद, शास्त्र, पुराण व क़ुरान बनाकर उसने जीवों को बाँध रक्खा है; किसी उपाय

से छूटने नहीं पाता। यहाँ तक कि पहले अपने पुत्र ब्रह्मा, विष्णु व महेश को भर्मा दिया। उनको भी अपने अमरलोक का रास्ता न मिला तब और जीव की क्या चले? यह भी इसी में अटके पड़े हैं। ब्रह्मा वेद गा रहे हैं, विष्णु माया का जाल फैला कर भक्ति दृढ़ाते हैं, शिव योग उड़ाते हैं। इन सबका सिद्धांत वही ओहं, सोहं व ररंकार, ज्योति तथा अनहद का है। इन्होंने कर्म में जीवों को बाँध कर यंत्र, मंत्र, कलमा में फँसा दिया। निरंजन आद्या ने इनकी सहायता करके खुश होकर ऋद्धि-सिद्धि में इनको गिरा दिया और फिर लौटा कर चौरासी में डाल दिया। कोई उवर कर निकल नहीं सकता, क्योंकि वह स्वर्ग व नर्क में ले जाकर इसको छोड़ देता है। देखिए सतगुरु बचन—

मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर तहँ बिलम्हाया।
विष के लड्डू आनि खिलाया, लूट लिया विषयन की हाट।।

जीव का अमरलोक के जाने का रास्ता बन्द कर दिया—

अमर लोक जहँ पुरुष विदेही, तेहि के मूँदे द्वारा।

सारशब्द सत्यपुरुष परमात्मा से वह जीवात्मा को नहीं मिलने देता, इसलिए सत्यगुरु कबीर साहब ने जीवों को उबारने के लिए हर युग में प्रकट हो-हो कर सारशब्द सत्यपुरुष से मिलने का उपदेश किया और निरंजन आद्या की उक्ति, युक्ति व उपदेश, तीर्थ-व्रत, जप व तप का खंडन करके उस रास्ते का लखाव कराया जिससे यह अपने अमरलोक को जावेगा।

थोड़े से शब्द सतगुरु के लिखता हूँ जिससे यह मालूम होगा कि सत्यगुरु का उपदेश सारशब्द सत्यपुरुष से मिलाने का है, जिसका भेद ब्रह्मादिक को नहीं मिला तो और कोई क्या पावेगा? हाँ, कोई-कोई भाग्यवान मनुष्य सत्यगुरु की कृपा से पावेगा।

शब्द

दूर गवन तेरो हंसा हो, गति अगम अपार ।
नौ, छै, चौदह विद्या हो, नहिं वेद विचार ।
योग जाप तप क्रिया हो, नहिं नेम अचार ।।
नहिं काया नहिं माया हो, नहिं कुल व्यवहार ।
तीन देव तैंतीसों हो, नहिं दशों औतार ।।
पुरुष रूप क्या वरणों हो, गति अगम अपार ।
कोटि भानु ससि शोभा हो, एक रोम उजियार ।।
हंसा उड़ि हंसन मिले, वक होय रहे न्यार ।
साहब कबीर के दीहल हो, निर्गुण टकसार ।।१।।
संतो प्रतीत करे सो पावै ।
यह पृथ्वी की चार दिशा है, काया भेद लखावै ।
बिनसे धरती बिनसे काया, तो जीव कहाँ समावै ।।
स्वाँसा सुमिरै घड़ी विचारै, लगन तत्व में राखै ।
जब जियरा को काल गरासै, कवन नाम गहि बांचै ।।
त्रिकुटी मध्ये ध्यान लगावै, अजपा जाप जपावै ।
सुरति समानी अधाधुंध में, बिन जाने कहाँ जावै ।।
साधु वही सो सेवा जीते, सेवा सतगुरु पावै ।
बलिहारी वहि सत्यगुरू की, जो यह गुफा लखावै ।।
जो पद कहों अकह ते न्यारा, ताहि देखि लौ लावै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न भौजल आवै ।।२।।
ऐसो अविगत अगम अपार, पार कैसे पाइये ।
जेहि खोजत ब्रह्मादिक भूले, विष्णु न पायो भेव ।
जेहि खोजत शिव थकित भयो हैं, सनकादिक सुखदेव ।।

शेष सहस मुख छकित भये हैं, स्तुति करें मुरारि।
ऋग यजु साम अथर्वन थाके, कर न सके निरवारि॥
योगी यती तपी संन्यासी, दीगम्बर दरबेश।
चुंडित-मुंडित नागा मौनी, अरुझि रहे बहु भेष॥
तीरथ ब्रत को यही महातम, पूजत पाहन पानी।
एको सुकृत हाथ नहिं आवै, कहि जो गए मुनि ज्ञानी॥
धरती आकाश पवन अरु पानी, भिन्न भिन्न विस्तारा।
जाको तेज सकल में बरते, सो कस कहिए न्यारा॥
जो कहिये सबही घट साहेब, मृत्यु कहाँ से होय।
कहैं कबीर वाके बलि जैहों, जाके प्राण न होय॥३॥

सुरति मूल ठिकाना जानो, ताहि खोज बैरागिया।
कोइ काया ब्रह्मांड में खोजै, कोई शून्य ठहराइया।
कोइ त्रिकुटी में ध्यान लगावै, गगन गुफा में आइया॥
कहँ काया ब्रह्मांड में खोजै, कहाँ शून्य ठहराइया।
पिंड ब्रह्मांड दोऊ से न्यारा, कहु कैसे लखि पाइया॥
बिन गुरु गम्य कहाँ से पावे, फिर काया धरि आइया।
जब लगि शब्द संधि नहिं पावै, चौरासी में जाइया॥
गुरू जौहरी भेद बतलावै, औघट घाट लखाइया।
सुरति संयोग शब्द सहिदानी, गुरु गम्य लोक पठाइया॥
कोटि ज्ञान से भिन्न पसारा, सुनो मूल निज बानियाँ।
जेहि प्रताप ते हंसा उबरे, सो गति अगम निसानियाँ॥
यह तो संधि सबहिं ते न्यारी, लेहु हंस पहचानियाँ।
कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छूटे नर्क की खानियाँ॥४॥

एक दिन साहब बीन बजाई ।
जली भुम्य पर सत्यगुरु ठाढ़े, पवन रहे ठहराई ।
एकइस पुरी चौदहों बसुधा, सो चक्रित होय जाई ।।
शेष नाग औ राजा वासुदेव, सो चक्रित हो जाई ।
चाँद सूर्य तारागण थाके, कूर्म रहे मुरझाई ।।
सात समुन्दर जब घहराने, तैंतीस कोटि अघाई ।
पृथ्वीराज पृथ्वी पर छाके, इन्द्र रहे अकुलाई ।।
कोई अकाश पाताल बतावैं, कोई द्वारिका जाई ।
राय निरंजन आद्या माया, सोउ छकित होय जाई ।।
कोइ जंगल कोइ देवल बतावैं, कोइ गोकुल ठहराई ।
चौदह खंड बसे यम चौदह, सो भी अंत न पाई ।।
दश औतार विष्णु को कहिए, सभै बहुत सुख पाई ।
सूझ न पड़ै कछु वार पार लगि, यह धुनि कहाँ ते आई ।।
कहैं कबीर सत्यलोक में पुरुष, शब्द उठे घुननाई ।
अमी अंक से कुहक उठी है, सकल सृष्टि रही छाई ।।५।।

संतो शब्द साधना कीजै ।
जौन शब्द ते राम प्रकट भए, तौन शब्द गहि लीजै ।।
शब्दै गुरू शब्द सुनि शिष्य भे, शब्दैं बिरला बूझै ।
सोई गुरु सोइ शिष्य महातम, अंतर गति जेहि सूझै ।।
शब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, शब्द करैं अनुरागी ।
षट दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्द करै बैरागी ।।
शब्दै चारों वेद कहत हैं, शब्दै सब ठहरावैं ।
शब्दै मुनि जन संत कहत हैं, शब्द भेद नहिं पावैं ।।

शब्दै माया जग उपजाया, शब्दै केर पसारा।
कहै कबीर जहाँ शब्द होत हैं, तवन भेद है न्यारा ॥६॥

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ देहु संसारा ॥
यह संसार काल है राजा, कर्म के जाल पसारा।
चौदह भुवन खंड मुख वाके, सबको करत अहारा ॥
मध्य अकाश आप होय बैठे, रूप ज्योति विस्तारा।
तिनका रूप कहाँ लगि बरणों, कोटिन सूर्य उजियारा ॥
सत्यशब्द फूल जहँ फूले, हंसा करैं विहारा।
कोटिन सूर्य चन्द्र तारा गण, एक रोम उजियारा ॥
वही देश में अमृत चुवत हैं, वरषे अमृत धारा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अमर पुरुष दर्बारा ॥७॥

चल सखी देखन जाय तो दुलह कबीर है।
जिनते जुरल सनेह उन्हीं ते रीत है ॥
उबटन मलै दलै तो अंग लगाइए।
युगन युगन का मैल तो तुरत छुड़ाइए ॥
नाका औघट घाट निरख के तकि रहो।
नाँघो झिल मिल नीर परम पद को लहो ॥
जोजन चार अकाश तहाँ चढ़ देखिए।
आगे मारग झीन तो सुरति विवेकिए ॥
श्वेत वरण वह देश सिंहासन श्वेत है।
श्वेत क्षत्र सिर धरे अभै पद देत है ॥
श्वेत ध्वजा फहरात भँवर जहँ गूँजही।
शोभा अगम अपार शब्द घनघोरही ॥

कहैं कबीर धर्मदास ते ज्ञान उचारहीं।
अगम निगम दिखलाय के हंस उबारहीं ॥८॥

नगरिया बावरी भैली ना, जहँ चतुर न पावै राह।
ऊँच शहर बेग़मपुरी, बसे सो बेगम होय।
चौदह शहर मझाय के, आवागवन न होय ॥
साकट सूकर कूकरी, तीनों का मत एक।
लाख यतन समझावै, तबहुँ न छाँड़ै टेक ॥
जंगल जंगल क्या घूमे, जंगल है तेरी देह।
सारशब्द को बूझि के, करो गुरू से नेह ॥
कहैं कबीर नियरे लखो, क्या खोजो बड़ी दूर।
जाको नियरे लख पड़े, सदा रहे भरपूर ॥९॥

संतो सब शब्दै शब्द बखानै।
शब्द फाँस फाँसे सब कोई, शब्दै नहिं पहिचानै।
जो जाको औराधन कीन्हा, तिनका कहब ठिकानै ॥
प्रथमें पूरण पुरुष पुरातन, पाँच शब्द उच्चारा।
सोहं शब्द निरंजन कहिए, ररंकार ऊँकारा ॥
पाँच शब्द औ तत्व प्रकृती, तीनों गुण उपजाया।
लोक द्वीप औ चार खान रच, लख चौरासी बनाया ॥
शब्दै काल कलन्दर कहिए, शब्दै भर्म पुकारा।
शब्दै पुरुष प्रकाश मेटि के, मूँदे बैठे द्वारा ॥
ज्ञानी योगी पंडित सबही, शब्दै में अरुझाना।
मुद्रा साध रहे घट भीतर, काया पाँच ठिकाना ॥
शब्दै निर्गुन शब्दै सर्गुण, शब्दै वेद पुराना।
शब्दै पुनि काया के भीतर, करि बैठे स्थाना ॥

शब्द निरंजन चाचरि मुद्रा, सो है नैनन माँहीं।
ताको जाना गोरख योगी, महा तेज है ताहीं॥
ओं ओंकार भूचरी मुद्रा, है त्रिकुटी स्थाना।
ब्यास देव ताको पहिचाना, चाँद सूर्य सों जाना॥
सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा, भँवर गुफा स्थाना।
सुकदेव ताको पहिचाना, सुनि अनहद की ताना॥
शक्ति शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई अकाश सनेही।
तामें झिलमिल ज्योति दिखावै, जानो जनक विदेही॥
ररंकार खेचरी मुद्रा, दशवाँ द्वार ठेकाना।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, ररंकार पहिचाना॥
पाँच शब्द औ पाँचो मुद्रा, सोई निश्चय माना।
आगे पूरण पुरुष पुरातम, तिनकी खबर न जाना॥
परम पुरुष धर अधर तार है, अधर तार के आगे।
तिनके आगे कौन बतावै, सबै शब्द में पागे॥
सिद्ध साधु त्रिदेव आदि ले, पाँच शब्द में अटके।
मुद्रा साधि रहे घट भीतर, फिर औंधे मुख लटके॥
पाँच शब्द और पाँचो मुद्रा, लोक दीप जम जाला।
परम पुरुष धर अधर जहाँ लों, बूझ बिना सब काला॥
कहैं कबीर बूझके भीतर, बूझ हमारी जाना।
आप खोय आप को बूझै, तब सब ठौर ठिकाना॥१०॥

देखिए भाइयो, इस सारशब्द का पता तुम्हारे त्रिलोकीनाथ ने भी कहीं-कहीं अपने ग्रन्थों में भी दिया है, जिसको तुम ब्रह्म-वाक्य कहते हो, और ऋषि का कलाम मानते हो। मगर इस पर भी किसी की समझ में नहीं आता और न कोई उसकी खोज करता

है। भटक-भटक कर लोग दूसरी ओर चले गए, ओहं, सोहं की साधना करके ऋद्धि व सिद्धि में लिपट गए, और चौरासी को लौट पड़े। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : काहू के वचने फुरै, काहू के करामाती।
मान बड़ाई ले रहा, हिन्दू तुरुक दुइ जाती।।

पहले अपनी 'किताब रब्बी' को देखिए, जिसे वेद कहते हैं, उसमें भी आदि में शब्द का होना कहा है। आदि में नाद था, नाद से बिन्दु हुआ, नाद बिन्दु मिलकर सृष्टि हुई—

साखी : आदि नाद अनहद भयो, ताते उपज्यो वेद।
पुनि पायो वह वेद ते, सकल सृष्टि का भेद।।

इसके बाद मुसलमानों की 'किताब रब्बी' को देखिए, जिसको क़ुरान कहते हैं। उसमें भी लिखा है कि जब ख़ुदा ने जगत रचना चाहा तब 'क़ुन' शब्द का उच्चारण किया। उससे सब जगत रचा गया। जब जगत को लय करना चाहा, 'फ़ैक़ुन' शब्द कहा, तब सब नष्ट हो गया। मगर इसकी वहाँ भी कुछ खोज न हुई कि यह 'क़ुन,' 'फ़ैक़ुन' का कहने वाला कौन है? लोग अक्षर शब्द को पकड़कर शब्दरूप परमात्मा की परछाईं में लिपट गए, जैसा कि सत्यगुरु ने फ़र्माया है—

बिन विवेक भटकत फिरै, पकड़ शब्द की छाँह।।

और जिन्होंने खोज की उनको वह सत्यगुरु के ज़रिये से मिल गया। देखिए बक़ौल हाफ़िज—यार दर परदः निहानस्तन आयद वनज़र हस्तदर शक्ल कि बाँगेज़रसे मी आयद[१]। देखिए

१—हाफ़िज़ कहते हैं कि मालिक परदे के बीच है, दीख नहीं पड़ता। किस तरह पर कि जैसे घंटा में आवाज़।

क़ौल शाह बू अली क़लन्दर साहब—ईंनिदा आवाज़ हैवानी बुअद आंनिदा आवाज हक़्क़ानी बुअद ।[1] फिर देखिए ईसाइयों की किताब आसमानी, जिसे अंजील कहते हैं। उसमें लिखा है कि पहले कलाम था, कलाम परमेश्वर के साथ था, और कलाम परमेश्वर था। उसी के द्वारा सब कोई सिरजा गया। वही मनुष्यों का उजेला है यानी यह जीवात्मा उसी की रोशनी है। तो अब देखना चाहिए कि हर जगह से निरंजन के वाक्य से व और लोगों की तहक़ीकात से मालिक का शब्दरूप होना अच्छी तरह पाया जाता है। वह गुप्त है, प्रकट नहीं है। जिसको सतगुरु कबीर साहब सारशब्द निः अक्षर बताते हैं, वह सबसे परे हैं और सब जगह भरपूर है, कोई जगह उससे खाली नहीं है—

जो जाने ताके निकट है, नहीं तो रहा सकल घट पूर ॥
शब्दै कुंजी शब्दै ताला। शब्दै शब्द भया उजियाला ॥
शब्दै धरती शब्द अकाशा। शब्दै शब्द भया प्रकाशा ॥
जिन जाना यह शब्द का भेवा। सोई कर्ता सोई देवा ॥

देखिए, जब कि यह सांसारिक शब्द जो मनुष्यकृत हैं, उनकी कोई रूपरेखा नहीं दीख पड़ती, तब उस सारशब्द परमात्मा की रूपरेखा कोई कैसे कह सकता है? जैसा वह निराकार है वैसी उसकी परछाईं भी निराकार है। जब वह सारशब्द अखंड-स्वरूप अविनाशी सबका मालिक ठहरता है तब उसका मिलने वाला भी वैसा ही होगा। देखिए सतगुरु बचन—

यह सब तुमही होवगे, जबहि लखो वह ठाँव।

1—बू अली कहते हैं कि यह आवाज सब जानवरों की है और वह आवाज़ परमेश्वर की है।

आवागमन का वर्णन

अब मुझको थोड़ा सा आवागमन की निस्बत कहना है। कारण यह कि अक्सर लोग कहते हैं कि आवागमन का मसला हिन्दुओं का बिलकुल ग़लत है, इसलिए कि जो यहाँ से जाता है, फिर लौट कर आते दीख नहीं पड़ता। परमेश्वर के यहाँ नित्य नए जीव आकर पैदा होते हैं, और सब दुनियाँ की सैर करके चले जाते हैं। सिर्फ़ इतना मानते हैं कि कर्मों का फल महाप्रलय के बीच हिसाब-किताब होकर मिलेगा, जब तक हिसाब-किताब न हो जायगा, उसके कर्मों का कुछ फल न मिलेगा और उस वक्त़ तक यह सब रूहें एक मुक़ाम पर, एक साथ, क़ैद रहेंगी। सबसे पहले तो यह देखना चाहिए कि आवागमन के अर्थ क्या हैं और किसको आवागमन कहते हैं? देखिए भाइयो, आवागमन शब्द के अर्थ हैं आना और जाना। इस आने-जाने को पैदा होना और मरना भी कहते हैं, इसी का नाम आवागमन है। अब रही यह बात कि जो करके गया वह लौट कर फिर नहीं आता। उसको अगर यों देखा जाय तो यह बात बख़ूबी खुल जाय कि यही मर-मर कर फिर अपने कर्मानुसार देह ले कर फल भोगता है। पहले तो यह देखिए कि आदि में यह जीव निःकर्मी था, अपने मालिक से जुदा होकर, यह देह लेकर कर्मी हुआ, और दुनियाँ की हिर्स व हवा और वासना ने घेरा। इन्द्रियों के वश में होकर भले-बुरे कर्मों का अधिकारी हुआ जिसके वास्ते दो जेलखाने निरंजन ने पहले से बना रक्खे हैं; एक का नाम दोज़ख़, दूसरे का नाम बिहिश्त है। यह हर एक आसमानी किताब बता रही है कि अच्छे कर्म

करने से स्वर्ग मिलता है, और बुरे कर्म करने से नर्क होता है। तो स्वर्ग व नर्क का फल बिना देह धरे कैसे भोगेगा ? इसके वास्ते निरंजन ने चौरासी लाख योनियाँ बनाई हैं जिनमें स्वर्ग व नर्क भी शामिल हैं। यह चौरासी कर्मों के फल भोगने के लिए बनाया है। जो जैसा कर्म करेगा उसको उसी प्रकार की योनि फल भोगने को मिलेगी। अगर यह जीवात्मा लौट कर न आवेगी तो फिर चौरासी कौन भोगेगा। फिर उसका चौरासी लाख योनियाँ बनाना बिलकुल बेकार हो जावेगा, और स्वर्ग व नर्क दोनों जेलखाने बेकार होंगे और यह नेकी व बदी के रब्बी काम ग़लत हो जावेंगे और उन पर अमल करना जीवों का बेकार होगा। अगर तुम्हारे मालिक को यह मंज़ूर होता कि आख़िर में क़यामत के बाद कर्मों का हिसाब करके सज़ा व जज़ा याने अदला-बदला कर दूँगा तो वह नर्क-स्वर्ग आदि चौरासी न बनाता और न यह सृष्टि रची जाती। कोई ज़रूरत इसकी न थी। यह रूहें तो हरदम उसके पास मौजूद ही थीं, जो चाहता सो करता। अब यह देखना चाहिए कि यह जीव जब से पिंड में आया, याने देह धारण किया तब से फिर लौटकर अपने विदेह स्वरूप में मिला या नहीं। अगर वहाँ नहीं गया तो कहाँ रहा। इसका ख़्याल रहे कि एक देही लोक है और दूसरा विदेही। देही लोक जगत को कहते हैं और विदेही लोक अमरलोक को कहते हैं, जहाँ इसका परमात्मा है, जिससे इसको मिलना है। अब पहले देखिए, यह जीवात्मा अपने परमात्मा से मिलने के वास्ते अनेक यत्न या उपाय करती है—जप, तप, पूजा, पाठ, रोज़ा, नमाज़ वग़ैरह, जिसमें कि इस मृत लोक से नजात पाकर अपने अमरलोक को चली जावे। मगर त्रिलोकी-

नाथ, जो कि देह का दाता है, इसको किसी तरह पर जाने नहीं देता और इसको भी देह में रहते-रहते ऐसी मुहब्बत देह से हो गई है कि उसे छोड़ने को इसका भी दिल नहीं चाहता। बक़ौल सतगुरु मरने को दिल चाहता नहीं, जीने को दिल चाहता है। थोड़ी सी पीड़ा में देखिए कैसा विकल हो जाता है। इससे जाना जाता है कि ख़ुशी से अपनी मृत्यु यह नहीं चाहता कि कभी मुझ को मौत न हो मगर क्या करे, मजबूर है। जब देह छूटा तब किसी न किसी तत्व के साथ चलता हुआ फिर उन्हीं तत्वों के आधार से किसी न किसी देह में प्रवेश करा दिया गया, फिर जिस देह में गया उसको आनन्द मानने लगा और खुश हो गया। इसी तरह पर यह कभी देह से जुदा नहीं होता। चौरासी लाख योनियाँ भ्रमण कर फिर मनुष्य तन पाता है, इसी लौट-फेर में रहता है और मृत्यु-लोक से बाहर नहीं निकलता। अब जब तक सत्यगुरु का उपदेश ग्रहण नहीं करेगा, कभी मृत्युलोक से छूटकर अमरलोक को नहीं जा सकता और न यह तत्व व गुण, जिनसे इसका देह बना है, इसको छोड़ते हैं और न यह उनको छोड़ता है। इसी से बार-म्बार देह धारण किया करता है, विलग नहीं होता। यही बंधन है। जब यह अपने अमरलोक पहुँचेगा तब देही बंधन छूटेगा और अपने विदेह स्वरूप में मिलकर इनसे नजात पवेगा, जिसको मुक्त होना कहते हैं। अब देखिए, जब देह से जीवात्मा किसी उपाय से नहीं छूटती, तब मरना व पैदा होना सदा क़ायम रहेगा। इसी का नाम आवागमन है। यह बख़ूबी साबित है कि यह अपनी जमा विदेह स्वरूप में, जिसको सारशब्द कहते हैं, न मिला तब यह सिवाय चौरासी में मृत्युलोक के और कहाँ रह सकता है ? क्योंकि

यह तो अब इसका घर हो गया है। इसी से सत्यगुरु ने फ़र्माया है कि—'मरै धरै फिर देह, बंधन मुक्ति याही हवै।' और इसी से आवागमन का फेरा लगा रहता है। दूसरी बात यों देखिए कि जीव योनि से निकलकर किसी दूसरी योनि में जाता है तो उसका पिछला स्वभाव उस योनि में कुछ न कुछ ज़रूर रहता है। जैसा कि देखने में आता है कि बहुधा मनुष्य में जानवरों के स्वभाव व गुण पाये जाते हैं और अक्सर जानवरों में आदमियों के लक्षण पाये जाते हैं इसीसे सत्यगुरु ने फ़र्माया है—

चौ० जेहि योनिन से जो जिव आवा। ताकर तैसे रहै सुभावा ॥
पाछिल योनि स्वभाव न छाड़ै। ताते चाल काग की माड़ै ॥

इसके सिवाय मौलाना भी कह गये हैं कि—

हफ़्त सद हफ़्ताद क़ालिब दीदा अम।
मिस्ल सब्ज़ा बारहा, रोइदा अम ॥[1]

तो इन महात्माओं के बचनों से बराबर आवागमन साबित है। तीसरे यों भी आवागमन का होना ठीक पाया जाता है कि बहुत से जीव अपने पिछले कर्मों के सबब से पैदाइशी अंधे, काने, लूले, अपाहिज, कोढ़ी व दरिद्र होते हैं। बहुत से लोग कुछ दिनों बाद अपनी ज़िन्दगी के कर्म के आधीन हो जाते हैं। बहुत से गर्भ में और बहुत से गर्भ से बाहर होते ही मर जाते हैं। बहुत से बाल्यावस्था में और बहुत से युवावस्था में आकर मर जाते हैं। बहुत से लोग अपनी पूरी-पूरी तादाद भोग कर चलते होते हैं। ज़ाहिरा, यह अपने-अपने कर्मों का फल भोगना नज़र आता है। कारण यह कि जीव देह लेने से कर्मी हुआ है, अतः जब तक निःतत्व में नहीं समाता

१—मैं सात सौ सत्तर नगरों में गया और मानिन्द श्वास के अनेक बार उगा।

तब तक निःकर्मी नहीं हो सकता । तत्व व प्रकृति के साथ रह कर कर्मी बना रहेगा । इसी वजह से आवागमन से रहित नहीं होता। अब अगर यह कहा जाय कि नित्य नई रूहें वहाँ से आती हैं, तो उस वक़्त यह जीवात्मा निःकर्म और पाक व साफ़ था, किसी तरह गुनहगार न था, तब फिर क्यों नहीं यह अपनी उमर की पूरी तादाद भोगने पाता और किस वास्ते, किस क़ुसूर पर पैदाइशी अंधा, लूला, गूंगा, बहिरा वग़ैरह-वग़ैरह अंग से विहीन बना कर भेजा जाता है, जिससे तमाम ज़िन्दगी वह दुःख पाता है ? देह का भी सुख नहीं मिलता । इसलिए यह कहना तो ठीक नहीं पड़ता कि नित्य नई जीवात्माएँ आया-जाया करती हैं । इसके सिवाय परमेश्वर को जो कुछ करना था वह एक दम से कर दिया था, अब तो वह ख़ाली बैठा हुआ अपने कर्तव्य का तमाशा देख रहा है और जीवात्मा के गुण-अवगुण का इम्तहान ले रहा है, कि कौन-कौन मेरे हुक्म पर चल रहा है और कौन नहीं ? कौन मुझ तक आता है और कौन नहीं । इसी वास्ते उसने इसको नेकी व बदी के दो फल दिए हैं और उनका फल भोगने के लिए स्वर्ग व नर्क बनाया है। अब जो जीव नेकी अख़्तियार करेगा उसको स्वर्ग (बिहिश्त) मिलेगा, जो बदी अख़्तियार करेगा उसको नर्क (दोज़ख) मिलेगा, और जो कोई इन सबको त्याग कर निःकर्मी होगा, वह अपने परमात्मा निःतत्व में जा मिलेगा । इसलिए इस जगत को इम्तहान की जगह कहा है, और यह कहना भी सच है । इससे यह भी पाया जाता है कि दूसरी नयी आत्मा नहीं आती, यह वही आत्मा है जो जगत के साथ भेजी गयी है । अब जीव अपने कर्मानुसार भोग कर रहा है, उससे अधिक कुछ नहीं मिलता है, जैसा

कि हर एक आसमानी किताब से साबित है। क्योंकि उसका हुक्म है कि तुम मेरे हुक्म पर न चलोगे तो मैं तुमको प्यार नहीं करूँगा। मैंने तुम्हें अपनी कुल मख़लूक यानी सृष्टि पर सरदार बनाया है। इन पर दया रक्खो और अपने सब भाइयों पर बराबर प्रेम व मुहब्बत रक्खो, किसी को सताना नहीं, ज़ुल्म न करना, झूठ न बोलना, नेक रास्ते पर चलना। अगर इनके खिलाफ़ करोगे तो मैं तुम पर अज़ाब नाज़िल करके तुम्हें दोज़ख को भेजूँगा। तब अपनी किताबों के विरुद्ध यह कहना कि जीव को आवागमन नहीं है, सरासर ग़फ़लत है। यही जीव बारम्बार आया-जाया करता है। फिर अज़ाब व सवाब के बदले सज़ा व जज़ा का होना उन्हीं किताबों के ज़रिये से माना जाता है और यह समझा गया कि यह हुक्म रब्बी है और इस ख़ौफ़ से जो अच्छे लोग अमल रखते हैं, अपने इमकान भर उसके हुक्म के खिलाफ़ नहीं चलते। तो यह सज़ा व जज़ा का मसला ही ख़ुद आवागमन का होना साबित कर रहा है, क्योंकि बग़ैर देह धरे इनका भुगतान कैसे होगा? यह सज़ा व जज़ा जीवों के वास्ते ही रक्खा गया है, ताकि सब डरें और परहेज़ करें और अपने को गुनाहों से बचावें। यह निश्चय नहीं होता कि बाद हशर याने महाप्रलय के सज़ा-जज़ा होकर नजात मिल जावेगी और दुनियाँ में आकर इसको भुगतना न होगा। वही परमेश्वर दंड देकर छोड़ देगा कोई दंड होते देख न सकेगा और न फिर दुनियाँ में आवेगा। अगर यह बात मान ली जावे कि क़यामत के बाद सज़ा व जज़ा देकर मालिक छोड़ देगा, फिर दुनियाँ में उसको आना न पड़ेगा, तब भुगतान कैसे होगा और सिवाय मालिक के और कोई दूसरा उसको दंडित होते

न देखेगा। फिर यह जीव आनन्द से अदम में मज़ा उड़ावेगा, तब फिर उसके नेकी व बदी के यह सब एहकाम भी ग़लत हो जावेंगे और फिर उसकी इबादत व बन्दगी से भी नजात मिल जावेगी। सब तरह से छूट गए, कोई काम इबादत व बन्दगी का नहीं, सहज ही मुक्ति मिल जावेगी। और अगर यों कहिए कि सज़ा व जज़ा के बाद फिर दुनियाँ में आना होगा तो फिर आवागमन का होना सिद्ध होगा और उसके एहकाम, एबादत व बन्दगी के सब सिद्धियाँ होंगी और मानी जावेंगी। अब मैं इस बात को देखता हूँ कि बेशक सज़ा व जज़ा क़यामत के बाद होती है, जिसको महा-प्रलय कहते हैं। लेकिन इस महाप्रलय को किसी ने नहीं जाना कि किसको महाप्रलय कहते हैं। यह समझ लिया है कि जब कुल दुनियाँ न रहेगी, यानी जगत लय हो जावेगा, उसका नाम महाप्रलय है। लेकिन ऐसा नहीं है, यह नासमझी है। एक तो इसका कोई समय ठीक नहीं होता कि कब ऐसा होगा, क्योंकि जहाँ तक देखा जाता है व आसमानी किताबों से साबित होता है कि कब-कब महा-प्रलय हुआ, जिससे इसका अंदाज़ा हो सके कि फ़लाँ वक्त़ में ऐसा होगा। दूसरे यह कि जब महाप्रलय होकर जगत उसमें लय हो जावेगा, तब कुछ तो बाक़ी न रहेगा। फिर सज़ा व जज़ा के वास्ते कौन बैठा रहेगा? जगत के साथ तो यह जीवात्मा भी लय होगी फिर तो वह आप अकेला ही रहेगा, दूसरा तो कोई रहेगा नहीं। इसी को सतगुरु ने भी फ़र्माया है कि 'महाप्रलय में रहै न कोई'। तब क़यामत के बाद सज़ा व जज़ा का होना ग़लत समझा और कहा गया है। अब देखिए प्रलय और महाप्रलय इसको कहते हैं, जिससे कि सज़ा व जज़ा का होना सब सिद्ध होता है।

प्रलय तो नित्य होता है और महाप्रलय कुछ काल के बाद होता है। जब यह सब जीव सो जाते हैं, तब उसको नित्य प्रलय कहते हैं, और जब यह जीवात्मा देह को छोड़ती है तब उसको महाप्रलय कहते हैं। उस वक़्त में इसके पाँच तत्व और तीन गुण सब विनष्ट हो जाते हैं और सारा अंग बेकार हो जाता है, केवल विराट रह जाता है। वह भी जीव के निकल जाने के थोड़ी देर बाद बिनसने लगती है और सड़-गल कर बाक़ी नहीं रहती है। इसी का नाम महाप्रलय है। जब महाप्रलय होकर देह छूट गई, तब उसके कर्मानुसार सज़ा व जज़ा होकर जगत में फिर वह लौटा दिया गया कि देह धर उसका भुगतान करे। जब फिर शरीर मिला तब फिर उन पिछली बातों का होश जाता रहा और पिछले कर्मों के सबब से और-और ज्ञान उपजता है, क्योंकि उसके वह कर्म उसको उस तरफ़ लगाते हैं जिसमें उसकी बढ़ती हो; अब इसमें भले या बुरे जैसे भी कर्म हों। अगर पिछले बुरे कर्म किये हैं तो वे उसको और बुराइयों की तरफ़ लगा कर घसीट ले जाते हैं जिससे कि वह और भी अधिक बुरे कर्मों का अधिकारी हो जाता है। इसी तरह भले कर्म भलाई की तरफ़ ले जाकर किसी वक़्त उसे ऐसा नेक बना देते हैं कि धीरे-धीरे वह मुक्ति पद को पहुँच कर इन कर्मों से नजात पाकर अपने विदेह स्वरूप में मिल जाता है, फिर आवागमन से रहित हो जाता है और अपने सच्चिदानन्द से मिल कर आनन्द व सनातन सुख भोगता है। अब जब तक यह जीवात्मा अपना चुकाव पूरे तौर पर करके अपने परमात्मा में लय न होगी तब तक देह धरने से इसको कभी छुट्टी नहीं मिलेगी और न यह कर्म करने से बाज़ आवेगा।

इसी तरह पर सोचने से जाना जाता है कि न जगत के कर्म खत्म होंगे न वह लय होगा याने वह महाप्रलय न होगा जिसमें एक दम से जगत लय होगा। देखिए इस जगत में सबको आवा-गमन लगा है, इससे कोई बरी नहीं है। पहले चाँद व सूर्य को देखिए कि वह कभी शान्त होकर नहीं बैठने पाते, हमेशा घूमते रहते हैं। फिर देखिए दिन गया, रात आई; रात गई, दिन आया। फिर इसमें सातों दिन आठों पहर बराबर आते-जाते हैं। इसी तरह साल में बारह महीने आते-जाते रहते हैं। फिर जाड़ा, गर्मी, बरसात यह तीन फसलें बराबर सदा होती जाती हैं। इससे मालूम होता है कि यह देश ही आवागमन का है। यहाँ तक कि धरती आकाश को भी यही रोग लगा हुआ है, कि रात भर घूमते रहकर चक्कर खाते हैं, तब इस जीव की कौन गिनती है ? इसी के वास्ते तो यह देश आवागमन का बनाया गया है, ताकि इससे कोई निकल न सके। तब उनका यह कहना कि जीव को आवागमन नहीं है, सरासर ग़फ़लत और बेजा मालूम होता है। इससे आवा-गमन का होना हर तरह सिद्ध होता है। इसी आवागमन के कारण यह मुल्क फ़ना कहा गया है, जिसको लोग मृत्युलोक कहते हैं। इसमें किसी को बक़ा नहीं है। इस मौक़े पर शब्द नम्बर ६ हंस देह के बयान का देखिए, जिसमें सतगुरु ने फ़र्माया है कि यह सब छठी देह तक पहुँच कर फिर लौट आता है, आगे अपने अमरलोक को नहीं जाने पाता।

शब्द

संतो सुनो हंस तन ब्याना।
अवरण वर्ण रूप रेखा नहिं, ज्ञान रहित विज्ञाना ॥

नहिं उपजै नहिं बिनसै कबहूँ, नहिं आवै नहिं जाई।
इक्ष अनिक्ष न दृष्टि अदृष्टि, नहिं बाहर नहिं माहीं॥
मैं तो रहित न कर्ता भोक्ता, नहीं मान अपमाना।
नहीं ब्रह्म नहिं जीव न माया, ज्यों का त्यों वह जाना॥
मन बुधि गुण इन्द्रिय नहिं जाना, अलख अकह निरबाना।
अकल अनीह अनादि अभेदा, निगम नेति फिर जाना॥
तत्व रहित रवि चन्द न तारा, नहिं देवी नहिं देवा।
स्वयंसिद्ध प्रकाशक सोई, नहिं स्वामी नहिं सेवा॥
हंस देह विज्ञान भाव यह, सकल वासना त्यागे।
नहिं आगे नहिं पाछे कोई, निज प्रकाश में पागे॥
निज प्रकाश में आप अपन पौ, भूल गए विज्ञानी।
उनमत बाल पिशाच मूक जड़, दशा पाँच पहिलानी॥
खोय आप आपन पौ सरबस, निज स्वरूप नहिं जानी।
फिर केवल महाकारण-कारण, सूक्ष्म स्थूल समानी॥
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण, केवल पुनि विज्ञाना।
भए नष्ट यह हेर फेर में, कतहूँ नहिं कल्याना॥
कहैं कबीर सुनो हो संतो, खोज करो गुरु ऐसा।
जेहिं ते आप अपन पौ चीन्हों, मेटो खटका रैसा॥

जब यह जीवातमा छठी देह तक जाकर बिना सत्यगुरु के ज्ञान के फिर नीचे को लौट आता है और देही बंधन इसका नहीं छूटता तब आवागमन से कैसे रहित हो सकता है ? देखिए सतगुरु बचन—

बिन गुरु गम्य कहाँ ते पावे, फेरि काया धरि आइया।
जब लग शब्द संधि नहिं पावे, चौरासी में जाइया॥

गुरु जौहरी भेद बतलावै, औघट घाट लखाइया।
सुरति संयोग शब्द सहिदानी, गुरु गम्य लोक पठाइया॥

इस तरह से जब तक यह सतगुरु की शरण में आकर उनकी सेवा तथा बन्दगी न करेगा उसका पूरा-पूरा ज्ञान हासिल न करेगा और जीते जी अपने सारशब्द परमात्मा से न मिलेगा, तब तक आवागमन से रहित नहीं हो सकता। अब देखिए, सतगुरु के इस शब्द से भी आपको विदित होगा कि इस शरीर में दस द्वार हैं। अब यह जीव जिस द्वार से होकर निकलेगा तो फिर चार खान चौरासी में ज़रूर आवेगा और जब सतगुरु की आज्ञा के अनुसार सुरति द्वार से निकलेगा तब शब्दलोक को जाकर आवागमन से छूट जावेगा, अन्य किसी उपाय से नहीं। देखिए सतगुरु बचन—

शब्द : अवधू कहो जीव का निस्तारा।

यहि काया में यकदस द्वारा, तेहिमाँ है एक न्यारा।
कौन द्वारे प्राण निकसै, ताको करो बिचारा॥

गोरख बचन

साहब तुम तो सब घट ब्यापक, तुमरो सकल पसारा।
इतनी मोहिं में थाह नहीं है, तुमही करो विचारा॥

सतगुरु बचन

गुदा द्वारे प्रान निकसै, नर्क खानी जाय।
तुरत देह गुजवा की पावे, नरकै में ठहराय॥
नाभी द्वारे प्राण निकसे, जल खानी को जाय।
तुरत देह मछली की पावे, जल सूखे पछताय॥
मुख द्वारे प्राण निकसे, अन्न ढेरी जाय।
तुरत देह सो घुन की पावे, अन्नै में ठहराय॥

स्वाँस द्वारे प्राण निकसैं, गर्भ खानी जाय ।
जहाँ देखै गर्भ सहित, वहीं जाय समाय ।।
चक्षु द्वारे प्राण निकसैं, अंड खानी जाय ।
तुरत देह पक्षी को पावै, स्वर्गहिं में मंडराय ।।
श्रवण द्वारे प्राण निकसैं, भूत खानी जाय ।
देह धरि सो विदेह दरसैं, रूख में लपटाय ।।
रंभ द्वारे प्राण निकसैं, राज खानी जाय ।
कछुक दिवस तहँ राज भोगैं, फिर पाछे पछताय ।।
सुरति द्वारे प्राण निकसैं, सत्यलोकहि जाय ।
शब्द निरखत जाय लोकहिं, कहैं कबीर बुझाय ।।

शब्द रूप सतगुरु कबीर साहब ने जगत में इस जीव को आवागमन से छुड़ाने के वास्ते अमरलोक से पधार कर उपदेश किया और जीवों को काल से छुड़ा कर मुक्ताया है । अगर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, निरंजनी वाक्य से यह जीव आवागमन से छूटता तो सतगुरु कबीर साहब जगत में न आते । जब जीव इससे न निकल सका तब इसको दुःखी देख कर सतगुरु को दया आई और इसका उपदेशक बनकर उन्होंने मुक्ति की राह बताई। इस पर भी यह अपने ऐसे दयाल सतगुरु के बचन को नहीं सुनता, उसी निरंजन काल के हुक्म में रहता है, जिससे किसी प्रकार आवागवन के जाल से नहीं छूट सकता ।

जीव-हिंसा का वर्णन

अब मैं जीव-हिंसा के विषय में कुछ कहता हूँ, कान लगाकर सुनो । इससे तुम्हारी बड़ी-बड़ी हानि होती है किंतु इसका कोई विचार

नहीं करता। सबसे पहिले देखो, ईश्वर ने सब जीवों पर इस मनुष्य को सबका सरदार, सिरताज व श्रेष्ठ बनाया है और हर प्रकार की समझ, बुद्धि व ज्ञान दिया है। और सब जानवरों को यह खिलत नहीं मिला। वे बिचारे खाली अपना उदर भरना जानते हैं, और कुछ नहीं जानते। परमेश्वर ने इन सबको तुम्हारी ताबेदारी के लिए बनाया है कि तुम इनसे काम लो। तो देखो, यह सब तुम्हारी आज्ञानुसार काम करते हैं। जो तुम चाहो उनसे काम लो और जहाँ चाहो बाँधो या छोड़ो, कुछ उज्र नहीं करते। पूरा-पूरा काम तुम्हारी मर्ज़ी के अनुसार करते हैं और तुमसे अपनी क्षुधा-प्यास तक का हाल भी नहीं कहते। अब तुम अपनी ओर देखो कि तुम अपनी निर्दयता और कठोरता से इन बेचारे निर्दोषियों को अपनी-अपनी इन्द्री पालने के अर्थ, जिह्वा स्वाद के वश हतन कर डालते हो। उनके जीवात्मा के विछोह करने में रत्ती-भर 'दर्द नहीं आती। कैसी बेदर्दी से उनके बाल व पर नोच कर उनका मांस चट कर जाते हो और अपना पेट पालते हो। अपने धर्म-अधर्म का कुछ विचार नहीं करते हो कि हमको परमेश्वर ने उनका सिरताज व सरदार क्यों बनाया है और यह हमारे अधीन किसलिए किए गये। अब यह देखो कि कितनी बड़ी हठधर्मी और नाफ़र्मानी की बात है कि तुम उन निर्दोषियों की जान व्यर्थ लेकर हत्यारे बन गये और अपने खालिक के बैरी व द्रोही हो गये। अब वह तुमको ऐसे क़ुसूर पर क्योंकर प्यार करेगा? इस हत्या से तुमसे कैसे ख़ुश होगा और फिर तुमको क्यों उसका सरदार बनावेगा, और तुम्हें सब पर श्रेष्ठ करेगा? उलटे उस अपराध का अदला-बदला देते-देते तुम्हारी जान जायगी और फिर कभी

तुमको यह दरजा उस माबूद से नहीं मिलेगा। दरगाह बे-नयाज़ में अपनी सुर्खरूई न पाओगे तो कैसे मुँह दिखाओगे और क्या जवाब दोगे ? सर्वदा के वास्ते उससे महरूम रह कर लख चौरासी योनि में भ्रमण करोगे, तब तुमसे कुछ करते-धरते न बनेगा। ज़रा से स्वाद के कारण अपना कितना बड़ा नुक़सान हो गया कि जिससे तमाम ज़िन्दगी व्यर्थ हो गई और कुछ अच्छा फल न मिला, सब नष्ट हो गया। तुमको इसमें तमीज़ करना चाहिए ताकि ऐसे पाप से बचो। देखो ! तुम एक जिह्वा के वश में होकर कितना बड़ा अपराध कर डालते हो। इस बात का कुछ ख्याल नहीं करते कि यह काम भला है या बुरा। अगर इसका विचार करते तो इस हत्या से बच जाते। इस तरह पर तुम अपनी इन्द्रियों के अधीन होकर सब बुरे-बुरे काम कर डालते हो। इस कारण से कि तुमको इसमें तमीज़ नहीं होती, बिलकुल बदतमीज़ हो रहे हो। वे तुम्हारी इन्द्रियाँ तुमसे हठात् करा रही हैं और तुम उसे शौक़ से कर रहे हो। अगर तुमने सतगुरु के ज्ञान से तमीज़ पैदा की होती तो क्यों इनके वश में होकर ऐसा बुरा काम करते। देखो सतगुरु बचन--

संतो घर में झगड़ा भारी।
रात दिवस मिल उठि-उठि लागैं, पाँच ढोंटा एक नारी॥
न्यारो-न्यारो भोजन चाहैं, पाँचों अधिक सवादी।
कोउ काहु को हटा न मानै, आपहिं आप मुरादी॥
दुर्मति केर दोहागिन मेटै, ढोंटै चाप चपेरै।
कहैं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रार निबेरै॥

इस तरह पर यह तुम्हारी इन्द्रियाँ तुमको अपने वश मे करके चौरासी के कर्म कराके आवागमन के फंद में फँसा जाती हैं। तुमको

इसकी खबर नहीं । अब जब सतगुरु का ज्ञान पाओगे तब बचोगे। नहीं तो यह सब तुमको योंही लूटा करेंगे, तुम्हारा कुछ वश नहीं चलेगा—

जब जब आया इस नगरी में, तब तब लूट भई तेरी ।
जबरदस्त भटियार पचीसी, छीन लेत गठरी तेरी ॥

अगर तुम एक और भी बात का विचार करते कि इस मांस की उत्पत्ति किस प्रकार से होती है तो भी तुम्हारे दिल में घृणा उत्पन्न होती और इस अपराध से बचते। अब देखो, यह मांस मलमूत्र का भांडा है । इसकी उत्पत्ति रक्त और वीर्य से होती है जिसको सब नापाक व गंदा कहते हैं । इसमें सिवाय दुर्गन्ध के सुगंध नहीं आती । ऐसी गंदी वस्तु के खाने से तुममें सुगंध कैसे पैदा होगी ? इसके आहार करने वालों के दिलों में बजाय रहम के बेरहमी और बेदर्दी उत्पन्न हो जाती है । तमोगुण का ज़्यादा अधिकार हो जाता है, जिससे वह अनेक प्रकार के और भी बुरे-बुरे काम करने लगता है । कभी अच्छे कामों में चित्त नहीं देता। मन में एक प्रकार का अंधकार छा जाता है, जिससे तुम्हारे सब रक्षक तुमसे अलग हो जाते हैं । इस तरह पर देखो कि मनुष्यता के गुण क्या हैं ? मनुष्य में बहुत बड़ा गुण यानी जौहर मेहर और मुहब्बत व दया भाव का है, जिसका संबंध केवल दिल से है । इसी से दिल को खाने-खुदा यानी परमेश्वर का घर कहते हैं । इसी से सब आचार्यों ने दिलज़ारी यानी दिल दुखाने व क्लेश पहुँचाने को वर्जित किया है । इसी की बदौलत यह जीव अपने परमात्मा से मिल सकता है । तब इतनी बड़ी दौलत को हाथ से दे देना कौन बुद्धिमानी है ? जिह्वा के थोड़े से स्वाद हेतु इतना

बड़ा नुक़सान अपना कर डालना, समूह दुःख-दोष का बोझ अपनी गर्दन पर रखके चौरासी भोगना और उसका अदला-बदला देना बड़ी मूर्खता की बात है। इस मांस की बदौलत मेहर-मुहब्बत व दया वग़ैरह तुमसे हट गए, जो तुम्हारे रक्षक थे। उनके जाने से तुम्हारे दिल में ज़ुल्म और क़हर उत्पन्न हो गया, जिस से तुम बजाय नेकी के बदी करने लगे और गुनहगार हो गये। देखो सतगुरु बचन--

हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनो घट से त्यागी।
ये हलाल वे झटका मारैं, आग दोनों घर लागी॥

इससे ऐ भाइयो, बहुत विचार करके अपने को गुनाहों से बचाओ, क्योंकि जीव का हनन अपराध का मूल है। 'कठिन यह चूक से बीच पारी'। अब तुम अपने परमात्मा की कारीगरी की ओर देखो कि उसने इस देह को किस-किस यत्न से बनाकर इस जीवात्मा को उसमें वास कराया, और वह इस देह में आकर कैसा आनन्द भोगता है। तुम उसको थोड़ी ही देर में किस बेरहमी से मारकर भक्षण कर जाते हो। उसकी प्यारी जान को अपनी जान के बराबर न समझ कर अपना तन पालते हो। रत्ती भर इस बात का विचार नहीं करते कि वह जीवात्माएँ अपने तन में कैसे आराम से बैठी हुई अपने दाने-चारे की फ़िक्र करती होंगी। देखिए सतगुरु बचन-- झूलना

चाम के महल में बोलता राम है,
राम औ चाम को चीन्ह भाई।
धन्य उस्ताद जिन चाम मूरति गढ़ी,
सकल शृंगार छबि रूप छाई॥

एकही बुन्द से साज साबित किया,
विविध प्रकार का यंत्र लाई।
पांव अरु पेड़ुरी जंघ कटि केहरी,
नाभि कुंडल रची सरस भाई॥
बावन की गाँठि दै महल ठाढ़ी कियो,
हृदय विचित्र भुज दंड लाई।
हाथ और अँगुली सकल पूरन बनी,
अंगुलियां अग्र नख को लगाई॥
सही मस्तक बना मुकुट लीलाट है,
रतन सो नयन दिव्य दृष्टि पाई।
पृष्ठ पाछे बनी मेरुदण्ड है लगी,
पाँसुरी बीच पंजर अढ़ाई॥
चाम बिच मांस है मांस बिच हाड़ है,
हाड़ के पार नस कसनि लाई।
गुदा बिच बिन्द है बिन्द बिच पौन है,
पवन बिच प्रान है जीव सोई॥
कहैं कबीर यह ख्याल कर्ता किया,
ज्ञान की दृष्टि सों चीन्ह कोई॥

देखो उस परमात्मा ने कैसे यत्न से एक बुन्द से यह देह खड़ी की जिसमें यह जीव विहार करता है। उसको तुमनें सहज ही में बिगाड़ डाला और उसका अंग-भंग करके बिछोह कर दिया और मांस चट कर गये। कुछ तरस व दर्द न आया। अब ख्याल करो कि अगर कोई तुम्हारी बनाई हुई चीज़ को बिगाड़ डाले तो तुमको उसके नष्ट होने का कैसा रंज व दुःख होगा और

कितना ग़ुस्सा तुमको उस पर होगा। तुम उसी रंज व ग़ुस्से में उससे बदला लेने को खड़े हो जाओगे। तब देखो वह परमात्मा अपनी बनाई हुई चीज़ को बिगड़ते देखकर कैसे तुमसे ख़ुश होगा और तुमको उससे यह उम्मीद कैसे होगी कि वह तुमको इस गुनाह के बदले दंड देगा। वह तुम्हारे और सब गुनाह तो मेट देवेगा परन्तु इस अपराध को इस वजह से वह भी माफ़ नहीं कर सकता कि तुमने यह गुनाह ख़ुदा और बन्दे के दरमियान किया। जब तक जीवात्मा ख़ुद माफ़ी न दे, माफ़ नहीं हो सकता, इसलिए परमेश्वर भी माफ़ नहीं कर सकता। इसी से सतगुरु ने कहा है कि—'जीव का हतन अपराध का मूल है, कठिन यह चूकते बीच पारी।' इसलिए ऐ भाइयो! तुम बहुत विचार कर यह काम करो और इस हत्या से और अपराध से अपने को बचाओ। बहुधा मांसाहारी अज्ञानी जीव यह कहते हैं कि यह सब जीव हमारे खाने के हेतु ईश्वर ने बनाए हैं, इनके हतन से कुछ हत्या नहीं होती। उनका यह कहना बिलकुल ग़लत है। परमेश्वर ऐसा हुक्म कभी नहीं दे सकता, क्योंकि उसने हर जगह पर फ़र्माया है कि सब जीवों पर दया करो, जिसके माने पालने के हैं, न कि हतन करने के—**जीव का हतन अपराध भारी।**

उसने कहीं पर ऐसी आज्ञा तुमको नहीं दी। जिन-जिन को ऐसी आज्ञा दी है उनकी खिलक़त ही दूसरी तरह पर की है। जैसे देखो, परमेश्वर ने दो प्रकार के जानवर उत्पन्न किये हैं—एक घासाहारी दूसरे मांसाहारी। घासाहारी जानवर वे हैं जिनके दाँत चपटे और नाख़ून गोल हैं और ओंठ बाँध कर पानी पीते हैं। जो मांसाहारी जानवर हैं उनके दाँत और नाख़ून लम्बे और

नुकीले बनाए गए और उनको जिह्वा से पानी पीने का हुक्म है। वे बिचारे सब इसी पर चलते हैं। अब देखना चाहिए कि मांसाहारी कौन है और घासाहारी कौन है ? मांसाहारी में कुत्ता, बिल्ली, शेर, चीता, रीछ व भेड़िया इत्यादि हैं जिनके दाँत व नाख़ून लम्बे व नुकीले ख़ालिक ने बनाये हैं और हाथी, घोड़ा, गाय, बैल, ऊँट और मनुष्य जिनके दाँत और नाख़ून गोल और चपटे बनाए गए हैं, यह सब घासाहारी किए गए। तो अब समझना चाहिए कि यह इनसान ना-फ़रमान किस जानवर में पैदा हुआ है। अगर यह भी उन मांसाहारियों में हुआ है तब उसको उसी जमात में रहना चाहिए और उन्हीं से सगाई व भाईबन्दी करना चाहिए और यदि घासाहारी में पैदा हुआ है तो अपनी जमात घासाहारी में रखना चाहिए। देखिए ये घासाहारी जानवर मांस नहीं खाते और मांसाहारी घास से खुश नहीं होते। तब यह मनुष्य दोनों तरफ़ क्यों मुँह डालता फिरता है ? मांसाहारी जीव दाँत व नाख़ून से इस काम को पूरा करते हैं और घासाहारी इस काम को दाँत व नाख़ून से पूरा नहीं कर सकते। तब इसको इसमें शर्म करना चाहिए कि उसने मुझको हैवान नातिक़ बनाया है, यानी आदमी बनाया है, और हर प्रकार की समझ व बुद्धि दी है। इसी से तुमको सब पर सरदारी मिली कि तुम सब पर दया भाव रख कर इनकी रक्षा करते हो, न कि मार-मार कर भक्षण कर जाओ। उसके हुक्म व रचना को कुछ समझ बूझ न करके बुरे कर्मों से न भागो, यह बड़ी बेईमानी की बात है।

इसके सिवाय एक बात और भी देखिए कि सब जानवरों में यही चैतन्य आत्मा, यानी जीव सबमें बराबर है। जब

तुम उनको मारने का इरादा करते हो तब वह तुम्हारी बदी को पहिचान लेते हैं और वे अपने पौरुष भर अपनी जान लेकर भागते हैं ताकि तुमसे जान बचे, जैसा कि तुम भी ऐसे वक़्त में अपनी रक्षा करते हो और अपने क़ातिल से छिपते हो। तुमको तो उसने इस मनुष्य के जामा में सब तरह की ताक़त, ज्ञान, बुद्धि और फ़हम दिया है, जिससे अपनी हिफ़ाजत कर लेते हो। वे बिचारे इससे महरूम हैं, इस कारण वे अपनी पूरी हिफ़ाजत नहीं कर सकते। तुम शहज़ोर हो, वे कमज़ोर हैं। उनका पौरुष तुम्हारे आगे नहीं चलता। वे अपने को तुम्हारे हाथ में दे देते हैं और तुम उनका गला काट कर घास-फूस की तरह उनकी जान लेते हो और उनका तमाम हाड़-मांस चट कर जाते हो। कुछ दरेग़ व तरस नहीं आता कि हम परमेश्वर को क्या जवाब देंगे? नाहक उसकी बनाई हुई चीज़ को बिगाड़ डाला, परन्तु भाई आख़िर में पछताओगे।

तुम्हारा रहबर, तुम्हारे दिल में बुरे-भले काम से पहिले ही ख़बरदार कर देता है। परन्तु तुम अपने स्वाद के आगे उसकी कब सुनते हो। अगर ग़ौर करके देखो तो तुमको मालूम हो जावेगा कि उसने एक सिलसिला तारवर्क़ी का सब के दिलों में ऐसा लगा रक्खा है कि एक दूसरे को नेकी व बदी की खबर हो जाती है। इसी से इस जीवात्मा को सभी ने ब्रह्मांश कहा है, जिसको चैतन्य आत्मा कहते हैं। यही चैतन्य का गुण है कि वह अपने दोस्त व दुश्मन की पहिचान कर लेता है। इसी से कहा गया है कि दिल को दिल से राह है। अब मैं तुमको इसके गुण और अवगुण दिखलाता हूँ कि जो-जो तुमको इस मांस के खाने

से हो रहे हैं उनका तुम कुछ विचार नहीं करते। गुण तो एक भी नहीं मिलता, अवगुण बहुत से दीख पड़ते हैं। मांस के खाने से हैवानी बुद्धि ज़ोर करके अक़्ल इन्सानी पर ग़ालिब आ जाती है, जिससे और बहुत से बुरे-बुरे काम होने लगते हैं। इसके सिवाय हर एक देहधारी के साथ रोगादिक भी लगे हैं, जिससे आखिर मौत होती है। इससे कोई ज़ानदार बरी नहीं है। ऐसी हालत में जो जानवर रोगी था उसका मांस तुमने भक्षण किया और उसका विष तुम्हारे पेट में पहुँच कर तुमको रोगों का अधिकारी कर देता है, जिससे तुम्हारी मौत का सामना होकर तुम्हें क़ब्र का मुँह दिखाते हैं। तुम्हारा धन व दौलत, वैद्य व डाक्टरों के नज़र हो जाता है। जान व माल दोनों को नुक़सान होता है, कुछ फ़ायदा नहीं होता। जीव-हत्या ऊपर से चढ़ बैठती है जिससे किसी जन्म छुटकारा नहीं है। इन सब बातों के परे एक और बात का विचार करो कि मांस खाना मुर्दा खाना है, मांस ज़िन्दा नहीं होता। जब जीव न रहा तो मुर्दा ही कहलाता है! सो हराम है। अब मैं हाथ जोड़ कर अपने उन मुरदाख़ोर भाइयों से कहता हूँ कि मुरदाख़ोरी किसी मिल्कत व मज़हब में दुरुस्त नहीं है, इसको सब दीनदारों ने हराम और नापाक कहा है और न परमेश्वर का ऐसा हुक्म है। यह काम भले मनुष्यों का नहीं है बल्कि अपराधियों का है जिससे कभी नजात न होकर सर्वदा नर्क ही में रहना होता है। देखिए सतगुरु बचन 'झूलना'—

हिन्दू मुसलमान दुइ दीन सरहद्द है, वेद कत्तेब प्रपंच साजी।
हिन्दू के नेम अचार पूजा घनी, व्रत एकादशी पर रहत राजी॥
बकरी मारि मांस भक्षण करें, भक्ति न होय यह दगाबाजी।

जीव हतन अपराध का मूल है, कठिन यह चूकते बीच पारी ।।
सर्वपुराण मथि कृष्ण गीता कथैं, कृष्ण को मानि शिरमौर लीजे ।
काह गीता पढ़े दृष्टि उघरी नहीं, एकहू वाक्य तें मान पाजी ।।१।।

मुसलमान बिसमिल्लाह कलमा कहैं,
तीस रोजा रहै बाँग निमाज धुन करत गाढ़ी ।
बकरी मुरगी जीव जबह करैं,
जीव पछाड़ के काह काढ़ी ।।
ऐसे जुल्म से बिहिश्त कैसे मिलै,
खून अपराध सिर ब्याज बाढ़ी ।
पाव और पलक की खबर सो ना मिली,
बिहिश्त न्यारे खड़ी दोजख ठाढ़ी ।।
गर्व गुमान जंजीर गर में बँधी,
दिनै दिन ब्याज की बाढ़ बाढ़ी ।
होय इन्साफ तब जवाब क्या देवगे,
ले चले फिरिश्ते जब पकड़ दाढ़ी ।।
होय तजबीज तब कठिन कुन्दी करैं,
परैगा दुःख पुनि कष्टकारी ।
अजहूँ चेतै नहीं मेहर मुहब्बत नहीं,
फिर पछताय जब रार बाढ़ी ।।
मोम दिल होय मेहरबान दिल, जो बसै,
बिहिश्त रोजा तेहि निकट ठाढ़ी ।
कहैं कबीर यह साहेबी सो करैं,
आप को चीन्ह के झूठ छाँड़ी ।।२।।

ऐ भाइयो, अगर इस पर भी नहीं मानते हो और बहुत

शौक सताए हो तो सबका मांस खाया करो। किसी में कुछ तमीज़ व परहेज़ न करो जैसा कि और जानवरों में है कि मुरदा व जिंदा किसी को नहीं छोड़ते। तुम भी इसी तरह अपने घर के मुरदे का मांस खा लिया करो, जिससे वह कृतार्थ हो और दूसरे जानवरों की हत्या से तो बचोगे। उनका मांस खाने से तुमको एक तरह का फ़ायदा होगा कि उसकी बुज़ुरगी अर्थात् भलाई तुम्हारे दिल में पैदा होगी और उसकी मिट्टी सार्थक होगी। तुम जीव-हिंसा से बचोगे, और उसकी रूह तुमसे ख़ुश होगी कि मेरा गोश्त व पोस्त मेरे ख़ानदान में रहा। वह तुमको आशीर्वाद देगा, तुम सवाब में दाख़िल होगे, अज़ाब से बचोगे, क्योंकि इन्सान के मांस से इन्सानियत आवेगी और जानवर के मांस से जानवरियत आवेगी, जो बिलकुल अनुचित है। देखो सतगुरु ने भी यही फ़र्माया है कि मांस-मांस सब एक है। अगर किसी का जीव तुम हतन करोगे तो तुमको उसका बदला अवश्य देना पड़ेगा, इससे बचोगे नहीं !

शब्द बीजक

जस मांस पशु की तस मांस नर की, रुधिर रुधिर यकसारा जी।
पशु का मांस भखै सब कोई, नर ही भखै सियारा जी।।
ब्रह्म कुलाल मेदनी भैय्या, उपजि विनसि कित गइया जी।
मांस मछरिया तौ पै खइया, ज्यों खेतन में बोइया जी।।
माटी के कर देई देवा, काट-काट सिर देइया जी।
जो तुम्हार है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी।।
जो कीन्हो जिह्वा के स्वारथ, बदला पराया देइया जी।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, राम नाम निज लेइया जी।।

ऐ भाइयो, सबने बारम्बार मेरी अर्ज़ यही है कि मुर्दाखोरी

छोड़ो। मांस के खाने से कुछ लाभ नहीं, बल्कि अपने ऊपर हत्या चढ़ाना है। तुमको ईश्वर ने हर तरह की अक़्ल दी है और सब जीवों का सरदार बनाया है। इसको समझो और बिचारो। अपनी सरदारी को हाथ से न जाने दो, अपना धर्म चीन्हों। अधर्म करना उचित नहीं है, अधर्म अकर्म से हर तरह पर अपने जीव की हानि होती है। देखिए सतगुरु बचन—

साखी : मन वश करना कर्म है, धर्म जानना रूप।
जाना अपने रूप को, याही धर्म स्वरूप॥

अकर्म व अधर्म करने से जीव की चैतन्यता कमज़ोर व सुस्त हो जाती है, जिन्स में मलीनता आ जाती है, जिससे नाना प्रकार के दुःख और दोष का अधिकारी हो जाता है। कभी किसी योनि में छुटकारा नहीं होता, सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है। इस वास्ते अपने को इन गुनाहों से बचाओ और बहुत परहेज़ करो, और आगे को सतगुरु के दर्बार में माफ़ी माँगो, जिससे नजात हो। आगे तुम्हारी खुशी—समझाने से मुझे सरोकार। अब मान न मान तू है मुख़्तार। देखिए सतगुरु बचन—

जीवता मार के कहत हलाल है, मुरदा रहत नांहि खूब खाना।
मेहर को दूर कर क़हर दिल में धरै, दोज़ख़ की राह को सहज जाना॥
नफस के वास्ते कुफ़्र बहु करत हो, ब्याज दरगाह में भरो केता।
कहैं कबीर इन्साफ़ जब होयगा, मार दरगाह में खूब खाता॥
साखी : दिन भर रोजा रहत हैं, साँझ हनत हैं गाय।
यह हत्या वह बन्दगी, क्योंकर खुशी खुदाय॥

इति समाप्तम्

सत्यगुरुओं की वाणी

अब मैं कुछ थोड़े से शब्द सत्यगुरुओं के लिखता हूँ जिनको देखकर हमारे सब भाई लोग बहुत खुश होंगे और उनके समझने-बूझने से बड़े आनन्द को प्राप्त होंगे। उनको सारशब्द सतपुरुष से मिलने का प्रेम जगेगा। फिर शब्दविवेकी होकर सतगुरु की खोज करके सारशब्द सतपुरुष से मिलोगे और जीवन मुक्ति का फल चखोगे व मुक्त होओगे।

सत्यगुरु कबीर साहब के शब्द

मंगल

अविगत अगम अपार, पार कैसे पाइए।
जेहि खोजत ब्रह्मादिक थाके, विष्णु न पायो भेव।
जेहिं खोजत शिव छकित भयो है, सनकादिक सुखदेव॥
शेष सहस मुख छकित भये हैं, स्तुति करैं मुरारि।
ऋग, यजु, साम, अथर्वण थाके, कर न सके निरवारि॥
योगी यती तपी संन्यासी, दीगम्बर दरवेश।
चुंडित मुंडित नागा मौनी, अरुझि रहे बहु भेष॥
तीरथ ब्रत को यही महातम, पूजत पाहन पानी।
एको सुकृत हाथ नहिं आवत, कहि जो गये मुनि ज्ञानी॥
धरति अकाश पवन अरु पानी, भिन्न-भिन्न विस्तार।
जाको तेज सकल घट दरशै, सो कस कहिए न्यार॥

जो कहिए सबहिन में साहब, मृत्यु कहाँ ते होवे।
कहँ कबीर वाके बलि जैहों, जाके प्राण न होवे ॥ १ ॥

माया बादरी घट चन्दा दरशे नाहि।
मोह घटा घन घेरि आई, नित्य उपजै अहंकार।
तृष्णा बरखै बिजुली चमकै, भीज रहा संसार ॥
ज्ञान हरेव गुरुदेव को, ध्यान धरे अब कौन।
माया का मुख देख के, टेहँक चले जस लौन ॥
माया काहि सराहिए संतो, जस तरुवर की छाँह।
राजा प्रजा छत्रपती, गल गए कच्चे बाँह ॥
माया से सब होत है, सिद्ध साधु औतार।
जासे माया होत है, सो साहब है न्यार ॥
ज्ञान पवन होय गरजिया, बादर गए बिलाय।
कहैं कबीर कुमुदनी बिगसै, चन्दा दरशै आय ॥ २ ॥

दूर गवन तेरो हंसा हो, गति अगम अपार।
नौ, छः, चौदह विद्या हो, नहिं वेद विचार।
योग जाप तप क्रिया हो, नहिं नेम अचार ॥
नहिं काया नहिं माया हो, नहिं कुल व्यवहार।
तीन देव तैंतीसों हो, नहिं दशों औतार ॥
पुरुष रूप क्या वरणों हो, गति अगम अपार।
कोटि भानु ससि शोभा हो, एक रोम उजियार ॥
हंसा उड़ि हंसन मिले, वक होय रहे न्यार।
साहब कबीर के दीहल हो, निर्गुण टकसार ॥ ३ ॥

संतो प्रतीत करे सो पावै।
यह पृथ्वी की चार दिशा है, काया भेद लखावै।

बिनसे धरती बिनसे काया, तो जीव कहाँ समावै ॥
स्वाँसा सुमिरै घड़ी विचारै, लगन तत्व में राखै ।
जब जियरा को काल गरासै, कवन नाम गहि बांचै ॥
त्रिकुटी मध्ये ध्यान लगावै, अजपा जाप जपावै ।
सुरति समानी अधाधुंध में, बिन जाने कहाँ जावै ॥
साधु वही सो सेवा जीतै, सेवा सतगुरु पावै ।
बलिहारी वहि सत्यगुरू की, जो यह गुफा लखावै ॥
जो पद कहों अकह ते न्यारा, ताहि देखि लौ लावै ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न भौजल आवै ॥ ४ ॥

हंसा हंस मिले सुख होई ।

जो तू हंसा प्यास नीर के, कूप नीर नहिं होई ।
यह तो खेल सकल ममता को, हंस तजै जैसे चोई ॥
हंस हमारा शब्द बसेरी, शब्द अहारी होई ।
लै बैठाऊँ अमर लोक में, हंसा हंस समोई ॥
यह यम तीन लोक का राजा, बाँधे यंत्र सजोई ।
ताहि जीति चले हंस हमारे, यम जो मरिहै रोई ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हंस न जात बिगोई ।
लै पहुँचावों अमर लोक में, आवागवन न होई ॥ ५ ॥

कबीरा तेरो घर कन्दला में, यह जग रहत भुलाना ।
गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल देवाना ॥
सकल ब्रह्म में हंस कबीरा, काग न चोंच पसारा ।
मनमथ कर्म धरै सब देही, नाद बिन्द बिस्तारा ॥
सकल कबीरा बोलै बानी, पानी में घर छाया ।
अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया ॥

कामिनि रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिंदा होई।
बड़ बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकड़ सका नहिं कोई।।
ब्रह्मा वरुण कुबेर पुरन्दर, पीपा प्रहलाद चाखा।
हरण्याकश्यप नख उद्र विदारा, तिह को काल न राखा।।
गोरख ऐसो दत्त दिगम्बर, नामदेव जैदेव दासा।
तिनको ख़बर करत नहिं कोई, कहाँ किए उन वासा।।
चौपड़ खेल होत घट भीतर, जन्म को पासा डारा।
दम दम की कोई खबर न जानै, कर न सकै निरवारा।।
चार दिसा महि मंडल रच्यो है, रूम साम बिच दिल्ली।
ता ऊपर कुछ अजब तमाशा, मारे है यम किल्ली।।
सब औतार जाके महि मंडल, अनंत खड़ा कर जोरे।
अद्भुत अगम अगाध रचेव है, ये सब शोभा तोरे।।
सकल कबीरा बोलै बीरा, अजहूँ हो हुशियारा।
कहैं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हर दम करो पुकारा।। ६।।

जगर मगर एक नग्र, अग्र की डोर है।
बूझो सन्त सुजान, शब्द घन घोर है।।
कहूँ नग्र की डोर, तो सूक्षम झीन है।
सुरति निरति से जाय, सोई प्रवीन है।।
मूल द्वार को तार, लाग सुर भीतरे।
इन्द्री नाल की जोर, मिला गुण तीसरे।।
नाभि कमल की शक्ति, मिलावे आनिके।
तीन तार करि एक, अगम घर जानिके।।
हृदय कमल की नाल, तार से जोरिए।
योग युक्ति से साधि, मवासा तोरिए।।

कंठ कमल की नाल, तो स्वर में आनिए ।
पाँचों सात मिलाय, ऊपर को तानिए ।।
रूप नाल की डोरि, निरंजन वास है ।
सुरति रहै बिलमाय, मिलावत स्वास है ।।
वंक नाल दुइ राह, एक सम राखिए ।
चढ़ो सुषुमना घाट, अमी रस चाखिए ।।
ता ऊपर आकाश, बहुत प्रकाश है ।
तामे चार मुक़ाम, लखै सो दास है ।।
त्रिकुटी महल में आव, जहाँ ऊँकार है ।
आगे मारग कठिन, सो अगम अपार है ।।
तहँ अनहद की घोर, होत झंकार है ।
लाग रहैं सिध साधु, न पावैं पार है ।।
सोहं सुमिरन होय, सो दक्षिण कोन है ।
तहँवा सुरति लगाय, रहै उनमौन है ।।
पश्चिम अक्षर एक, सो रारंकार है ।
यह ब्रह्मांड को ख़्याल, सो अगम अपार है ।।
धर्मराज को राज, मध्य स्थान है ।
तीन लोक भरपूर, निरंजन ज्ञान है ।।
ता ऊपर आकाश, अमी का कूप है ।
अनंत भानु प्रकाश, सो नग्र अनूप है ।।
तामें अक्षर एक, सो सब का मूल है ।
कहो सूक्ष्म गति होय, विदेही फूल है ।।
निःअक्षर का भेद, हंस कोई पाइहै ।
कहैं कबीर सो हंसा, जाय समाइहै ।। ७ ।।

साखी : जाप मरे अजपा मरे, अनहद हू मरि जाय।
शब्द सनेही ना मरे, ताको काल न खाय॥

शब्द : झूँठो जिन पतिआहु हो, सुन संत सुजाना।
घटही में ठग पूर है, मत खोव अपाना॥
झूँठे का मंडान है, धरती असमाना।
दसो दिशा जेहि फंद है, जिव घेर निआना॥
योग जाप तप संयमा, तीरथ व्रत दाना।
नौधा वेद किताब है, झूँठे का बाना॥
काहू के शब्दै फुरै, काहू के करामाती।
मान बड़ाई ले रहा, हिन्दू तुर्क दोउ जाती॥
कथनी कथै असमान की, मुद्दत नियरानी।
बहुत खूबी दिल राखते, बूड़े बिन पानी॥
कहैं कबीर कासे कहों, सकलो जग अंधा।
साँचे सो भागा फिरै, झूठे से बंधा॥ ८॥

गुरु सेवक संवाद : जगत की उत्पत्ति

साखी : प्रथम समरथ आप रहे, दूजा रहा न कोय।
दूजा केहि विधि ऊपजा, पूछत हों गुरु सोय॥
तब सत्यगुरु मुख बोलिया, सुकृत सुनो सुजान।
आदि अंत का परिचय, तोसों कहों बखान॥
प्रथम सुरति समरथ कियो, घट में सहज उचार।
ताते जामन दीनियाँ, सात करी विस्तार॥
दूजे घट इच्छा भई, चित मन सातों कीन।
सात रूप निर्माइया, अविगत काहु न चीन्ह॥

तब समरथ के श्रवण ते, मूल सुरति भई सार।
शब्द कला ताते भई, पाँच ब्रह्म अनुहारि॥
पाँचों पाँचों अंड धरि, एक एक में कीन्ह।
दुइ इच्छा सो गुप्त है, सो सुकृत चित चीन्ह॥
योग माया के कारणे, ऊ जो अक्षर कीन्ह।
यह अविगत समरथ करी, ताहि गुप्त कर दीन्ह॥
स्वासा सोहं ऊपजा, कीन अमी बंधान।
आठ अंश निरमाइया, चीन्हों सन्त सुजान॥
तेज अंड आचिन्त्य का, दीन्हों सकल पसार।
अंड शिखर पर बैठ के, अधर द्वीप निरधार॥
ते अचिन्त्य के प्रेम से, उपज्यो अक्षर सार।
चार अंश निरमाइया, चार वेद विस्तार॥
तब अक्षर को दीन्हिया, नींद, मोह, अलसान।
वे समरथ अविगत करी, मर्म न कोई जान॥
जब अक्षर को नींद गइ, दबी सुरति निर्वान।
श्याम वर्ण एक अंड है, सो जल में उतरान॥
अक्षर घट में उपजै, ब्याकुल संसय शूल।
किन्हिं अंड निर्माया, किया अंड का मूल॥
तेहि अंड के ऊपरे, लग्यो शब्द की छाप।
अक्षर दृष्टि से फूटिया, दस द्वारे गढ़ बाप॥
तेहिं ते ज्योति निरंजन, प्रगट्यो रूप निधान।
काल अपरबल वीर भा, तीन लोक प्रधान॥
ताते तीनों देव भए, ब्रह्मा विष्णु महेश।
चार खानि लै सिरजिया, माया के उपदेश॥

चारि वेद षट् शास्त्र औ, दस अष्ट पुरान।
आशा दै जग बाँधिया, तीनों लोक भुलान ॥
लख चौरासी धार में, तहाँ जीव दै वास।
चौदह यम रखवारिया, चार वेद विश्वास ॥
आप आप सुख सब रमे, एक अंड के माहिं।
उत्पति प्रलय दुख सुख, फिर आवैं फिर जाहिं ॥
तेहि पाछे हम आइया, सत्य शब्द के हेत।
आदि अंत की उतपति, सो तुम सो कहि देत ॥

शब्द

सात सुरति सब मूल है, परलय इनहीं माह।
सोई ख्याल समरथ करी, रहे सब अक्षत छिपाय।
सोई संधि लै आयऊँ, सोवत जगै जगाय ॥
सात सुरति के बाहरे, सोरह संख के पार।
तहँ समरथ को बैठका, हंसन केर अधार ॥
घर घर हम सब सो कही, शब्द न सुने हमार।
ते भौसागर डूबही, लख चौरासी धार ॥
मंगल उत्पति आदि का, सुनियो संत सुजान।
कहँ कबीर गुरु जागृत, समरथ का फ़रमान ॥ १ ॥
बलिहारी है वहि साहेब की, जिन यह युक्ति बनाई।
उनकी शोभा केहि विधि कहिए, मोसे कही न जाई ॥
बिना ज्योति की जहँ उजियारी, सो दरशै वह दीपा।
निरतत हंस कुलाहल भारी, वाही पुरुष सरूपा ॥
झलकै पदुम नाना बिध बानी, माथे छत्र बिराजै।
कोटिन भानु चन्द्र तारागण, एक रोम छबि छाजै ॥

कर गहि हंस जबै मुख बोलै, तब हंसा सुख पावै ।
हंस बंस जिन बूझ बिचारी, सो जीवन मुक्तावै ।।
चौदह लोक वेद का मंडल, तहँ लगि काल दोहाई ।
लोक वेद जिन फंदा काटिन, सो वह लोक सिधाई ।।
सात सकारै चौदह मारै, भिन्न भिन्न निरतावै ।
चार अंश जिन समुझि बिचारी, सो जीवन मुक्तावै ।।
चौदह लोक बसै जम चौदह, तहँ लग काल पसारा ।
ताके आगे ज्योति निरंजन, बैठे शून्य मँझारा ।। २ ।।
सोरह षट अक्षर भगवान, जिन यह सृष्टि उपाई ।
अक्षर कला सृष्टि से उपजे, उनहीं माँह समाई ।।
सत्तरह शंख पर अधर द्वीप है, जहँ शब्द अतीत विराजै ।
नितँ सुखी बहुत विधि शोभा, अनहद बाजा बाजै ।।
ताके ऊपर परम धाम है, मर्म न कोई पाया ।
जो हम कही कोई नहिं मानै, ना कोइ दूसर आया ।।
वेद न साखी सब जिव अरुझे, परम धाम ठहराया ।
फिर फिर भटकें आप चतुर होय, वह घर कोई न पाया ।।
जो कोई होय सत्य का किनका, सो हम का पतियाई ।
और न मिलै कोटि कर थाकै, बहुरि काल घर जाई ।।
सोरह शंख के आगे समरथ, जिन जग मोहिं पठाया ।
कहैं कबीर आदि की बानी, वेद भेद नहिं पाया ।। ३ ।।

बाजै इक तार सुनो दिन रतिया ।
पाँच तत्व का बना तम्बूरा, खूँटी लगी है तीन युगतिया ।
खिन तोरै खिन तार मिलावै, उठे राग सुनो बहु भंतिया ।।
अनहद तार अगम गति बाजै, गगन महल चढ़ि नाचै सुरतिया ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, हमहूँ सो कहो गगन की बतिया ।। ४ ।।

संतो सब शब्दै शब्द बखानै ।
शब्द फाँस फाँसे सब कोई, शब्दै नहिं पहिचानै ।
जो जाको औराधन कीन्हा, तिनका कहब ठिकानै ।।
प्रथमें प्ररण पुरुष पुरातन, पाँच शब्द उच्चारा ।
सोहं शक्ति निरंजन कहिए, ररंकार ऊँकारा ।।
पाँच शब्द औ तत्व प्रकृती, तीनों गुण उपजाया ।
लोक द्वीप औ चार खान रच, लख चौरासी बनाया ।।
शब्दै काल कलन्दर कहिए, शब्दै भर्म पुकारा ।
शब्दै पुरुष प्रकाश मेटि के, मूँदे बैठे द्वारा ।।
ज्ञानी योगी पंडित सबही, शब्दै में अरुझाना ।
मुद्रा साध रहे घट भीतर, काया पाँच ठिकाना ।।
शब्दै निर्गुन शब्दै सर्गुण, शब्दै वेद पुराना ।
शब्दै पुनि काया के भीतर, करि बैठे स्थाना ।।
शब्द निरंजन चाचरि मुद्रा, सो है नैनन माँहीं ।
ताको जाना गोरख योगी, महा तेज है ताहीं ।।
ओं ओंकार भूचरी मुद्रा, है त्रिकुटी स्थाना ।
व्यास देव ताको पहिचाना, चाँद सूर्य सों जाना ।।
सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा, भँवर गुफा स्थाना ।
सुकद्देव ताको पहिचाना, सुनि अनहद की ताना ।।
शक्ति शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई अकाश सनेही ।
तामें झिलमिल ज्योति दिखावै, जानो जनक विदेही ।।
ररंकार खेचरी मुद्रा, दशवाँ द्वार ठेकाना ।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, ररंकार पहिचाना ।।
पाँच शब्द औ पाँचो मुद्रा, सोई निश्चय माना ।

आगे पूरण पुरुष पुरातन, तिनकी खबर न जाना ।।
परम पुरुष घर अधर तार है, अधर तार के आगे ।
तिनके आगे कौन बतावै, सबै शब्द में पागे ।।
सिद्ध साधु त्रिदेव आदि ले, पाँच शब्द में अटके ।
मुद्रा साधि रहे घट भीतर, फिर औंधे मुख लटके ।।
पाँच शब्द और पाँचो मुद्रा, लोक दीप जम जाला ।
परम पुरुष घर अधर जहाँ लों, बूझ बिना सब काला ।।
कहै कबीर बूझि के भीतर, बूझि हमारी जाना ।
आपा खोय आप को चीन्हे, तब सब ठौर ठिकाना ।। ५ ।।

मोंको कहाँ ढूँढो बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
ना छेड़ी में ना भेड़ी में, ना मैं छुरी गड़ास में ।
ना सींगी में नहीं पूछ में, ना हड्डी ना माँस में ।।
ना मस्जिद में ना मंडप में, नहिं काशी कैलाश में ।
नहीं अवधपुर नहीं द्वारका, मोर भेंट विश्वास में ।।
ना बन्दे मैं क्रिया कर्म में, नहीं योग वैराग में ।
खोजी होय तो तुरत मिलूँ मैं,पल छिन की तलाश में ।।
मैं तो बसूँ शहर के बाहर, घर मेरा मावास में ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासन के स्वास में ।। ६ ।।

यौ सा जानता कोई हाल ।
धरती वेध पताले जावै, शेष नाग को वश करि लावै ।
वासू आय सत्य को तारा, निस वासर ताको उजियारा ।
कंठ कमल पर साल ।।
दिन को सोधि रैन में लावै, रैन के भीतर भानु जगावै ।

भानु के भीतर ससि को वासा, ससि के भीतर भानु प्रकाशा ।
सुरति निरति को ख्याल ।।
गगन गुफा में अति उजियाला, अजपा जाप जपन को माला ।
शंखा धुनि शहनाई बाजै, घट घट देव निरंजन छाजै ।
सुरति सोहं का ख्याल ।।
पूरब सोधि पश्चिम को जावै, अधा धुंध को हाल बतावै ।
शिला द्वार दै दक्षिण राखे, उत्तर जाय सजीवन चाखे ।
चारो दिशा का माल ।।
कहैं कबीर बिरला जन पावे, जाको सत्यगुरु आप लखावे ।
दया दीनता आवे भाई, जो चलै हमारी नाल ।।७।।

मंगल : सत्यसुकृति सत्य नाम, जगत जानै नहीं ।
बिना प्रेम प्रतीत, कहा मानै नहीं ।।
जग में जीव अनन्त, न जानै पीव को ।
बहुत कहा समुझाय, चौरासी के जीव को ।।
अनुभौ कीन प्रकाश, इन्हीं के कारणे ।
कोई कोई हंस हमार, शब्द निरवारने ।।
गंग जमुन के बीच, उड़ै दुइ पाँखिया ।
पिया मोर बसैं बिदेश, दुखैं मोर आँखियाँ ।।
चाउर भरल चँगेर, तो ऊपर आरसी ।
पिया मोर चतुर सुजान, लखैं मेरी पारसी ।।
चौमुख दियना बारि, महल बिच जोहती ।
पिया बिन सूनी सेज, समुझ गुन रोवती ।।
जेहि सुख में मन मगन, सो यहि संसार में ।
सो सुख स्वप्ने का राज, झोंक सब भार में ।।

साहेब कबीर गुरु ज्ञान, हेर हृदय धरो।
जहवाँ शब्द अखंड, ताहि के संग करो ॥ ८ ॥

होरी

सारशब्द घर लाग़ी लगन रे, वाको दूर भयो दुख जरा मरन रे।
निस वासर की सोच विसरिगो, जाहिं मिल्यो गुरु शोक हरन रे॥
दस औतार वहाँ नहिं कोई, छवों चार दस अष्ट वरन रे।
ब्रह्मादिक सनकादिक नाहीं, दत्ता ब्यास कुबेर करन रे॥
काल अकाल ज्योति अनहद नहिं, योग युक्ति नहिं ध्यान धरन रे।
इंगला पिंगला सुषमनि नाहीं, अजपा नहिं कोई तारण तरण रे॥
नाता गोता माय बाप नहिं, अहै आप वह एक वरण रे।
वह घर मदन मगन होय बैठे, जो अब राखैं राम परन रे॥

अब मैं सतगुरु मदन साहब के, जिनकी ऊपर तारीफ़ कर चुका हूँ, थोड़े से शब्द लिखता हूँ, जिनके पढ़ने से मालूम होगा कि आपका उपदेश सत्यगुरु कबीर साहब के हुक्म के मुताबिक़ सारशब्द को लेने को हुआ है कि बिना सारशब्द के मुक्तिगति न होगी। उस सारशब्द सत्यपुरुष को खोजना चाहिए, जो सत्य-गुरु शब्दविवेकी से प्राप्त होगा। इस वक़्त में सत्यगुरु मदन साहब के ज्ञान का प्रकाश वैसा ही है, जैसा कि कबीर साहब जीवों के लिए कह गए हैं। उसी प्रकार से इस समय में सत्यगुरु मदन साहब और उनकी गद्दी पर जो हैं वैसा ही उपदेश व लखाव सार-शब्द सत्यपुरुष का, सत्यगुरु कबीर साहब के हुक्म के मुताबिक़ करके, जीवों को काल के जाल से छुड़ा कर मुक्ताते हैं और उनके कलाम से वही लज़्ज़त व रोशनी पैदा होती है जैसी कि सत्यगुरु कबीर साहब के कलाम में है।

मोहिं बताओ केहि सिर नावों, केहि ध्यावों काको ध्यान धरों।
जो पूछों सो कहौ दया करि, कहत न मन में क्रोध करो ।।
कौन रेख है कौन भेख है, कौन देश जहँ जाइ अड़ो ।
कौन जीव है कौन शीव है, कौन भेद से काज सरो ।।
फल चारो केहि देश मिलत हैं, कौन बृक्ष जेहि लागि फरो ।
ताकर भेद मोहिं समझावो, को तोरै को खाइ तरो ।।
राम को नाम कहाँ ते आयो, आदि कहाँ जहाँ से उचरो ।
की भुइँ फोरि प्रकट भयो जग में, की अकाश से कूदि परो ।।
ज्ञानवन्त से बूझ हमारी, दुइ में एक करो ! न टरो ।
की आपन करि मोहिं बुझाओ, की मेरा होइ आनि लड़ो।।
मर्कट मूठि छाड़ि देओ रे, केहि कारन बिन अगिन जरो ।
तेरा साहब है तुझ ही में, मदन खोज दिल माँहि करो ।।२।।

गहि के नाम डोरि, नाह से नेह जोरि,
अमर मंदिल जहँ तहँ चढ़ि जाइला ।
पाँच औ पचीस जहाँ सोहं इस नहिं,
सहज सहज गुरु शब्द समाइला ।।
इंगला पिंगला सुषमन गम्य नाहीं,
जहाँ परम पुरुष मिल मंगल गाइला ।
वेद को विचार जहाँ दस औतार नहीं,
तीरथ ब्रत जप तप बिसराइला ।।
रैन दिन रवि ससि गम्य नहीं जहाँ,
गुरु प्रताप तत्व चित्त में समाइला ।
गगन धरनि तेज वायु जल नाहीं जहाँ,
अक्षय बृक्ष चढ़ि अमी फल खाइला ।।

जागृत स्वप्न सुषुप्ती तुरिया तजि,
नाम अमल रस पियत अघाइला।
कहँ जो अगम गति कहत सही बनत नहिं,
कछु कारज सरे गुंगे की गति सैन बुझाइला।।
मदन समुझि सत मति गति राधापति,
तजि के दुर्मति साँचे राम को रिझाइला ।। ३ ।।

आछत खसम रांड़ भई धनियाँ, झूँठ खसम मन भावत रे।
झूँठ शिष्य गुरु झूँठ जगत में, झूठै कान फुकावत रे ।।
साँच खसम संग किय न मितैया, बिन गुरु कौन लखावत रे।
साँच कहत बकवाद बढ़ावत, तुरत तमकि उठ जावत रे ।।
सौदा झूँठ झूँठ सौदागर, झूठै हाट लगावत रे।
पूर पसेरी कतहुँ न देखों, घाटि सबै तौलावत रे ।।
वेद पुरान कुरान किताबें, निरखु कौन निरमावत रे।
पद से हीन दीन सब पौ पर, कुशल कहाँ से पावत रे ।।
अपनी अग्नि जरत जग सारा, आपै अग्नि उठावत रे।
बाँस रगड़ जैसे अग्नि उठतु हैं, बँसवहिं उलटि जरावत रे ।।
निकटहिं वस्तु सूझि नहिं आवत, अंध भया सब धावत रे।
एक बात की बात बहुत विधि, मदन सबहिं समुझावत रे ।।४।।

घट बिनसे कहँ जावगे हंसा, कहँ तेरो ठौर ठेकाना है।
काया भीतर काल बसेरा, एक दिन प्राण पयाना है ।।
काहे न खोज करो घट भीतर, केहिं कारन फिरत भुलाना है।
जग सनेह जस सेमर सुगना, अंतकाल पछिताना है ।।
भए प्रकाश जब तिमिर नाश, तब सतगुरु मिले सयाना है।
घर पहिचाना पद निर्वाना, पक्का देश पुराना है ।।

आना जाना सब बिसराना, मदन मुक्ति मम माना है।
ना कहिं आना ना कहिं जाना, रूप में रूप समाना है ॥ ५॥

सुनो सखी एक बात मोर तुम, कहाँ खसम ठहरायो जी।
जौ तुम कहो खसम नभ वासी, ज्योति सरूप लखायो जी।
दुलहा स्वर्ग ज़मी पर दुलहिन, केहि विध क्षोभ मिटायो जी ॥
जो अविनाशी घट घट वासी, ताको छूति लगायो जी।
वरण चारि औ क़ौम छत्तिसो, फेरि का भेद बढ़ायो जी।
माला टोपी छाप तिलक, डटिके श्रृङ्गार बनायो जी ॥
रूप रेख जाके पिंड प्राण नहीं,केहि विधि तोंहि समझायो जी।
त्रास फास में जन्म गवायो, पिया दीदार न पायो जी ॥
मदन बिना गुरु माठ बिगड़ गए, फुहरी का झोर बनायो जी ॥६॥

सत्यगुरु दीवान जवाहरपति साहब के वचन

शब्द रेखता

भुलान्यो जगत की माया, कौल की सोच बिसराया।
गरभ में विविध दुख पाया, गुरू जब कीन्ह तोंहि दाया।
प्रसव का पवन निकलाया, कष्ट तोंहि जीव बहु पाया ॥
हर्ष तहाँ नाद तब गाया, बोल छिन एक नहिं आया।
रुदन की शोर तब लाया, क्षुधा की पीर जनाया ॥
पिलायो मातु जब जाया, खेलन शिशु संग तब धाया।
युवा में काम अधिकाया, कामिनी संग मन भाया ॥
वृद्धापन आय नियराया, चहूँ पन खोय पछताया।
जवाहिर सोच नसाया, गुरू की शरण में आया ॥१॥

गजल रेख़ता

भजन कर नाम का भाई, मरो जनि सोच वश धाई ।
स्वप्न सम जगत यह जावै, कोई नहिं काम में आवे ।।
बिकल नर क्यों पड़ा अंधा, समझ गुरु शब्द है रंधा ।
तजो नगभार सिर अपने, मिलैं गुरु सोच नहिं सपने ।।
बहा सब मोह की धारा, पड़ा भ्रम कूप मंझारा ।
सजन परवार के माहीं, पड़ा नर छूटबे नाहीं ।।
न भूलो देख धन धामा, कोई नहिं आइहै कामा ।
जवाहिर शब्द गुरु देखो, और यम धोख सब पेखो ।।२।।

गजल

मुर्शिद महरमी ना किया नर, देह धर के क्या किया ।
कर्म फंदा डाल गर, जंजाल सिर पर धर लिया ।
गजराज जोर बिसाय क्या, जब लोह बेड़ी भर दिया ।।
गुरु ज्ञान राह नजात की, वह शब्द सूरत ना पिया ।
हूँ पाक गुरु के भेद से, क्यों आब गुसुल में है छिया ।।
फिराओ दिल गुनाहों से, क्यों कुफ्र करते हो मियाँ ।
महबूब है नजदीक ही, क्यों दूर मक्के सिर दिया ।।
जो पिंड रचना पूर है, नहीं है उडंसे मेरिया ।
जवाहिर मिलैं मुर्शिद सही, यह रूह युग युग मोजिया ।।३।।

रेख़ता

सुरति अलमस्त पिव प्यारा, लखेव गुरु शब्द है न्यारा ।
अचम्भो देश को देखा, सकल जग ख्वाब कर पेखा ।।
गंग में नाद ध्वनि बोलैं, शब्द सुन सुरति नहिं डोलैं ।
थकित मन पवन होय थीरा, सुखो निज आतमा धीरा ।।

फिरा गुर अलमदस्तूरा, निकट ही नाम जाहूरा।
बिना महबूब जिन्दगानी, बृथा करि सोच अभिमानी॥
मिलै जब सेज को साथी, कठिन जो काल तेहिं नाथी।
जवाहिर राह तब पाया, दूलमपति भेद समझाया॥

शब्द गज़ल

गाजै मधुर धुनि गैबवा में, गुरु ज्ञान बिन सुनता नहीं।
भूल्यो तमाशा जगत को, यह ख़्वाब है मानो सही।
कोई न संगी आपनो, नट को तमाशा क्या कही॥
माता पिता सुत बंधवा, इनकी सिफ़त में सुधि वही।
उस क़ौल को समुझै नहीं, सब उम्र बीती बादही॥
वोजुद इश्क के स्वाद में, गुरु ज्ञान को नाहीं गही।
कुफ़ुरान में दिन खोइया, तुम दर्द दिल में ना लही॥
मुरशिद महरमी खोज ले, महबूब पासहि में रही।
जवाहिर मगन गुरुज्ञान में, सतनाम निस दिन सूझही॥

शब्द मंगल

मंगल परम अनूप, सुमिर गुरु गाइ के,
तन मन धन सब अरपि, चरन गहु धाइ के,
जो गुरु होंहि दयाल, तो नाम लखाइ के।
ज्ञान खड्ग दे हाथ, मोह विचलाइ के,
पाँच पचीसो मारि, अमल बैठाइ के।
काम क्रोध मद लोभ को, मूड़ मुड़ाइ के,
चारि गए जब हारि, रहे पछताइ के।
क्षमा शील संतोष, तो प्रजा बसाइ के,
करहु अकंटक राज, नाम निधि पाइ के।

सारशब्द की गैल, लखो चित लाइ के,
सुरति किए सिंगार, गगन पर जाइ के।
निरखत शब्द विदेह, अधिक हरषाइ के,
सुरति निःअक्षर रूप, रही ठहराइ के।
जो यह मंगल बूझै, अधिक हरखाइ के।
जवाहिरपति तेहि काल, रहै सिर नाइ के।।

शब्द

जोगी जन शब्द सुनो निरधारा, बिन सतगुरु कोई पाव न पारा।।
इंगला पिंगला सुषमन अजपा नहिं, परम पुरुष सबही ते न्यारा।
पौन पानी तेज धरनि गगन नहिं, अगम शब्द गुरु गम्य विचारा।।
स्वप्न सुषुप्ति तुरिया जागृत तजि, अकह नाम कोई सुरति शभारा।
दस औतार वेद गम्य नाहीं, तीरथ ब्रंत नहिं नेम अचारा।।
त्रिकुटी ज्योति अनाहद नाहीं, परम तत्व नाहीं ओंकारा।
उनमुनि ध्यान अगोचर नाहीं, है निःस्वास न सोहं सारा।।
चन्द्र सूर्य जहँ रैन दिवस नहिं, अक्षर एक न ररंकारा।
जवाहिरपति यह भेद कठिन है, बिन सतगुरु नहिं होय उबारा।।

आरती

नाम आरती जो जन साजै, गुरु कबीर तहँ प्रकट बिराजै।।
सतगुरु चरण कमल चित लावै, प्रेम पुष्प तहाँ आन चढ़ावै।।
पाँच तत्व लै दीपक बारै, भाव भक्ति सेवा अनुसारै।।
अनहद नाद विविध विधि बाजै, सारशब्द न्यारे ध्वनि गाजै।।
सुरति निरति युग बाँधि समाई, यम चौदह तेहि निकट न जाई।।
यहि विधि आदि नाम को ध्यावै, भौसागर दुख बहुरि न आवै।।

9

"सदगुरु कबीर साहब का सिद्धान्त"

सद्गुरु कबीर साहब का सिद्धान्त अनादि, अखंड, अद्वितीय, एक महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा है। उसके अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ सादि है। वह महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा, प्रकृति, जीव, ईश्वर, बह्म, ज्योति, अनहद और बावन अक्षर आदि के परे हैं। उसी को सार शब्द, सत्यनाम, निःअक्षर और आदि नाम भी कहते है।

उपरोक्त समस्त पदार्थों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है, प्रकृति दो प्रकार की है: स्थूल और सूक्ष्म। पंच तत्व और पंच तत्व के कार्य रुप पदार्थों को स्थूल प्रकृति कहते है तथा सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को सूक्ष्म त्रिगुणात्मक प्रकृति कहते है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये तीन शरीर, जागृत, स्वप्न, सुषोप्ति ये तीन अवस्थाएं। सत्व, रज, तम ये तीन गुण और शुभाशु कर्म, इन सबके सहित जो त्वं पद अविद्या के बंधन में चैतन्य आत्मा है, उसे जीव कहते हैं।

उपरोक्त तीन शरीर, तीन अवस्था और तीन गुण आदि से परे महाकरण शरीर विद्यामाया, तुरीय तत्पद स्थान में जो चैतन्य आत्मा स्थिर रहकर जगत का सृजन, पालन और संहार अर्थात उत्पत्ति, प्रलय करता है उसी चैतन्य आत्मा को ईश्वर–भगवान, सगुण ब्रह्म, सवल ब्रह्म, मायापति आदि कहते है। और उक्त चैतन्य आत्मा को ही ज्योतिर्मय आकाशवत् व्यापक कैवल्य शरीर, तुरियातीत असिपद स्थान में निर्गुण ब्रह्म, निरंजन, अव्यक्तब्रह्म, निर्विशेष ब्रह्म, निर्विकल्प, सामान्य ब्रह्म, कारण ब्रह्म, परात्पर ब्रह्म आदि कहते है। एवं तुरीय और तुरियातीत ये दोनों स्थान निर्गुण ब्रह्म निरंजन के ही हैं, जिसमें तुरीय तत्पद स्थान पर तो वह स्थिर होकर जगत का सृजन पालन, और संहार आदि व्यवस्था

करता है और महाकारण शरीर विद्यामाया के सहित होने से ही उसे मायापति ईश्वर और भगवान आदि कहते है। यह तुरीय तत्पद ही जगत के उत्पत्ति प्रलय का स्थान है, और पनुः वही निरंजन ईश्वर आत्मा जब जगत के उत्पत्ति प्रलय की कल्पना से रहित होकर तुरीयातीत असिपद स्थान में स्थिर हो जाता है, तब वेदादि शास्त्र उसे निर्विकल्प निर्गुण ब्रह्म, निर्विशेष ब्रह्म, सामान्य ब्रह्म, परात्पर ब्रह्म आदि नामों से वर्णन करते है। यह तुरीयातीत असि पद स्थान महाप्रलय के पश्चात उसके विश्राम करने का स्थान है। प्रकृति और प्रकृति के कार्यरुप सम्पूर्ण जड़वर्ग पदार्थों को क्षर (नाशवान) कहते है तथा अक्षर (अविनाशी) चैतन्य आत्मा को कहते है। एवं जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया और तुरियातीत ये पंच अवस्थाएं है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य और हंस देह ये छः शरीर है। चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी और उन्मुनी ये पाँच मुद्राएँ है

निरंजन, ओंकार, सोह्ंग, शक्ति ज्योति और रकार ये पाँच ब्रह्म हैं तथा बावन अक्षर वर्णात्मक पिण्डी शब्द और संख, शहनाई, वीणा, सितार, मृदंग, बाँसुरी, सिंह गर्जन, मेद्य गर्जन और ओंह, सोहं, रंरकार आदि सब अनाहद ध्वनात्मक ब्रह्माण्डी शब्द है। एवं ब्रह्माण्ड के अंतर्गत ही दिव्य ज्योति का प्रकाश है जिसे योगीजन ज्योतिमय ब्रह्म कहते हैं और उसकी प्रप्ति के लिए प्राणायाम योग साधन करते हैं इन सब जड़वर्ग पदार्थों को ही पौ, प्रकृति, क्षर, माया कहते हैं तथा इन समस्त पौ, क्षर मायिक पदार्थों का प्रकाशक और साक्षी दृष्टाकर्त्ता चैतन्य आत्मा ब्रह्म ही अक्षर है और उक्त चैतन्य आत्मा ब्रह्म के परे महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा ही परम अक्षर निः अक्षर है एवं उसी महाचैतन्य परम पुरुष परमात्मा का ही चैतन्य ज्ञानस्य प्रकाशरुप चैतन्य आत्मा ब्रह्म है उक्त परमात्मा से इस चैतन्य आत्मा का प्रकाश, प्रकाशक, पिता

3

पुत्रवत् सबंध है। जैसे सूर्य से किरण धूप तथा दीपक से प्रकाश विकास होने पर भिन्न मालूम होता है, वास्तव में भिन्न नहीं है किन्तु उसी में है। वैसे ही महा चैतन्य सत्पुरुष परमात्मा से चैतन्य अक्षर आत्मा का विकास होने से भिन्न मालूम होता है वास्तव में भिन्न नहीं है उसी में है और उसी का स्वरुप है। अतएव चैतन्य अक्षर आत्मा महाचैतन्य परम पुरुष परमात्मा से निकला हुआ चैतन्य ज्ञानस्य प्रकाश रुप अंश है और महाचैतन्य परम पुरुष परमात्मा उसका प्रकाशक अंशी परमपिता है एवं यही चैतन्य अक्षर आत्मा की पंच अवस्था, छः शरीर, विद्या, पिंड, ब्रह्माण्ड, त्वं पद, तत्पद और असिपद आदि के उपाधि भेद से वेदान्त में तीन प्रकार का कहा गया है। जिसे कि जीव, ईश्वर और ब्रह्म कहते है। कोई कूटस्थ मिलाकर चार प्रकार का भी चैतन्य कहते है। वह महा चैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा की सार शब्द और निः अक्षर है। अतएव वह महा चैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा ही सार शब्द निः अक्षर अपने आत्मस्वरुप ज्ञान द्वारा ही जानकर प्राप्त होता है। यथा सद्गुरु कबीर साहब कहते है। कि

अलख अपार लखे केहि भाँति।
अलख लखै अलखै की जाति।।

यह सिद्धान्त वेद, शास्त्र, उपनिषद, गीता आदि में नहीं है। इन सब ग्रंथों की पहुँच निःर्गुण, निराकार, निरंजन भगवान तक ही है। इसी निरंजन आत्मा को वेदादि शस्त्रों में परमात्मा सिद्ध किया है और कबीर साहब ने इस निर्गुण निराकार निरंजन आत्मा को उपरोक्त महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा का चैतन्य ज्ञानस्य प्रकाश रुप एक अशं बतलाया है। जैसे कि

आदि **पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा।**
त्रिदेवा शाखा भये, पाती संसारा।।

अर्थात सर्वप्रथम वह सत्यपुरुष परमात्मा तो एक महाचैतन्य रुप वृक्ष है और उसी का एक चैतन्य प्रकाश रुप अंश डार निरंजन आत्मा है एवं निर्गुण निरंजन से उत्पन्न शाखा रुप ब्रह्मा, विष्णु, महेश और पत्ती के रुप में संसार के समस्त जीव है, एवं महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा की महती शक्ति को पाकर ही निर्गुण निरंजन आत्मा सम्पूर्ण पंच भौतिक जगत का रचयिता है। निर्गुण और सर्गुण दोनों रुप इसी के है इसी की महिमा का गुणगान वेद, शास्त्र, उपनिषद गीता आदि में किया गया है। यह तुरीय और तुरियातीत दोनों भूमिकाओं में रहता है। तुरीय भी दो प्रकार है जिसमें एक तो स्वतः तुरीय पद है जोकि समस्त त्रिद्धि सिद्धि आदि ऐश्वर्य शक्तियों का प्रमुख केन्द्र स्थान है और उसका अधिष्ठाता स्वामी विद्या माया प्रेरक निरंजन ईश्वर भगवान है, तथा इसके नीचे जो दूसरा तुरीय पद है, वह शम, दम आदि साधन करने वालों के पहुँचने का स्थान है। जिसमें आगे ब्रह्मा, विष्णु और शिव है तथा इनके नीचे सनकादि, व्यास, वशिष्ठ कपिल मुनि आदि है। परन्तु इन समस्त त्रिदेव, सनकादि, महर्षि आदि का शासक व प्रेरक स्वामी वही निरंजन भगवान है, तथा तवंपद, तत्पद, असिपद इन तीनों पदों से परे (आगे) महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा है। यही से अक्षर चैतन्य आत्मा का लक्ष्य (सुरति) अधोमुख हुआ है, एवं अपने स्वरुप से नीचे मनोमयी असिपद, तत्पद, और त्वंपद की रचना कर बंधन में पड़ गया है और इन्ही तीनों पदों के उपाधि भेद से जीव, ईश्वर तथा निर्गुण निराकार निरंजन ब्रह्म संज्ञा को प्राप्त हुआ है। अतएव यह तुरियातीत असिपद निर्गुण निरंजन ब्रह्म भी माया विकार सहित है क्योंकि सम्पूर्ण जगत सहित चारों अवस्थाओं का सूक्ष्म बीज इसी में रहता है। अतः उक्त तीनों पदों के परे अपना लक्ष्य करके निजचैतन्य स्वरुप का परिचय करें और फिर सार शब्द परमात्मा

में अपने को स्थिर कर देंवे। उपरोक्त तीनों पदों का प्रकाशक दृष्टा अपना चैतन्य आत्मा स्वरुप है जिसके आगे महाचैतन्य सार शब्द परमात्मा है जोकि आत्मा का परम स्वरुप है। अतः उक्त तीनों पदों का भेदन करने के आगे महाचैतन्य निःअक्षर सार शब्द परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश सद्‌गुरु कबीर साहब ने ही किया है। इस लिए जब तक चैतन्य आत्मा पिंड ब्रह्माण्ड एवं उक्त तीनों पदों का भेदन करके भिन्न नहीं कर सकता है। संसार में कोई तो सर्गुण राम, कृष्ण, विष्णु, सूर्य, शिव शक्ति आदि की भक्ति का उपदेश देते है और कोई निगुर्ण निरंजन ब्रह्म की द्वैत अद्वैत भक्ति उपासना का उपदेश करते है। किन्तु सद्‌गुरु कबीर साहब का उपदेश उपरोक्त सर्गुण और निर्गुण दोनों से परे महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा की प्रप्ति का है क्योंकि चैतन्य आत्मा उसी महाचैतन्य सत्यपुरुष परमात्मा की चैतन्य ज्ञान प्रकाश रुप अंश है। अतः उसी की भक्ति उपासना होनी चाहिए। उसकी भक्ति उपासना में योग, प्राणायाम, यज्ञ, हवन, जप, तप, ॐ, सोहं, रंर और ज्योति पिड़ ब्रह्मांडी आदि साधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह साधन प्रकृति क्षर भय है। इस प्रकार सद्‌गुरु कबीर साहब के इस सत्य मत के अतिरिक्त अन्य समस्त मत उक्त तीनों पदों के ही अंतर्गत है। द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत आदि अनेकों ही मत पंथ उक्त तीनों पदों के ही अन्दर चक्कर खाते है और उन्ही का अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते है। इनमें अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त वेदान्त का है जो जड़ चैतन्य मिश्रित अद्वैत है। इसी को स्वामी शंकराचार्य ने भी प्रतिपादित किया है। प्रकृति पुरुष यह द्वैत मत सांख्य शास्त्र का सिद्धान्त है जिसको कपिल मुनि ने प्रतिपादित किया है। प्रकृति, जीव और ईश्वर यह विशिष्टाद्वैत मत का रामानुजाचार्य आदि एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रतिपादित किया है। जड़ पाँच तत्व और चैतन्य जीव को ही सिद्ध करना यह जैनमत सिद्धान्त है। प्रकृतिवाद साइन्स वैज्ञानिक तथा नास्तिकों

सत्यगुरु मदन साहब के शब्द

बिनय एक सब संत जनन से, सुनिए मन चित लाई जी।
संशय एक बड़ी मन में करि, दिया देहु समझाई जी ।।
एक नाम ब्रह्मादिक भजिया, भजत पार नहिं पाई जी।
कौन नाम के भजन किए जीव, जीवत ही मिल जाई जी।।
माया एक जो कनक कामिनी, सब संतन मिल गाई जी।
माया कौन सकल घट ब्यापक, सुन नर मुनिहिं नचाई जी।।
अक्षर एक छरैं जग सारा, छरत छरत जग खाई जी।
अक्षर कौन क्षमा न होत क्षर, निःअक्षर घर जाई जी ।।
ज्योति एक जो योग युक्ति से, तुरी देश दरसाई जी।
जोति कौन जग माँहि जगामगि, जोतिहिं जोति समाई जी।।
ज्ञान एक सब कथत बहुत विधि, दृष्टि तिमिर नहिं जाई जी।
कौन ज्ञान के हलत हृदय में, दिब्य दृष्टि खुलि जाई जी ।।
चार वेद ब्रह्मा विस्तारा, अक्षर की कबिताई जी।
कौन वेद अक्षर से न्यारा, समझत बहु कठिनाई जी ।।
एक शब्द का सकल पसारा, रहा जगत अरुझाई जी।
सारशब्द है कौन जाहि ते, जियत हंस मुक्ताई जी ।।
एक राम सब परे कहत हैं, दूरि ध्यान चित लाई जी।
कौन राम भरभूर सकल घट दयारूप सुखदाई जी ।।
जिमि गज दसन गुप्त प्रगट दुइ, गुप्त दसन चर खाई जी।
तेहूँ संत का गुप्त मता है, जन बिरला कोई पाई जी ।।
नीर छीर मिल रहा हंस बिन, कहु कौने बिलगाई जी।
मदन संत सोई हंस वंश, बिलगावत वार न लाई जी ।।१।।